कविवर सुमित्रानंदन पंत

और उनका

आधुनिक कवि

('आधुनिक कवि' पुस्तक का सर्वांग अध्ययन)

लेखक

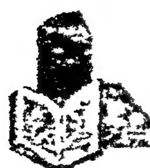
डॉ० कृष्णदेव शर्मा

एम० ए०, पी-एच० डी०

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

रामलाल आनन्द कालेज

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



रीगल बुक डिपो

नई सड़क, दिल्ली-6

प्रकाशक :
रीगल बुक डिपो,
नई सड़क, दिल्ली-६

मूल्य १५-००

संस्करण । प्रथम सन् १९७२

मुद्रक :
विजय कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
अनुपम प्रिंटर्स, दिल्ली-६

आदरणीय

श्री भारतभूषण सरोज

को

उनके अमित वरदानों

और

सहायता के लिए

—कृष्णदेव शर्मा

कृति के विषय में

आधुनिक हिन्दी साहित्य के 'स्वर्ण युग' छायावाद युग के चार प्रकाशमान नक्षत्र माने जाते हैं—प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी। इन चारों महाकवियों ने हिन्दी साहित्य को प्रेम, सौन्दर्य, दर्शन, प्रकृति, कल्पना, भावुकता एवं मानवतावाद की सहज संवेदनाओं से सज्जित कर उसे पूर्णता प्रदान की है। वैसे तो कवि प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक कहा जाता है किन्तु पन्त की कोमलकान्त पदावली, सहज भावुकता एवं कल्पना ने छायावाद को प्राणवता प्रदान की। प्रसाद की दार्शनिक गम्भीरता, निराला का दार्शनिक ओज, महादेवी की करुणा तथा वेदना के साथ प्रकृति-सौन्दर्य को सहज मानवीय आदर्शों का सौन्दर्य देकर पंतजी ने उसे सर्वांगीण सौन्दर्य प्रदान किया है। इसी कारण पन्त को छायावाद युग में मूर्धन्य स्थान प्राप्त है।

'आधुनिक कवि' में कवि पंत की स्वयं द्वारा चुनी हुई कविताएं संकलित हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इसी का अध्ययन-विश्लेषण किया गया है।

'कविवर सुमित्रानन्दन पंत और उनका आधुनिक कवि' को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में पंत जी का जीवन परिचय, रचनाएं, भावधारा का क्रमिक विकास, प्रेम और सौन्दर्य, प्रकृति-दर्शन, रूप-विधान, शिल्प-विधान आदि विषयों का विशदता से विवेचन हुआ है। द्वितीय भाग में कविताओं की आलोचनात्मक व्याख्या विशद रूप से की गयी है। कविताओं के अवतरणों के साहित्यिक सौन्दर्य का भी यथास्थान उदघाटन किया गया है। आवश्यक उद्धरण भी दिये गये हैं। पुस्तक रचना में पाठकों एवं छात्रों की कठिनाई को बराबर दृष्टि में रखकर उसे अधिकाधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। प्रयास में कहां तक सफलता मिली है—इसका निर्णय तो वे स्वयं ही करेंगे।

'कविवर सुमित्रानन्दन पंत और उनका आधुनिक कवि' के साज-श्रृंगार में जिन विद्वानों की कृतियों से सहायता ली गई है, लेखक उन सबका आभारी है।

विनीत—

'२६ जनवरी; सन् १९७२ कृष्णदेव शर्मा

विषय-सूची

आलोचना-भाग

व्याख्या-भाग

१ | जीवन-परिचय

कविवर सुमित्रानंदन पंत आधुनिक हिन्दी काव्य के निरन्तर प्रगतिशील कवि रहे हैं। प्रकृति की क्रोड़ में जन्म लेने वाले पंत ने जीवन की विविध अनुभूतियों को जीवित रूप में काव्य में प्रस्फुटित किया है। पंत का जन्म-स्थान प्रकृति का मनोहर स्थल अलमोड़ा जिले का कौसानी नामक गाँव है। जहाँ सन् १९०० की २० मई को प्रातःकाल पत ने जन्म लिया था। कौसानी प्राकृतिक दृष्टि से अत्यन्त मनोहर स्थल है। यह अलमोड़ा से ३२ मील दूर समुद्र के तल से सात हजार फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ है।

माता-पिता—पंत की माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी तथा पिता का नाम पण्डित गंगादत्त था। पंत को माता का नैसर्गिक प्रेम नहीं मिल पाया, क्योंकि पंत को जन्म देते ही ममतामयी माँ सदैव के लिए उन्हें छोड़कर चल दीं। इसी लिए पंत ने माँ का प्यार प्रकृति से ही प्राप्त किया—

प्रकृति की गोद में छिप क्रीड़ा प्रिय, तृण तरु की बातें सुनता मन,
विहंगों के पंख पर करता, पार नीलमा से छाया मन।

वास्तव में माँ ही नहीं, पिता, सखा, शिक्षक एवं प्रेमिका के रूप में भी पंत को प्रकृति ने स्नेह दिया। इसी कारण कवि ने लिखा है—

माँ से बढ़कर रही धात्रि, तू बचपन में मेरे हित।
धात्रि कथा रूपक भर : तूने किया जनक बन पोषण।
मातृहीन बालक के सिर पर वरद हस्तधर गोपन।

पंत का प्रारम्भिक जीवत प्रकृति की गोद में बीता और प्रकृति से ही उसने सब कुछ ग्रहण किया। अपने काव्य-जीवन की प्रेरणा के सम्बंध में भी कवि का कथन है, "अपने काव्य-जीवन पर दृष्टिपात करने पर मेरे भीतर यह बात स्पष्ट हो उठती है कि मेरे किशोर प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ। मेरे भीतर ऐसे संस्कार अवश्य रहे होंगे, जिन्होंने मुझे कवि-कर्म करने की

प्रेरणा दी, किंतु उस प्रेरणा के विकास के लिए स्वप्नों के पालने की रचना पर्वत प्रदेश की दिगन्त व्यापी प्रकृति शोभा ही ने की, जिसने छुटपन से ही मुझे अपने रुपहले एकान्त में एकाग्र तन्मयता के रश्मिदोल में भुलाया, रिझाया तथा कोमल कण्ठ वन-पाँखियों के साथ बोलना-कुहुकना सिखाया।"

शैशवावस्था—पंत का बचपन का नाम गुसाईं दत्त था। इसका कारण यह था कि इनका जन्म हरगिरि बाबा नामक गोस्वामी के प्रताप से हुआ था और इसी कारण इनके पिता ने इन्हें बाबा को अर्पित कर दिया था। अल्मोड़ा आने के पश्चात् इन्होंने स्वयं ही अपना वर्तमान नाम रख लिया। इस सम्बन्ध में कवि ने लिखा है—"मैं घर में छोटा भाई था इसीलिए मेरे मन ने अपना नाम सुमित्रानंदन रखकर सन्तोष प्रकट किया था। लक्ष्मण जी के लिए राम से छोटे होने के कारण छुटपन में ही मेरी कुछ धारणा थी कि वह बड़े ही सुन्दर और सुकुमार थे। उनका लालन-पालन बड़े प्यार से हुआ था। अपने व्यक्तित्व का छुटपन में मैंने उनके साथ तादात्म्य कर लिया था। यह भी मेरी समझ में मेरा अपने लिए 'सुमित्रानंदन' नाम चुनने का कारण रहा।"

पंत का लालन-पोषण उनकी दादी और बुआ के द्वारा हुआ। पंत का बचपन प्रकृति की शोभा निहारने में समाप्त हो जाता था। अपने बचपन के जीवन तथा प्रकृति के प्रति सम्मोहन को कवि अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में भी भुला नहीं पाया है, इसीलिए कवि ने अपने जन्मस्थान के प्रति लिखा है—

छुटपन से विचरा हूँ मैं इन धूप-छाँह शिखरों पर,
दूर, क्षितिज पर हिल्लोलित-सी दृश्य पटी पर निःस्वर,
हल्की गहरी छायाओं के रेखांकित से पर्वत,
नील, बैंगनी, कपिश, पीत, हरीनाम, वर्ण श्री छहरा,
मोहित अन्तर में भर देते आदिम विस्मय गहरा,
अन्तरिक्ष विस्फारित नयनों को अपलक रख तद्गत।

शिक्षा-दीक्षा—पंत की शिक्षा-दीक्षा पाँच वर्ष की अवस्था में हुई तथा सात वर्ष की आयु में इन्हें गाँव के स्कूल में भर्ती करा दिया गया। नौ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त कर लिया तथा सन् १९१७ में दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण हो गये। इसी विद्यार्थी-जीवन में पंत का कवि-रूप भी उभरा। सन् १९०७ में उन्हें काव्य पर पुरस्कार प्रदान किया गया था। इस संदर्भ में

उनका कथन है—मुझे सबसे पहले कापी में सन् १९०७ लिखने की याद है और याद है स्कूल में अपने मधुर छन्द-पाठ की, जिसके लिए मुझे स्कूल के इन्सपेक्टर ने एक पुस्तक पुरस्कार स्वरूप दी थी।" पंत का स्वभाव प्रारम्भ से ही संकोची रहा है। वे स्कूल भी प्रायः अकेले नहीं जाते थे और भीड़-भाड़ से अपने को पृथक रखते थे। दसवीं कक्षा पास कर लेने के पश्चात् १२वीं कक्षा तक अध्ययन पंत ने म्योर सैन्ट्रल कालेज प्रयाग में किया। कॉलेज-जीवन में पंत का अध्ययन विस्तृत हुआ और उनका सम्बन्ध अंग्रेजी तथा बंगला की काव्य-कृतियों से जुड़ा। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों—शैली, वर्ड्स्वर्थ, टेनीसन तथा कॉलरिज—तथा कवीन्द्र रवीन्द्र की सौन्दर्यात्मक रचनाओं का प्रभाव कवि पर पड़ा। इसी काल में कवि ने 'हार' नाम का उपन्यास भी लिखा और 'वीणा' में संकलित कविताओं का भी सृजन हुआ। छात्रावास में प्रवेश करने पर पंत ने एक कविता लिखी थी, जिसमें उनके कवि-जीवन की झांकी मिलती है—

> इस विस्तृत होस्टल में
> मैं सुनती हूँ
> मेरा भी है सखि! छोटा सा रूम
> जहाँ मेरी आकांक्षा सूम
> गूँजती है प्रतिपल को तूम।

सन् १९२१ में गांधी जी के असहयोग आन्दोलन के प्रभाव-स्वरूप पंत ने कॉलेज छोड़ दिया। गांधी के इस आन्दोलन में कवि ने सक्रिय भाग लिया। अपने जीवन के इस अनुभव पर प्रकाश डालते हुए कवि ने लिखा है—"मेरे भाई मेरे पीछे खड़े थे, उन्होंने कुहनी पकड़कर मेरा हाथ भी ऊपर कर दिया।" पंत ने कॉलेज छोड़कर देश की राजनीति में सक्रिय भाग न लेकर अपनी काव्य-साधना जारी रखी।

साहित्यिक जीवन—वैसे तो पंत का साहित्यिक जीवन सन् १९०७ से ही प्रारम्भ हो गया था, तथापि उनकी पहली कविता (जो कि विद्वानों के अनुसार विवाद का विषय है) 'अल्मोड़ा अखबार' में 'तम्बाकू का धुंआ' नाम से प्रकाशित हुई। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि 'कागज के फूल' पंत की पहली कविता है। अपनी प्रारम्भिक रचनाओं को पंत अन्य कवियों से संशोधित भी करवा लेते थे। 'गिरजे का घण्टा' ऐसी ही कविता है, जिसे पंत ने संशोधनार्थ

मैथिलीशरण गुप्त के पास भेजी थी। इस सम्बंध में कवि ने लिखा है—"गुप्त ने सहज सौजन्यवश हाशिये में दो प्रसंगों के वाक्य लिखकर मुझे वह रचना लौटा दी थी, जिससे प्रोत्साहित होकर मैने वह रचना 'सरस्वती' नामक पत्रिका में छपने के लिए श्री द्विवेदी जी के पास भेज दी थी। सप्ताह भर के भीतर ही द्विवेदी जी ने गुप्त जी के हस्ताक्षर के नीचे अस्वीकृति म० प्र० द्विवेदी लिखकर रचना मेरे पास लौटा दी।" किन्तु इसके पश्चात् भी पंत की साहित्य साधना निरन्तर चलती रही। सन् १९१६ में इन्होंने 'हार' की रचना की। पंत की प्रारम्भिक कविता अपने चतुर्दिक वातावरण के प्रभाव स्वरूप हुई थी। इस सम्बंध में कवि ने स्वयं लिखा है—'अपने आस-पास के छोटे-मोटे विषयों को चुनकर मै अपनी प्रारम्भिक काव्य-साधना में तल्लीन रहा हूँ। अपने पास-पड़ौस और दैनदिन की परिस्थितियों एवं घटनाओं से प्रभावित होकर ही मेरी प्रारम्भिक रचनाएँ निःसृत हुई है और अपनी अस्फुट अबोध भावना को भाषा की अस्पष्ट तुतलाहट में बांधकर मैं अपने छंद-रचना के प्रेम को चरितार्थ करता रहा हूँ। एक प्रकार से प्रारम्भ से ही मुझे अपने मधुमय गान अपने चारों ओर धूलि की ढेरी में अनजान बिखरे पड़े मिले है।"

सन् १९२१ में कॉलेज छोड़ने के पश्चात्, पंत ने 'वीणा' तथा 'ग्रंथी' की रचना की। सन् १९२२ में पंत की प्रथम काव्य-पुस्तक 'उच्छ्वास' का प्रकाशन हुआ। 'उच्छ्वास' के प्रकाशन के साथ ही पंत को अलोचना का विषय बनना पड़ा। सन् १९२६ में 'पल्लव' आया और इसके साथ पत ने जो भूमिका दी, उससे छायावाद के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों का निराकरण हो गया।

किंतु जहाँ साहित्यिक जीवन में पंत निरन्तर प्रगति करते जा रहे थे, वही वैयक्तिक जीवन मे उन्हे अनेक कष्ट उठाने पड़े। सन् १९२६ में उनके मंझले भाई रघुवरदत्त तथा सन् १९२७ में इनके पिता की मृत्यु हो गई। आर्थिक दृष्टि से सारा दायित्व पंत पर पड़ गया, जिसके कारण उनके वैयक्तिक जीवन में परिवर्तन आ गया। भौतिक जीवन के प्रति उनके मन मे आस्था उत्पन्न हो गई—

बिला गई हो भौतिक सत्ता
गुंठन सा उठ गया नयन से।
दृढ़ प्रस्तर प्रसाद पिता का
मेघ खण्डवत् लीन गगन में

वता गया—जड़ में जीवन की
नींव न गहरी, वह चेतन में।

इसके पश्चात् सन् १९३० तक कवि अस्वस्थ रहा। सन् १९३१ से सन् १९३४ तक कवि कालाकांकर में रहा। आर्थिक अवस्था अच्छी न होने के कारण कवि विवाह न कर पाया। पंत का कथन है, "सन् १९२१ में जब मैंने कॉलेज छोड़ दिया, आर्थिक द्वार तो मेरे लिए उसी दिन वन्द हो गया था। मेरी मां नही रही, पिता जी भी चले गये। भाइयों ने विशेष काम नहीं किया। इस प्रकार घर का सहारा भी चला गया। मैं अच्छे ढंग पर पला हूँ, अच्छे ढंग से रहने का अभ्यासी हूँ.........अपने साथी को मैं मनमाने ढंग पर अच्छी स्थिति में नहीं रख सकता था। मैं भावुक व्यक्ति हूँ। स्वयं ही कभी किसी का और कभी किसी का मेहमान रहा। ऐसी दशा में मुझे किसी को दुःखी बनाने का क्या अधिकार था?" और इन्हीं कारणों से पंत विवाह नहीं कर पाये। कवि को एकाकी रहना पड़ा और इसकी दुःखद अनुभूति कवि को कचोटती रही—

एकाकीपन का अंधकार, दुस्सह है इसका मूक भार,
इसके विषाद का रे न पार!
चिर अविचल पर तारक अमंद!
जानता नहीं वह छन्द-बंध!
वह रे! अनन्त का मुक्त मीन, अपने असंग सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन!

पंत का यह एकाकीपन इस कारण से और भी बढ़ गया था क्योंकि माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् कवि का सम्बन्ध घर के अन्य सदस्यों से प्रायः टूट गया था। घर के सदस्यों ने पंत के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट किया, जिसका ज्ञान कवि को है—"उनका मनोभाव इतना निष्क्रिय तथा ममताहीन रहा कि उन्होंने दूर से भी कभी देख-रेख की हो या मेरे विकास पर प्रच्छन्न दृष्टि रखी हो, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत हुआ।" कवि जब जीवन के नाजुक दौर से गुजर रहा था तो उनका परिचय कालाकांकर के महाराज सुरेशसिंह से हुआ और उन्हीं के स्नेहपूर्ण हठ के कारण कवि कालाकांकर चला आया। सन् १९३० से सन् १९४० तक का समय कवि ने अत्यन्त शान्त रूप में व्यतीत किया और इस काल में कवि ने ज्ञान के व्यापक क्षेत्र में पदार्पण किया। वास्तव में कालाकांकर की

स्मृति पंत के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ गई, जिसका स्मरण कवि ने इन शब्दों में किया है—

गंगातट था, श्यामल वन थे, तरु प्राणों में भरते मर्मर,
जल कलकल, खग कलरव करते, प्रकृति नीड़ था जनपद सुन्दर
मै कृतज्ञ उस ग्राम राज्य का जहाँ कटे सुख के संकट क्षण
वे मानस मंथन के दिन थे, भरा सुनहली स्मृतियों से मन।

कालाकांकर में रहते हुए ही पत ने प्रयाग से निकलने वाले 'रूपाभ' पत्र का प्रकाशन किया। यह बात सन् १९३८ की है। यह पत्र किन्ही कारणों से आगे नही चल सका और एक वर्ष बाद ही इसका प्रकाशन बन्द हो गया। इसी पत्र में पंत ने अपनी कविताओं का भी प्रकाशन किया। सन् १९४० तक कालाकांकर में रहने के पश्चात् पंत प्रयाग चले आये। यहाँ आकर कवि ने 'स्वर्णधूलि' में प्रकाशित कविताओं का निर्माण किया। सन् १९४१ में एक वर्ष के लिए पंत ने एक बार फिर अल्मोड़ा में वास किया और सन् १९४२ में संत्रस्त भारतीय युवक को ज्ञान देने के लिए पंत ने 'लोकायतन' नामक संस्था की योजना बनाई जो सफल नहीं हो पाई। सन् १९४३ में पंत निराश होकर अल्मोड़ा में उदयशंकर सस्कृति केन्द्र मे चले गये, जहाँ उस मंडली के साथ दो-तीन महीने भारत भ्रमण किया। निरन्तर परिश्रम करते रहने के कारण पत जी अस्वस्थ हो गए। सन् १९४४ में उदयशंकर के 'कल्पना' चित्र के लिए पंत ने गीत लिखे और मद्रास गए। मद्रास-प्रवास में ही कवि को अरविन्द एव उनकी दार्शनिक मान्यताओं को समझने का अवसर मिला। सन् १९४५-४६ में अरविन्द के प्रभाव से ही कवि ने 'स्वर्णधूलि' तथा 'स्वर्ण किरण' की रचना की। वास्तव में योगी अरविंद के प्रभाव-स्वरूप कवि के मन में नवीन चेतना का जन्म हुआ। इस सन्दर्भ में पंत का कथन है—"मेरे इस युग की रचनाओं में जिसे मै चेतनावाद का युग कहता हूँ मेरे विचारों में, भावनाओं में स्पष्टता तथा व्यापकता, शैली मे प्रौढ़ता, प्रांजलता तथा भौतिक-आध्यात्मिक मूल्यों सम्बन्धी दृष्टिकोण में सम्भवतः संगीत और सामंजस्य मिलता है।" पंत ने तीन-चार वर्षों तक दक्षिण भारत में प्रवास किया। सन् १९४७ में पंत बम्बई चले गये और कुछ महीनों तक वहाँ रहने के पश्चात् पुनः प्रयाग चले आये। सन् १९५० में पंत ने रेडियो में प्रवेश किया और आकाशवाणी पर परामर्शदाता के रूप में नियुक्त हो गए। डॉ० नगेन्द्र और श्री

बालकृष्ण राव भी उस समय रेडियो पर ही थे। सात वर्ष तक पंत रेडियो से सम्बद्ध रहे। इस काल में उन्होंने काव्यरूपकों—रजतशिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा का सृजन किया। १९५७ में पंत ने रेडियो का कार्यभार छोड़ दिया। इसके बाद भी कवि की साहित्य साधना जारी रही। सन् १९५८ की कविताओं का संग्रह सन् १९६० में 'कला और बूढ़ा चांद' शीर्षक से हुआ। इस कृति को सन् १९६१ में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया।

सन् १९६१ में ही पंत सोवियत-भारतीय सांस्कृतिक संघ के निमंत्रण पर रूस गए। इसके साथ ही पंत पश्चिमी जर्मनी तथा पेरिस भी गए। इन यात्राओं से कवि का ज्ञान-वर्द्धन हुआ। पंत का कथन है—"विदेश-भ्रमण से मेरा ज्ञान-संवर्धन हुआ और आधुनिक सभ्यता के प्रति मेरे जो विचार थे, उन्हें दुहराने का अवसर मुझे इस यात्रा में मिल सका।" सन् १९६५ में पंत को 'सोवियत लैण्ड-नेहरू पुरस्कार, उनके महाकाव्य 'लोकायतन' पर मिला। १९६६ में इसी संबंध में पंत रूस गये। १९७० में ही उन्हें 'भारतीय ज्ञानपीठ' की ओर से उनकी काव्य-कृति 'चिदम्बरा' पर एक लाख रुपये का पुरस्कार मिलने की घोषणा की गई।

व्यक्तित्व—पंत का काव्य उनके समन्वयवादी निरन्तर चिन्तनशील व्यक्तित्व का परिणाम है। एक ओर उनमें भौतिक मूल्यों के प्रति आस्था है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक साधना की उच्चाकांक्षा। यही कारण है कि पंत का व्यक्तित्व एकांगी नहीं है। पंत पर गांधी, विवेकानन्द, अरविंद तथा मार्क्स जैसे महापुरुषों का प्रभाव पड़ा है। काव्य की दृष्टि से उन पर अंग्रेजी के रोमांटिक तथा बंगला के कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव पड़ा है। स्वभाव से संकोची तथा एकान्तप्रिय होने के कारण पंत का अधिकांश जीवन भीड़भाड़ से अलग बीता है।

पंत निरन्तर युग-धर्म की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों में करते रहे हैं। युग की हर छोटी-बड़ी हलचल ने कवि को प्रभावित किया है और कवि ने अपनी प्रतिक्रिया कृतियों के माध्यम से व्यक्त की है। पंत का व्यक्तित्व मूलतः मानवतावादी तत्त्वों से बना है।

सर्वदेश, सर्वकाल
धर्म, जाति, वर्ण जाल
हिल-मिल सब हों विशाल,
एक हृदय अगणित स्वर। ———

२ | काव्य-रचनाएँ

कविवर पंत का रचना-काल सन् १९१६ से आजतक अनवरत रूप से चल रहा है। अपने ४५ साहित्यिक वर्षो मे कवि ने सम्पूर्ण युग-चेतना को सम्पूर्ण रूप से रूपायित किया है। इन सभी कृतियों में, जो पंत के लम्बे साहित्यिक जीवन का परिणाम है, कवि पत ने किसी एक विचारधारा अथवा जीवन-पद्धति को प्रस्तुत नहीं किया है। युग-जीवन से प्रभावित होकर उन्होंने निरन्तर नूतन विचार-पद्धति को अपने साहित्य में प्रस्तुन किया है। पंत की काव्य-रचना का प्रारम्भ पत्र-पत्रिकाओं में छपी कविताओं से हुआ। पंत की ज्ञात प्रथम कविता 'उच्छवास' है, जिससे उनके कवि-जीवन का प्रारम्भ माना जा सकता है। इसके पश्चात्, 'आँसू' का प्रकाशन हुआ। आज जो कविताएँ उपलब्ध हैं, उन्हें काव्य-संग्रहों में प्रकाशित करा दिया गया है। रचना-क्रम की दृष्टि से पंत की निम्न रचनाएँ उपलब्ध होती है।

वीणा (सन् १९१८), ग्रन्थि (सन् १९२०), पल्लव (सन् १९२२-२६), गुंजन (सन् १९२६-३२), ज्योत्स्ना (सन् १९३४), युगान्त (सन् १९३५), युगवाणी (सन् १९३७-३८), ग्राम्या (सन् १९३९-४०), स्वर्ण किरण (सन् १९४४-४५), स्वर्ण धूलि (सन् १९४६-४७), उत्तरा (सन् १९४९), रजत-शिखर (सन् १९५१) शिल्पी (सन् १९५२), सौ वर्ण (सन् १९५४), अतिमा (सन् १९५४), वाणी (सन् १९५७), कला और बूढ़ा चाँद (सन् १९५८), रश्मि बंध (सन् १९५८), लोकायतन (सन् १९६४), पल्लविनी, आधुनिक कवि भाग-२, चिदम्बरा (भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत), तारापथ, पतझर : एक भाव क्रान्ति।

वीणा—'वीणा' काव्य-संग्रह में सन् १९१८ से सन् १९२० तक की कविताएँ संग्रहीत हैं। ये सभी रचनाएँ प्रयोगकालीन हैं और इनमें कवि की कोमल कल्पना तथा बाल-सुलभ औत्सुक्य मिलता है। कवि ने इस कृति को 'दुध-मुहाँ' प्रयास माना है। वीणा की समस्त कविताओं में प्रकृति-सौदन्र्य एवं प्रकृति के

प्रति सम्मोहन का भाव मिलता है। यद्यपि प्रधान विषय प्रकृति-सौन्दर्य ही है, तथापि टैगोर की गीतांजलि का प्रभाव होने के कारण कुछ कविताएं प्रार्थना रूप में भी लिखी गयी हैं। सामान्य रूप से इन कविताओं में एक आदर्श भावना के साथ-साथ रहस्यात्मकता एवं दार्शनिकता का भाव भी मिलता है। 'वीणा' के भाव-सौन्दर्य का उद्‌घाटन करते हुए डा० नगेन्द्र का कथन है, "'वीणा' की कविताएं अधिकांश में भाव-प्रधान हैं, किन्तु प्रायः सभी भावों का बड़ा सयत दवा हुआ प्रस्फुटन हुआ है।" इस संग्रह की 'बादल,' 'इन्द्रधनुप,' 'सरिता' आदि कविताएं उल्लेखनीय हैं। पत ने इस रचना के अन्तर-बाह्य का परिचय देते हुए लिखा है—

यह तो तुतली बोली में है,
एक बालिका का उपहार।

ग्रन्थि—यह पंत का विरह काव्य है। इसमें पवित्र प्रेम की उदात्त कथा, विरह की तीव्र अनुभूति अत्यन्त मार्मिक ढंग पर आत्मकथामक शैली में कही गयी है। कुछ विचारकों का कथन है कि यह ग्रन्थ कवि के वैयक्तिक जीवन से संबंध रखता है। नायक अपने प्रणय-व्यापार को स्मृति रूप में मानस-पटल पर अंकित करता है। नायक की नौका जल में डूब जाती है, परन्तु जब वह होश में आता है तो अपने को सुन्दरी की गोद में पाता है। मूक भाषा में भावों का आदान-प्रदान होता है और प्रेम उत्पन्न हो जाता है। सामाजिक बन्धनों के कारण नायिका का विवाह किसी अन्य पुरुष से हो जाता है और नायक के मन में अतृप्ति की एक ऐसी ग्रन्थि डाल जाता है कि समस्त वातावरण दुःखद हो जाता है। इस कृति में कवि ने भाव के स्तर पर प्रेम, आशा, रति, वेदना, उन्माद आदि के चित्र खींचे हैं। काव्य-शिल्प की दृष्टि से यह अतुकान्त छन्दों में लिखा गया है।

पल्लव—ग्रन्थि में यदि विरह है तो पल्लव में प्रेम और यौवन के स्वतन्त्र आकर्षक गीत हैं। पल्लव का मुख्य प्रतिपाद्य विषय प्रेम है। इस संग्रह की कविताओं पर शैली, कीट्स तथा टेनीसन आदि अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों का प्रभाव है। पल्लव में प्रकृति के प्रति एक रहस्यात्मकता का एक झीना पर्दा मिलता है। पल्लव में आकर कवि ने अपनी अभिव्यक्ति को अधिक प्रांजल तथा सुष्ठु बना लिया है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से पल्लव के गीतों में वैविध्य है। कुछ

गीतों में प्रकृति की सुरम्य कल्पना मिलती है, यथा—वीचिविलास, निर्झर गान आदि। कुछ गीत विशुद्ध भावात्मक हैं, यथा—याचना, विसर्जन आदि। कुछ गीत ऐसे है जो भाव और कल्पना के मणि-कांचन योग को लेकर उपस्थित हुए हैं, यथा—मौन निमंत्रण, छाया, बादल इत्यादि। पल्लव की कविताओं में रहस्य-भावना, कल्पना-प्रवणता, प्रकृति चित्रण एवं शृंगारिकता का भाव मिलता है। 'मौन-निमंत्रण' में रहस्य-भावना मिलती है—

न जाने कौन, अये द्युतिमान
जान मुझको अबोध, अज्ञान
सुझाते हो तुम पथ अनजान······

शैली-शिल्प की दृष्टि से पल्लव का महत्त्व असंदिग्ध है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, "पल्लव में पंत जी की प्रतिभा का परिपूर्ण यौवन—वह उसके पूर्ण क्षणों की वाणी है—उसमें विहगवन के राजकुमार की उन्मुक्त वन-गीतियाँ हैं। वाणी का यह उन्मुक्त विलास फिर अधिक नहीं दिखाई देता।" पल्लव की भाषा के साहित्यिक महत्त्व को डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी स्वीकार किया है।

गुंजन—गुंजन में आकर कवि भावना के स्थान पर चिन्तन के गहन स्तर पर अपने को प्रतिष्ठित करता है। यहाँ आकर कवि वास्तव में अन्तर्मुखी हो गया है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए पंत का कथन है—"गुंजन में धीरे-धीरे मैंने अपनी ओर मुड़कर तथा अपने भीतर देखकर अपने बारे में गुनगुनाना सीखा।" इसी के साथ गुंजन में कवि जीवन के उत्थान-पतन को देखकर सामाजिक उथल-पुथल में हिस्सा लेता है। सुन्दरं से शिवं की ओर उसका पदार्पण होता है। इसे स्वीकार करते हुए कवि ने लिखा भी है—"मैं पल्लव से गुंजन में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदर्पण करते पाता हूँ।" और इसी कारण कवि सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन चाहता है। जीवन और जगत् के प्रति उसके मन में एक विरक्ति-जन्य तटस्थता का भाव उदित होता है—

तप रे मधुर मधुर मन
विश्व वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल

वन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल
तप रे विधुर विधुर मन।

शिल्प की दृष्टि से गुंजन एक सफल कृति है। इसकी भाषा संगीतात्मक तथा कोमल है।

ज्योत्स्ना—ज्योत्स्ना का प्रकाशन सन् १९३४ में हुआ था। शिल्प की दृष्टि से यह काव्य-रूपक है। कवि जीवन तथा मानव के सम्बन्ध मे जो कुछ भी सुन्दर परिकल्पना करता है, उसकी अभिव्यक्ति इसमें हुई है। जीवन का जो आदर्श मान-दण्ड, सौंदर्य-प्रेम, नया जीवन तंत्र, चिरन्तन मानवत्व की भावना, राष्ट्र, वर्ण, जाति-विहीन समाज की परिकल्पना की है, उसे कवि ने रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कवि ने अपने जीवन-दर्शन का मूलाधार ज्योत्स्ना नाटिका ही मानी है—"मेरे काव्य-दर्शन की कुंजी निश्चय ही ज्योत्स्ना में है।" शिल्प की दृष्टि से यह कृति सफल नही है। कथानक न तो अधिक महत्त्वपूर्ण ही है और न ही सुसंगठित।

युगान्त—युगान्त मे कवि की सन् १९३४ से सन् १९३६ तक की ३३ कविताएँ संग्रहीत है। 'युगान्त' वास्तव में कवि के भावलोक के युग का अन्त ही है। कला की दृष्टि से भी यहाँ एक मोड़ आ जाता है। कवि के शब्दों में, "युगान्त में पल्लव की कोमलकान्त कला का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है भविष्य में उसे मैं अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण और प्रदान कर सकूँगा।" यहाँ कवि क्रान्तिकारी के रूप में सामाजिक परिवर्तन की बात करता है—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे त्रस्त-ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण।
हिम-ताप पीत मधुवात भीत
तुम वीतराग, जड़ पुराचीन।

आचार्य शुक्ल ने कवि के बौद्धिक-चिन्तन को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"पल्लव में कवि अपने व्यक्तित्व के घेरे में बंधा हुआ 'गुंजन' में कभी-कभी उसके बाहर और युगान्त में लोक के बीच दृष्टि फैलाकर आसन जमाता हुआ दिखाई देता है।" वास्तव में युगान्त में आकर कवि लोकमंगल के सम्बन्ध में विचार करता है। शिल्प की दृष्टि से इसमें लक्षणा के स्थान पर अभिधात्मक प्रयोग मिलते

हैं। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, "युगान्त में कवि की कला और शैली में भी एक साथ परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। गुंजन मे जो कला तितली के पंख लेकर उड़ी थी, वह युगान्त में मांसल हो गई है।"

युगवाणी—युगवाणी युगीन जीवन की सहज-सीधी अभिव्यक्ति है। युगान्त में ही पंत प्रकृति से मानव की ओर उन्मुख हो गया था। सन् १९३६ में कार्ल मार्क्स का प्रभाव भारतीय साहित्य पर पड़ा और पंत भी उस प्रभाव से सराबोर हो गये। पंत ने भी मार्क्स से प्रभावित होकर साम्यवाद को युगवाणी माना और उसकी अभिव्यक्ति के लिए शोषितों के प्रति सहानुभूति दिखाई। इसके साथ हो कवि पर गांधीवाद का प्रभाव भी कम होने लगा—

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जायगा जग जीवन
आत्मा की महिमा से मंडित होगी नवमानवता ?

शिल्प-विधान की दृष्टि से 'युगवाणी' पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न है। पंत का इस संदर्भ में स्वयं कथन है—"युगवाणी को मैंने गीत गद्य इसलिए नहीं कहा है कि उसमें काव्यात्मकता का अभाव है, प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार भावना [प्रधान है।" युगवाणी में कवि का प्रकृति के प्रति भी दृष्टिकोण बदल गया है—

हार गई तुम
प्रकृति !
रच निरुपम
मानव कृति !

मार्क्सवाद का खुला समर्थन कवि ने निम्न शब्दों में किया है—

धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम त्रिनेश के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

ग्राम्या—'ग्राम्या' युगवाणी का ही विकसित रूप है। ग्राम्या में आकर कवि इस बात से आश्वस्त हो गया था कि अब निश्चय ही परिवर्तन आना चाहिए। ग्राम्या में जितनी भी कविताएं है, वे सभी भारतीय ग्रामीण समाज के विविध पहलुओं को लेकर लिखी गयी है। ग्रामों का चित्रण करते समय कवि ग्रामों की वर्तमान दुर्दशा पर खीझ उठता है—

यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम—सभ्यता संस्कृति से निर्वासित !

और इसी कारण शोषित ग्रामीणों के प्रति कवि के मन में सहानुभूति जाग्रत होती है। वास्तव में ग्राम्या प्रगतिवाद की सही रूपरेखा प्रस्तुत करती है। डा॰ नगेन्द्र ने इसकी अन्तरात्मा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—"युगवाणी में प्रगतिवादी पंत का सिद्धांत वाक्य था—ग्राम्या उसका प्रयोग।" शैली-शिल्प की दृष्टि से ग्राम्या मे भावात्मकता तो है, परन्तु वह अनुभूतिगम्य कम और बौद्धिक अधिक है। इसकी भाषा युगवाणी के समान सूक्ष्म नही है। वास्तव में यह कृति कल्पना और भावुकता से युक्त होते हुए भी यथार्थ परक ही है।

स्वर्ण-किरण—इस रचना मे पंत पूर्णतया नए रूप में उभरते है। यही से कवि का आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ होता है। अस्वस्थ रहने के कारण कवि को महर्षि अरविंद का संसर्ग मिला और उसी के कारण कवि की भौतिक दृष्टि लुप्तप्राय: हो गई। अब प्रकृति का केवल वायवी रूप ही शेष बचा था। पंत ने 'स्वर्ण किरण' की रचना दार्शनिक धरातल पर की। इसको स्वीकार करते हुए कवि ने लिखा है—"श्री अरविंद के दर्शन करने तथा श्री अरविंद के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य भी प्राप्त हो सका। ....स्वर्णकिरण और उसके बाद की रचनाओं में यह प्रभाव किसी-न-किसी रूप में ही दृष्टि-गोचर होता है।" वास्तव में यह रचना चेतना के धरातल पर लिखी गयी है जिसमें अन्तर जगत् की भावनाओं को प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति अब सौन्दर्य-वर्द्धन का उपादान न होकर प्रतीक विधान मात्र रह गयी है। इस संग्रह की कुछ कविताएँ—यथा—सम्मोहन, रजतातप, जिज्ञासा इत्यादि साधना से सम्बन्धित हैं। 'स्वर्ण किरण' जिस आध्यात्मिक आधार को प्रस्तुत किया गया है, उसके अन्तर्गत कवि ने नवमानवतावादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की है। जीवन का सच्चा सुख भौतिक सम्पन्नता में नहीं, प्रत्युत आन्तरिक शान्ति में है। इसीलिए कवि वहिर्जीवन की अपेक्षा अन्तर जीवन पर बल देता है—

सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन,
वृहत विश्व इतिहास, चेतना गीता किन्तु निरन्तर।

शिल्प की दृष्टि से स्वर्ण किरण अत्यन्त सफल एवं महत्त्वपूर्ण कृति नहीं मानी जा सकती। काव्य की अपेक्षा कवि ने विचार प्रतिपादन पर बल दिया

है, जिसके कारण भावात्मकता के स्थान पर बौद्धिकता छा गयी है।

स्वर्णधलि—स्वर्णधूलि अध्यात्म तथा भूतवाद के समन्वय को प्रस्तुत करती है । स्वर्णकिरण में अध्यात्म का सैद्धान्तिक रूप है तो स्वर्णधूलि में उसका व्याहारिक रूप। अध्यात्मवाद अपने आप में उच्च तथा आदर्श अनुकरण है, परन्तु इसका वास्तविक उपयोग तथा महत्त्व इसी में है कि उससे समाज भी सम्बद्ध हो जाए। स्वर्णधूलि इसी अध्यात्म तथा भूत के समन्वय को प्रस्तुत करती है। इस समन्वय से एक नई मानवता का जन्म होगा, जो वर्ण, धर्म और जाति से असम्पृक्त होगी—

मानव होकर रहें धरा पर
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व में बंधकर।

स्वर्णधूलि की अधिकांश कविताएँ सैद्धान्तिक है। कुछ रचनाएँ सामाजिक तथा अन्य प्रकार की हैं।

उत्तरा—अरविंद दर्शन की उद्घोषणा ही उत्तरा का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। यहाँ आकर कवि की शैली आचार्यो जैसी दुरूह एवं दर्शन-बोझिल हो गई है। उत्तरा की भूमिका में अपनी विचारधारा प्रस्तुत करते हुए कवि का कथन है—"श्री अरविद को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ।" वास्तव में 'उत्तरा' में कवि ने एक नये युग का निर्माण किया है—

यह रे भू का निर्माणकाल हंसता नवजीवन अरुणोदय,
ले रही जन्म नवमानवता अब खर्व मानवता होगी क्षय।

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने भी उत्तरा के अध्यात्मवाद के सम्बन्ध में लिखा है, "उत्तरा को आज ही नहीं, आज से शताब्दियों बाद भी यदि कोई पढ़ेगा तो उसे लगेगा कि यह कवि अपने काव्य-कौशल और जीवन-आधार पर मनोरम काव्य-सृष्टि ही नही कर रहा था वरन् वह मानव जाति के पुनरुत्थान के लिए युग-निर्माण भी कर रहा था।" 'उत्तरा' में यदि कोई दुर्बलता है तो वह उसकी दर्शन-बोझिल शिल्प है। यहाँ पंत कवि की अपेक्षा दार्शनिक के रूप में उभरे है। पंत ने इसे स्वयं स्वीकार किया है—"उत्तरा में मेरी इधर की कुछ प्रतीकात्मक, कुछ धरती तथा युग सम्बन्धी, कुछ प्रकृति तथा वियोग-शृंगार

विषयक कविताएँ और कुछ प्रार्थना गीत संग्रहीत हैं।" समग्र रूप में उत्तरा में कवि के चिन्तन ने धरातल पर लोक-कल्याण की भावना को मुखरित किया है।

रजतशिखर—आकाशवाणी में रहते हुए पंत ने ग्यारह काव्य-रूपक लिखे जिनमें से छः का संग्रह रजतशिखर में किया गया है। ये काव्यरूपक इस इस प्रकार हैं—रजतशिखर, फूलों का देश, उत्तरशती, शुभ्र पुरुष, विद्युत-वसना, शरद् चेतना। 'रजतशिखर' के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कवि कहता है—"रजतशिखर मनुष्य की अन्तश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है। इस काव्यरूपक में जीवन के ऊर्ध्व और समतल संचरणों का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। मानव मन के विकास की वर्तमान स्थिति में ऊर्ध्व के अवरोहण तथा समतल के आरोहण पर बल देकर दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।" इन काव्य-रूपकों में विद्युत वसना (आजादी की देवी), शुभ्र पुरुष (महात्मा गांधी), उत्तरशती (युग का उत्तरार्द्ध), फूलों का देश (सांस्कृतिक रूप-विधान), रजत शिखर (मानव का समन्वय) कवि ने वर्तमान युग-चेतना को ही प्रस्तुत किया है—

ऊर्ध्व गगन उठा निखर
चन्द्र किरण रही उतर
स्वप्न पंख रहे विचर
स्मित नभचर हैं।

शिल्पी—इसमें तीन काव्यरूपक सम्मिलित किए गए हैं—शिल्पी, ध्वंस शेष और अप्सरा। 'शिल्पी' में शिल्पी के मन का कला और समाज को लेकर संघर्ष दिखाया गया है। 'ध्वंस शेष' मे नवजीवन का निर्माण किया गया है। इसमें भौतिक मूल्यों पर आध्यात्मिकता की विजय दिखाई गई है। 'अप्सरा' सौन्दर्य-चेतना का रूपक है। इसमें भी कवि ने अरविंद-दर्शन को ही मानवता के विकास में सहायक बताया है।

सौवर्ण—सौवर्ण में भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों युगों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। अतीत काल की रूढ़िवादिता, वर्तमान युग की विभीषिका तथा भविष्य की स्वप्निल आकांक्षा सौवर्ण में प्रस्तुत की गयी है। 'सौवर्ण' आदर्श पुरुष का प्रतीक है। रूपक का समाहार कवि ने इस रूप में किया है—

मैं हूं वह सौवर्ण लोक जीवन का प्रतिनिधि
नवमानव में, नवजीवन गरिमा में मण्डित
युग मानस पद्म, खिला जो धरा पंक में
जड़ चेतन जिसमें सजीव सौन्दर्य संतुलित।

अतिमा—'अतिमा' जीवन शक्ति एवं ज्योति का प्रतीक है। इस संग्रह में कवि ने भावलोक के वैविध्य को प्रस्तुत किया है। कुछ कविताएं प्रकृति-सम्बन्धी, सृजन-चेतना सम्बन्धी तथा कुछ आत्म केन्द्रित हैं।

वाणी—'अतिमा' का विकसित रूप ही 'वाणी' में मिलता है। 'वाणी' वस्तुतः कवि की आध्यात्मिकता की प्रतीक है। यहाँ भौतिकता तथा आध्यात्मिकता दोनों ही स्वर मिलते है। यहाँ प्रकृति के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण मिलता है।

कला और बूढ़ा चाँद—रूप विधान की दृष्टि से यह काव्य-संग्रह अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न है। इस नवीनता के सम्बन्ध में कवि ने स्वय लिखा है कि उन्होंने छन्दों की पायले उतार दी है। पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया गया है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इसमें सहज सत्यों की अभिव्यक्ति की गयी है। इसमें विचारात्मकता कम तथा प्रेरणात्मकता अधिक है। प्रतीकों के के चरम उपयोग और गहनता के कारण कृति बोझिल हो गई है। यथा—

मै शब्दों की
इकाइयों को रौंदकर
संकेतों में
प्रतीकों में बोलूंगा।

लोकायतन—पंत के समस्त काव्य में 'लोकायतन' ही एकमात्र महाकाव्य है। कवि ने विशाल परिप्रेक्ष्य में इसका कथानक प्रस्तुत किया है। कथानक का प्रारम्भ 'पूर्वस्मृति-खण्ड' से होता है जो कि सम्पूर्ण काव्य की भूमिका का काम करता है। वास्तव में इसका सम्बन्ध सन् १९२५-३० से प्रारम्भ होने वाले स्वतन्त्रता संग्राम से है। यह महाकाव्य एक ओर दार्शनिक आधार को लेकर चलता है तो दूसरी ओर वर्तमान समाज को। शिल्प की दृष्टि से मुख्य कथानक का सम्बन्ध वंशी, हरि, सिरि, शंकर, अतुल और संयुक्ता आदि पात्रों से है। मूल कथानक में अपेक्षित विस्तार का अभाव खटकता है। चरित्रों के सम्बन्ध में भी यही कहा जाता है कि उन्हें पूर्ण

स्वतन्त्रता एवं महत्त्व नहीं दिया गया है। 'लोकायतन' का दार्शनिक आधार भी अत्यन्त स्पष्ट नहीं है। प्रकृति-चित्रण के लिए कवि ने अनेक स्थल खोज लिए हैं। प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण द्रष्टव्य है—

फागुन में फूले वन के अंग
डाल पात में छाये नवरंग,
मन की चूनर रंग ले, सजनी,
होली खेलेगी साजन संग!
मधु का गंध संदेशा पाकर,
लौटे बिछड़े भ्रमर छोड़कर,
अलि, निर्मोही श्याम न आये
किसको भेंटू बांह भर।

कलापक्ष की दृष्टि से भाषा महाकाव्य की गरिमा के अनुकूल होते हुए भी सर्वथा उपयुक्त नहीं है। इसमें सहजता का अभाव है। अनेक स्थलों पर पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है, यथा—चेतन, आरोहरण, अवरोहरण इत्यादि। सारा महाकाव्य तुकान्त मात्रिक छन्दों में लिखा गया है। प्रधानतया पद्धरि, पादाकुलक, सखी, राधिका छन्दों को अपनाया गया है। पंत जी ने 'लोकायतन' में कल्पना-प्रधान अलंकारों को ही रखा है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति आदि अलंकार प्राय: प्रयोग में लाये गये हैं। डॉ० प्रेमलता बाफना ने इसके शिल्प पर विचार करते हुए लिखा है—"अन्तत: हम कह सकते हैं कि लोकायतन काव्य अपनी स्वतन्त्र शैली का निर्माण करने वाला अपने आप में एक उदाहरण है।" श्री दूधनाथ सिंह के शब्दों में कहा जा सकता है—"इस महान् रचना के सम्यक् अध्ययन के लिए वर्षों के अध्यवसाय, लगन और एक गहरी समझ के साथ ही अपने इतिहास, स्वतन्त्रता-संग्राम, स्वातन्त्र्योत्तर नैतिक ह्रास और कवि पंत की विराट् आस्था सृजनशीलता और लोक-शुभेच्छा को समझना अत्यन्त आवश्यक है। यह कृति महाकवि पंत के सम्पूर्ण मानसिक विकास और चिन्तन शीलता का एकत्र संकलन है। 'भारतीय चेतना' के मंगल-कलश में विश्व-मानव के अन्तर बाह्य विकास की परिकल्पना इसमें सार्थक हुई है।"

---

३ | सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

(काव्य का क्रमिक विकास)

काव्य में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का प्रतिपादन सर्वप्रथम यूनानी दार्शनिक अरस्तु ने किया। इस सम्बन्ध मे उनका कथन है—The true, the good and the beautiful', का काव्य में समन्वय होना चाहिए। हमारे यहाँ इस समन्वय-त्रयी का प्रयोग अधिकांश विद्वानों के मतानुसार राजाराम मोहनराय ने सर्वप्रथम किया। वही सत्य, शिव और सुन्दर का बाद में चलकर काव्य में भी प्रयोग हुआ।

इससे पूर्व, कि पंत के काव्य में इनके रूप पर विचार किया जाय, यहाँ आवश्यक है कि इनके रूप-विधान पर प्रकाश डाला जाय। जो सत्य है वही सुन्दर है और जो सुन्दर है वही लोकमंगल कर सकता है। अतः सत्य, शिव और सुन्दर मूलतः भिन्न होते हुए भी तत्त्वतः एक ही हैं। इस प्रकार सत्य जो बुद्धि जगत् का पदार्थ है, कर्त्तव्य के क्षेत्र में आकर शिव के रक्षक के रूप में प्रकट होता है और वही भावना अथवा कला के क्षेत्र में सुन्दर बन जाता है। इन तीनों के इसी एकत्व को ध्यान में रखते हुए कवि पंत ने लिखा है—

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप
लोक सेवा में शिव अविकार।

कवि का सत्य दार्शनिक और वैज्ञानिक के सत्य से भिन्न होता है। कवि के सत्य में कल्पना का अनिवार्य तत्त्व भी सम्मिलित रहता है। कवि को सत्य के मानचित्र में कल्पना का रंग भरकर उसे अधिकाधिक सुन्दर और आकर्षक रूप में प्रस्तुत करना ही उसकी सफलता है, कवि के लिए सत्य की रक्षा करना ही उसकी सफलता है, उसका आवश्यक कार्य है, किन्तु इस सत्य की रक्षा करते

हुए उसे कृति को सुन्दरम् ने भी आवेष्ठित करना पड़ता है। सत्य का आधार सम्भाव्यता तक ही सीमित होता है।

शिवं का अर्थ है—लोक कल्याण अथवा लोकमंगल। जो वस्तु कल्याण-कारी है, वही मंगलमय है, वही शिव-स्वरूप है। धर्म और दर्शन का यह शिव काव्य में आकर लोकहित या जनहित का रूप धारण कर लेता है। समाज के दुःख एवं पीड़ा को दूर करने के लिए किया गया कार्य काव्य में शिवं कहलाता है।

सुन्दरं का अर्थ है—जो क्षण-क्षण नवीनता धारण करे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है—"कुछ रूप रंग की वस्तुयें ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उनका ज्ञान भी हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तः सत्ता की यह तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।

पंत जी प्रगतिशील जीवन को ही महत्त्व देते हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य निरन्तर विकास का साहित्य है। अध्ययन की दृष्टि से हम इसे तीन सोपानों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) सौन्दर्य युग
(ख) शिव युग
(ग) सत्य युग

वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, लोकायतन आदि कवि की कतिपय प्रमुख रचनाएं हैं। इन सभी रचनाओं में पंत जी परिवर्तनशील दृष्टिकोण लेकर चले हैं। युग तथा उसकी परिस्थितियों के फलस्वरूप उनके काव्य में भी परिवर्तनशील विचारधारा मिलती है। यहाँ इन पर क्रमशः विचार किया जाता है :

सौन्दर्य युग—कवि के जीवन का प्रारम्भ सौन्दर्य भावनाओं से हुआ है। इसीलिए यह प्रथम युग माना गया है। कवि ने इस संदर्भ में अपनी प्रेरणा-स्रोत के सम्बन्ध में यह स्वयं स्वीकार किया है—"अपने काव्य-जीवन पर दृष्टि-पात करने पर मेरे भीतर यह बात स्पष्ट हो उठती है कि मेरे किशोर-प्राण मूक कवि को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्म-भूमि के उस नैसर्गिक सौन्दर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूँ।" इसके साथ ही कवि पर

बंगला तथा अंग्रेजी कवियों की सौन्दर्यानुभूति का भी प्रभाव पड़ा है। रवीन्द्र, शैली तथा कीट्स जैसे सौन्दर्य प्रेमी कवियों के प्रभाव के कारण भी कवि के मन में स्वभावतः सौन्दर्य-चेतना ने जन्म लिया। इस काल की रचनाओं में वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुंजन तथा युगान्त तक की रचनाओं को लिया जा सकता है। काल-क्रम की दृष्टि से ये रचनाएँ सन् १९१८ से सन् १९३५ तक की हैं। पंत की सौन्दर्यानुभूति में भी क्रमिक विकास हुआ है। इसका प्रारम्भ प्रकृति से हुआ है, जैसाकि पंत ने स्वयं भी स्वीकार किया है—'पर्वत प्रदेश के उज्ज्वल चंचल सौन्दर्य ने मेरे जीवन के चारों ओर अपने नीरव-सम्मोहन का जाल बुनना शुरु कर दिया था।...प्रकृति-निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग ही बन गये है, जिनसे मुझे जीवन के अनेक संकट क्षणों में अमोघ सांत्वना मिली है।" यही प्राकृतिक सौन्दर्य आगे चल मानसिक तथा आत्मिक सौन्दर्य में परिवर्तित हो गया है। वीणा से पल्लव तक प्राकृतिक सौन्दर्य ही मिलता है। गुंजन से युगान्त तक मानवीय प्रेम तथा इसके पश्चात् की रचनाओं में आत्मिक सौन्दर्य मिलता है।

प्राकृतिक सौन्दर्य—'वीणा' की रचना प्रकृति की गोद में हुई है। कवि ने यह स्वीकार किया है, "तब मैं छोटा-सा चंचल भावुक किशोर था, मेरा काव्य-कण्ठ अभी नहीं फूटा था। पर प्रकृति मुझ मातृ-हीन बालक को कवि जीवन के लिए अपनी मीठी स्वप्नों-से भरी, चुप्पी अंकित कर चुकी थी, जो मेरे पीछे मेरे भीतर अस्फुट तुतले स्वरों में बज उठी।" कवि की दृष्टि में प्रकृति को देखना, उसमें रम जाना ही जीवन का ध्येय है। इसीलिए कवि मानवीय सौन्दर्य की उपेक्षा करता हुआ गा उठता है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

इससे यह स्पष्ट है कि प्रथम काव्य-रचना के समय कवि पर प्रकृति हावी थी। इसी कारण पंत ने प्रकृति मे एक ओर माँ का असीम प्रेम और ममता को खोजा और दूसरी ओर प्रेयसी के सामीप्य तथा साहचर्य-जन्य आनन्द को भी प्राप्त किया। प्रकृति के उपादानों को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है—

सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि
मुझे भी अपने मीठे गान।

'वीणा' में कवि प्रकृति-प्रेम के अतिरिक्त एक आदर्श भाव से भी प्रभावित रहा है।

'रश्मिबंध' के 'परिदर्शन' में कवि ने यह स्वीकार किया है कि वे भीरु स्वभाव के कवि हैं। कवि सौन्दर्य से अभिभूत तो होता है, किन्तु साथ में डरता भी है—

यह स्पृहा संकोच का सुन्दर समर,
अधर कम्पित कपोलों पर युगल।
एक दुर्बल लालिमा में था बहा,
विश्व-प्रेम और यह भीरुता।

'ग्रंथि' एक विरह-काव्य है। यहाँ आकर कवि विश्व के साथ संघर्ष न करके पलायनवाद तथा आत्म-तुष्टि को अपनाता है। वह प्रकृति-सौन्दर्य की अपेक्षा मानवीय सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होता है—

शीश रख मेरा सुकोमल जांघ पर
शशिकला-सी एक बाला व्यग्र हो,
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल
सदय भीरु अधीर चिन्तित दृष्टि से।
एक पल मेरे प्रिया के दृग-पलक
थे उठे ऊपर सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानों प्रणय संबंध था।

कवि अपने प्रणय को आगे चलकर एक मनोहर भूल कहता है—

विश्व यह कैसी मनोहर भूल है,
मधुर दुर्बलता, कई छोटी बड़ी।

कवि की इन भावना का प्रत्यावर्तन 'पल्लव' में हुआ। कवि ने इस सम्बन्ध में स्वीकार करते हुए लिखा है—"वीणा में प्रकाशित 'प्रथम रश्मि' नामक कविता ने काव्य-साधना की दृष्टि से नवीन प्रभात किरण की तरह प्रवेश कर मेरे भीतर 'पल्लव' काल के काव्य-जीवन का समारम्भ कर दिया था।" वीणा के बाद पंत जी का अनुभव बढ़ा, अध्ययन विस्तृत हुआ और इसके

साथ ही कवि पर रवीन्द्र की 'गीतांजली' और कालिदास के प्रस्तुत-विधानों तथा रग-बिरंगी उपमाओं का भी प्रभाव पड़ा। वीणा का किशोर कवि पल्लव तक आते-आते पूर्ण युवक कवि बन जाता है। उसका कंठ फूट पड़ता है। 'पल्लव' में आकर कवि के सुन्दर शब्द-चयन, अद्‌भुत शब्द-शक्ति और निर्भीक प्रयोग के पुष्ट प्रमाण मिलने लगते है। पंत ने इसे स्वीकार भी किया है—"प्रकृति सौन्दर्य और प्रकृति-प्रेम की अभिव्यंजना पल्लव' में अधिक प्राँजल तथा परिपक्व रूप में हुई है।" 'पल्लव' छायावादी काव्य की अभिव्यंजना की सीमा है। यहाँ पहुँचकर कवि अन्तर्मुखी हो गया है। 'उच्छ्वास', 'आँसू', 'परिवर्तन' कविताएँ साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते है जब स्वप्न अजान,
न जाने, नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन।

'पल्लव' की 'परिवर्तन' कविता साहित्यिक जीवन के परिवर्तन की भी सूचक है। कवि के शब्दों में—"इस कविता जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे 'परिवर्तन' के रचना-काल से प्रारम्भ हो गया था, परिवर्तन उस अनुसंधान का केवल प्रतीक मात्र है।"

इस मानसिक परिवर्तन के स्पष्ट चिन्ह 'गुंजन' मे मिलते हैं। 'गुंजन' में कवि थोड़ा-बहुत चिन्तनशील भी हो गया है। वह अपने व्यक्तिगत दुःख के परे जग के सुख-दु.ख की ओर भी आँख उठाकर देखता है—

जग पीड़ित है अति दुःख से
जग पीड़ित रे अति सुख से।
मानव जग में बँट जावें
दुःख सुख से औ सुख दुःख से।

इसी समन्वय को लेकर चलने वाला कवि जीवन को सुन्दर बनाने की कामना रखता है—

सुन्दर से नित सुन्दरतर, सुन्दरता से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे सुन्दर सुन्दर जग-जीवन।

इसी कृति से कवि 'शिवम्' की भाव-भूमि में पदार्पण करता है—"पल्लव से गुंजन में अपने को सुन्दर से शिवं की भाव-भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ।" 'गुंजन की यह चिन्तनधारा 'ज्योत्स्ना' और 'युगान्त' तक चली जाती है। 'ज्योत्सना' में कवि की विचारधारा प्रकृति की गोद से हटकर जीवन के संघर्षमय प्रांगण में प्रवाहित होने लगी, और उसका झुकाव मानव-जीवन के सत्यों की ओर होने लगा—

मत हो विरक्त जीवन से
अनुरक्त न हो जीवन पर
जग परिधि मात्र जीवन की
स्थित केन्द्र अमर उर भीतर।

सौन्दर्य-युग की अन्तिम कृति 'युगान्त' है। 'युगान्त' पंत के काव्य-लोक में एक भाव-युग के अन्त का सूचक है। कवि के शब्दों में—"युगान्त में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम तक पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।" यही कारण है कि इस कृति में कवि पुरातनता की शृंखलाओं को तोड़ देना चाहता है। यहीं से वह 'शिवम्' की ओर आकर्षित होता है—

गा कोकिल, बरसा पावक-कण!
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन
पावक-पग धर आए नूतन
हो पल्लवित नवल मानव-पन।

वास्तव में 'युगान्त' का पंत के काव्य में विशिष्ट स्थान है। इसी को ध्यान में रखते हुए डा० नगेन्द्र ने भी लिखा है—"युगान्त में पंत जी सौन्दर्य युग का अन्त कर देते हैं।······युगान्त की कविताएँ चिन्तन-प्रधान हैं। ३४-३५ में लिखी हुई प्रायः सभी कविताओं में दार्शनिक गाम्भीर्य मिलेगा।" वास्तव में युगान्त तक आते-आते कवि कल्पना-लोक को छोड़कर ठोस मर्त्य लोक में विचरण करने लगता है। उसकी दृष्टि आत्मदर्शन से विश्वदर्शन की ओर उन्मुख होती है। इसमें कवि की सुन्दरतम रचनाएँ शिवत्व का वरण कर लेती हैं—

है पूर्ण प्राकृतिक सत्य ! किन्तु मानव-जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम आतप खग !

अतः सौन्दर्य-युग पर विहगम दृष्टि डालते हुए कहा जा सकता है कि 'वीणा' से 'युगान्त' तक कवि का विकास प्रकृति से मानव की ओर, कल्पना से चिन्तन की ओर, नारी-कला से पौरुष-कला की ओर है। परन्तु उसमें सौन्दर्य-भावनाओं की प्रधानता है और अन्त मे उसका दृष्टिकोण भूत और आत्मा के समन्वय की ओर उन्मुख होता है। कवि पर गाँधीवाद का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

शिवम युग—कवि की परिवर्तित विचारधारा की पृष्ठभूमि युगान्त में मिलने लगती है। 'युगान्त' मे कवि गांधीवाद से प्रभावित दिखाई देता है। उसकी विचारधारा में आगे चलकर मार्क्सवाद भी मिल जाता है। सन् १६३४-३५ में भारतीय विचारधारा मे मार्क्सवादी सिद्धान्तों का अत्यधिक प्रचार हुआ। रूस में होने वाली समाजवादी क्रान्ति ने भारतीय समाज मे भी एक वैचारिक क्रान्ति उपस्थित कर दी। मार्क्सवाद के मुख्य आधार थे—शोषण की समाप्ति और साम्यवाद की स्थापना। साम्यवादी विचारधारा ने शोषण और अन्याय के प्रति विद्रोह की भावना जाग्रत कर साहित्य में नई प्रवृत्तियो को जन्म दिया। इस नई चेतना के प्रति पंत का बौद्धिक आकर्षण हुआ। शोषित के प्रति उनमें बौद्धिक सहानुभूति जागी और शोषक के प्रति भावुक विद्रोह। कवि ने ग्राम की पीडित और उपेक्षित जनता के चित्र खीचे और उनके प्रति सहानुभूति दिखाते हुए शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी। इस सम्बन्ध मे पंत ने यह स्वयं स्वीकार किया है कि, "युगवाणी तथा ग्राम्या मे मेरी क्रान्ति-भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नही होती, उसे आत्मसात् करने का प्रयत्न भी करती है।" 'युगवाणी', जैसाकि डा० नगेन्द्र ने भी लिखा है—"भारतीय साम्यवाद की वाणी है।" 'युगवाणी' में कवि ने वर्ग-रहित समाज की कल्पना की है—

श्रेणी में नहीं विभाजित
धन बल से हों जहां न जन श्रम शोषण
परित भवजीवन के निखिल प्रयोजन।

मार्क्स की प्रशंसा करते हुए कवि लिखता है—

धन्य मार्क्स, चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदयशिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर !

मार्क्स से प्रभावित होने के कारण ही कवि ने शोषित कृषकों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है—

कृषक उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित
सामूहिक कृषि-शल्प अन्यथा कृष मृत ।

इस प्रकार 'युगवाणी' तक आते-आते कवि जन-मानस पर छा जाता है । इसी युग की एक प्रतिनिधि रचना 'ग्राम्या' है । 'ग्राम्या' में कवि को "ग्रामीणों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति की प्रेरणा है ।" 'ग्राम्या' में कवि पूर्णतया बौद्धिक नहीं रहा है, अपितु उसमें भावुकता का भी समावेश हो गया है । ग्रामीणों के सुख-दुःख के विशद् चित्र उन्होंने अत्यन्त सजीव रूप से अंकित किये हैं—

यह तो मानवलोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम,—सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित ।
झाड़ फूंस के विवर,—यही क्या जीवन शिल्पी के घर ?
कीड़ों से रेंगते कौन ये ? बुद्धि प्राण नारी-नर ?

किन्तु इतनी दुर्दशा के होते हुए भी उनमें मनुष्यता की कमी अथवा अभाव नहीं है—

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों में ही अन्तर्हित
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृत ।

अतः कहा जा सकता है कि कवि अपने विकास-क्रम में प्रकृति के प्रांगण से ठोस मानव-जगत् में आया । यहाँ आकर उसकी दृष्टि मानव-कल्याण की ओर मुड़ी । उसने देखा कि मानव पिस रहा है । अतः उसने शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी और कहा—

जन विमुक्त हो जन शोषण से,
हो मानव अधिकारी धन का ।

सत्य युग—युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या में कवि ने मार्क्सवादी विचार-धारा का अवश्य ही समर्थन किया था, किन्तु उनमें उसके व्यक्तित्व को पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं मिली । प्रगति युग की रचनाओं में भी भूत और आत्मा के समन्वय का संकेत कवि ने अनेक स्थानों पर किया था । सन १९४० तक ग्राम्या की रचना हो चुकी थी । कवि ने सन् १९४२ में अस्वस्थ रहने के कारण पाण्डिचेरी के सन्त अरविन्द के संसर्ग में कुछ समय बिताया । उनकी मूल वृत्ति फिर से जग गयी और इस प्रकार उनका कवि-मन भौतिकता से दूर हो गया ।

वे लोक जीवन से सम्बद्ध होकर भी उससे अलग हो गये। यहाँ इससे यह अभिप्राय नहीं कि वे विरक्त हो गये, अपितु उन्होंने मानव-समस्या को एक नवीन दृष्टिकोण में परखा। पंत जी का विश्वास है कि बाह्य विकास के साथ-साथ अन्तर का विकास भी अनिवार्य है। अविकसित चेतना पार्थिव विकास में सहायता नही दे सकती। इसीलिए वे भूत और चेतना, अध्यात्म और भौतिकता तथा मन और मस्तिष्क का समन्वय करके एक पूर्ण मानवीय विकास की कल्पना करते हैं। उनका अध्यात्मवाद मनोवैज्ञानिक अध्यात्मवाद है जो अन्तश्चेतना के विकास के आधार पार्थिव मानवता के पूर्ण विकास के लिए उत्सुक है। अतः इसमें विरक्ति नहीं, अनुरक्ति की भावना सन्निहित है।

इस युग की प्रतिनिधि रचनाएँ है—स्वर्णधूली, स्वर्णकिरण और उत्तरा। कवि ने 'स्वर्ण' शब्द का प्रयोग चेतना के प्रतीक के रूप में किया है। इन रचनाओं पर अरविन्द दर्शन का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। बच्चन जी का कथन है—' इनके अधिकांश भाग पर उनके दर्शन और विचारों की छाया पड़ी है।.........श्री अरविन्द के दर्शन, विचार-भावों और स्वप्नों की व्याख्या स्वर्णकिरण और उत्तरा में की गयी है।" उत्तरा की भूमिका में कवि ने अन्तश्चेतनावादी नव-मानववाद को स्पष्ट किया है। वे लिखते है—"इसलिए भविष्य में हम जिस मानवता अथवा लोक-संस्कृति का निर्माण करना चाहते हैं, उसके लिए हमें बाहर-भीतर दोनों ओर से प्रयत्न करना चाहिए।" 'स्वर्णकिरण' में चेतना के विशद् एवं व्यापक रूप और प्रभाव का चित्रण किया गया है—

हंसी लो, स्वर्ण-किरण शिखर आलोक वरण
विचरती,स्वर्ण किरण धारा पर ज्योति चरण।

इसी प्रकार भूत और आत्मा का समन्वय भी द्रष्टव्य है—

मै कहने आई रुको-रुको मति ही में मत बह जाओ।
ओ इच्छा से पागल सरिते सोचो मन को समझाओ।

समग्रत: पंत का काव्य लौकिक, और आध्यात्मिक दोनों तत्त्वों को लेकर चला है। उनका काव्य युगधर्म के भौतिक, सामाजिक और नैतिक पक्षों के साथ आध्यात्मिक चेतना के सूत्र भी समानान्तर लेकर चला है। इस प्रकार उनका जीवन-चिन्तन एकांगी न होकर सन्तुलित और परिपूर्ण बन गया है।

—: ० :—

४ | प्रेम और सौंदर्य

मानव-प्राण में प्रेम की भावना आदिकाल से ही उसके हृदय की धड़कन और रक्त की लालिमा बनकर जीवित है। जहां साधारण व्यक्ति इसका आस्वाद मात्र करके ही रह जाता है, वहां कवि इस अनुभव को प्रकाशित करके संतोष-लाभ करता है। जीवन के समान साहित्य की भी मूल प्रेरणा प्रेम ही है। संसार के समस्त साहित्य का वृहदांश प्रेम को लेकर ही निर्मित हुआ है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में छायावादी कविता का भी प्रधान स्वर प्रेम और सौन्दर्य ही है। छायावादी चतुष्टी में पंत का व्यक्तित्व भी इन्हीं दो तत्त्वों से बना है। पंत का प्रायः समग्र साहित्य प्रेम और सौन्दर्य के विविध आयामों को प्रस्तुत करता है।

प्रेम और सौंदर्य : स्वरूप-विवेचन—नारद ने 'भक्ति सूत्र' में प्रेम की व्याख्या करते हुए लिखा है—"अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् मूकास्वादनवत्।" अर्थात् प्रेम का स्वरूप अवर्णनीय है तथा इसका आस्वाद गूंगे के गुड़ के समान है। दूसरे शब्दों में, प्रेम का आस्वाद नितान्त वैयक्तिक है। इसी प्रकार आचार्य शुक्ल का भी कथन है—"विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता है जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।" आचार्य शुक्ल के कथन से दो बातों पर प्रकाश पड़ता है—(१) प्रेम में लगाव अथवा आकर्षण होता है, (२) प्रेम सात्विक अथवा वासना-रहित होता है। इसी की व्याख्या करते हुए कवीन्द्र रवीन्द्र का कथन है—"It (love) is not a mere sentiment; it is truth, it is the joy that is at the root of all creation." प्रेम के इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेम एक गहन, गम्भीर, पवित्र अनुभूति-जन्य आकर्षण है, जिसके उदय होने से व्यक्ति को आनन्द की प्राप्ति होती है। प्रेम अथवा आकर्षण का मूलाधार सौंदर्य है। सौंदर्य में आकर्षण-शक्ति विद्यमान रहती है। आचार्य शुक्ल ने सौंदर्य की व्याख्या करते हुए लिखा है—"जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार-परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही

वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायेगी।······सौंदर्य बाहर की वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है।"

छायावादी कवियों ने भी सौन्दर्य के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं। प्रसाद का अभिमत है—"उज्ज्वल वरदान चेतना का,-सौदर्य जिसे सब कहते हैं।" पंत के शब्दों में—"अकेली सुन्दरता कल्याणि सकल ऐश्वर्यों का संधान।" पाश्चात्य विचारकों ने भी सौंदर्य के सम्बन्ध मे लिखा है। हेगेल (Hegel) लिखते हैं—"Beauty is the shining of the idea through matter." अर्थात् पदार्थ में आत्मा का प्रकाशन ही सौंदर्य है।

प्रेम और सौदर्य के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों वृत्तियाँ काव्य में अनादि काल से ही स्थान पाती रही हैं। इसके साथ ही प्रेम (love) काम (sex) का पर्याय नहीं है। सौदर्य केवल बाहरी रूप रंग न होकर अखण्ड अन्विति है जो बाह्य और आन्तर के आकर्षणों को प्रस्तुत करती है। वस्तुतः छायावादी कवियों ने प्रत्येक क्षेत्र में नवीनता का संचार किया। उन्होंने प्रेम और सौदर्य को उस ढग पर व्यंजित नहीं किया जिस रूप मे वह पूर्ववर्ती काव्य में हो चुका था। छायावादी प्रेम और सौदर्य अपने ढंग का अपूर्व तथा अनूठा है। छायावादी प्रेम की निजी विशेषताएँ है—अस्पष्ट आलम्बन तथा प्रेम का सूक्ष्म, काल्पनिक तथा वायवी रूप। पत की प्रेमाभिव्यक्ति विविध रूपों में हुई है, यथा—

(क) प्रेमिका-संबंधी, (ग) मानव के प्रति (सहानुभूतिपरक), और
(ख) प्रकृति सम्बंधी, (घ) ईश्वर सम्बंधी।

प्रेमिका सम्बन्धी—प्रेमिका सम्बन्धी प्रणय-गाथा कवि ने ग्रन्थि में प्रस्तुत की है। यौवन की दहलीज पर कवि ने कदम रखा तो उसकी कल्पना की दुनिया साकार हो गयी। कवि का प्रणय-सम्बन्ध एक सुन्दर बालिका से हो गया। प्रथम दर्शन में ही भावनाओं का मूक आदान-प्रदान हुआ और हृदयों का अनजाने में ही मेल हो गया—

"एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था।"

किन्तु दुर्भाग्य से यह प्रणय सम्बन्ध अधिक समय तक टिक नही सका और

कवि को सदा-सदा के लिए वियोग के गहन अंधकार में पीछे छोड़ गया। अब कवि के लिए प्रेम वेदना का ही दूसरा नाम है—

"और भोले प्रेम! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से जहां
झूमते गज से विचरते हो, वही
आह है, उन्माद है, उत्ताप है।"

और इस उन्माद और उत्ताप से कवि का जीवन नितान्त कारुणिक हो जाता है। वह जीवन की सम्पूर्ण निधि को लुटाकर कंगाल हो जाता है—

"शैवालिनी! जाओ तुम मिलो सिंधु से
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके! चूमो तरंगों के अधर
उड़गनो गावो पवन वीणा बजा
पर हृदय सब भांति तू कंगाल है॥"

'ग्रंथि' में उत्पन्न विरह 'पल्लव' में अधिक मुखरित हुआ है। यहां पहुँचकर कवि जीवन के थपेड़ों से कुछ अनुभव प्राप्त कर संयत हो जाता है। किन्तु निष्ठुर विरह के प्रति कवि के मन में आक्रोश यथावत् ही है—

"शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह!—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा!"

धीरे-धीरे कवि शारीरिक आकर्षण छोड़कर आदर्श एवं कल्पना में डूब जाता है। 'गुंजन' में प्रेम का यही सूक्ष्म रूप मिलता है और कालान्तर में कवि का प्रेम सीमित आकार को छोड़कर असीमित हो जाता है। वहीं प्रेम का उदात्त स्वरूप मिलता है—

"देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की;
यह अनहोनी रीति,
देह वेदी हो प्राणों के परिणय की।"

प्रकृति सम्बन्धी—पंत ने अपने रचना स्रोत को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"अपने काव्य-जीवन पर दृष्टिपात करने पर मेरे भीतर यह बात स्पष्ट हो

उठती है कि मेरे किशोर-प्राण मूक को बाहर लाने का सर्वाधिक श्रेय मेरी जन्मभूमि के उस नैसर्गिक सौंदर्य को है जिसकी गोद में पलकर मैं बड़ा हुआ हूं।" यही कारण है कि पंत के समस्त काव्य का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में प्रकृति से अवश्य रहा है। प्रारम्भ में प्रकृति को ही वे सब कुछ समझते थे और इसी कारण नारी-सौदर्य की भी उपेक्षा करते थे—

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूं लोचन ?"

प्रकृति से स्वभावतः सम्बद्ध होने के कारण पंत ने प्रकृति को विविध रूपों में देखा, परखा और समझा है। प्रकृति उनके लिए मां है, जिसका सुख वो प्राप्त नहीं कर सके—

"मां, मेरे जीवन की हार
तेरा उज्ज्वल हृदय हार हो अश्रु-कणों का यह उपहार !"

मां के अतिरिक्त पंत को प्रकृति से प्रेयसी का प्रेम भी मिला है। पंत के लिए प्रकृति सदैव प्रेरणादायक रही है। प्राकृतिक उपादानों से वे इतने एकमेव हो जाते हैं कि उन्हें उन्हीं में परम सत्ता का आभास होने लगता है। समस्त प्रकृति में उन्हें एक ही चेतना का आभास मिलता है—

"एक ही तो असीम उल्लास विश्व में पाता विविधाभास;
तरल जलनिधि में हरित विलास, शांत अंबर में नील विकास;
वही उर में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस, कुसुमों में बास,
अचल तारक पलकों में हास, लोल लहरों में लास !"

पंत ने छायावादी कवियों की भांति जड प्रकृति पर चेतना का आरोप कर उसे मानव की भांति चित्रित किया है। नारी के रूप में प्रकृति का उपयोग कवि ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए किया है—संध्या का वर्णन :

"कहो, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन !"

मानव के प्रति (सहानुभूतिजन्य प्रेम)—पंत के काव्य में प्रारम्भ में जहां

प्रकृति-प्रेम, नारी-प्रेम मिलता है, वहीं उनके परवर्ती साहित्य में मानव जाति के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गयी है। कवि पर मार्क्स का प्रभाव पड़ा और उसके फलस्वरूप पंत ने मानव-मूल्यों एवं उच्चादर्शों के प्रति अपनी बौद्धिक सहानुभूति प्रकट की। युगवाणी, ग्राम्या जैसी रचनाओं में मानव-प्रेम की ही अभिव्यक्ति हुई है :

"मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक-स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष-विमर्षों का!"

वास्तव में आज मानव अनेक प्रकट कुप्रथाओं का शिकार हो रहा है, इसीलिए कवि रूढ़ियों के नष्ट-भ्रष्ट होने को स्वर देता है—

"गा कोकिल, बरसा पावक कण!
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण - पुरातन,
ध्वस भ्रष्ट जग के जड़ बंधन!
पावक [पग धर आवें नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन!"

कवि इसी नवमानवता में ऐसी समाज-व्यवस्था की परिकल्पना करता है जिसमें सभी मानव एक दूसरे से सौहार्द्रपूर्वक रह सकें तथा साथ ही जिसमें मानव अभावों का पुतला मात्र न बना रह जाए—

"जीवन की यह क्षणधूलि रह सके जहां सुरक्षित,
रक्त मांस की इच्छाएं जन की हों पूरित।
मनुज प्रेम से जहां रह सके,—मानव ईश्वर।
और कौन सा स्वर्ग चाहिए तुम्हें धरा पर!"

कवि का मानव-प्रेम साम्यवाद पर आधारित है। शोषण की लगातार चक्की में पिसने के कारण मानव कराह उठता है। साम्यवाद ही अब उनके लिए आशा की किरण है—

"ध्वस्त आज साम्राज्य, धनपति वर्गों का शासन
प्रस्तर युग की जीर्ण सभ्यता, मरणासन्न, समापन।
... ...
साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग करता मधुर पदार्पण
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन।"

ईश्वर-प्रेम—भौतिक धरातल से निरन्तर ऊपर उठता हुआ पंत का प्रेम आध्यात्मिकता के उच्च आकाश पर प्रतिष्ठित हो गया है। स्वर्णधूलि, स्वर्ण-किरण आदि काव्यों में पंत ने मानव-प्रेम को ईश्वरीय प्रेम के परिप्रेक्ष्य में देखा है। इन काव्यों में आकर कवि भौतिक सुख-दुःख को भूलकर अज्ञात सत्ता के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करता है—

"धन्य आज का स्वर्ण दिवस, नवलोक जागरण
नव संस्कृति आलोक करे जन भारत वितरण
नवजीवन की ज्वाला से दीपित हो दिशि-क्षण
नव मानवता में मुकुलित धरती का जीवन।"

... ...

"छूटा अब सुख-दुःख का क्रन्दन
मिटा झूठ सच का संघर्षण
भले बुरे का हटा नियन्त्रण
प्राण-चेतना के परिणय में।"

वास्तव मे प्रेम के इस उच्च धरातल पर अवस्थित कवि का मन गहन चिन्तन और मनन प्रस्तुत करता है। दिव्य चेतना के आभास मात्र से जीवन मे एक नवीन गति, स्फूर्ति आ जाती है—

"सिमट गई जीवन तन छाया
जाग गया मन सोई काया
उतर प्रकाश तुम्हारा आया
मोह भार से मुक्त हृदय में
लगा हर्ष नव कपने।"

सौन्दर्य-चेतना

पंत के काव्य में यद्यपि सत्यं और शिवं का स्थान है, तथापि प्रधान स्वर सुन्दरम् का ही है। वास्तव में उनका काव्य-प्रणयन का आरम्भ सुन्दरम् से ही हुआ है। इसी को ध्यान में रखते हुए डॉ० नगेन्द्र का कथन है—"पंत हिन्दी के प्राचीन और आधुनिक कवियों में एकमात्र सुन्दर के कवि है।" कवि की सौदर्य-चेतना प्रकृति के क्षेत्र में प्रस्फुटित हुई लेकिन ग्रंथि में आकर वह नारी-सौन्दर्य से जुड़ गई। कवि का प्रणय-सम्बंध किसी बाला से हुआ और उसी के सौन्दर्य से अभिभूत होकर कवि ने लिखा है—

"इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में,
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल
सुमन की स्मिति में, लता के अधर में।
निज पलक, मेरी विकलता, साथ ही
अवनि से, उर से मृगाक्षी ने उठा,
एक पल, निज स्नेह श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी!"

वास्तव में पंत की सौंदर्यानुभूति में काल्पनिकता अधिक है, मांसलता कम। छायावादी कवियों ने प्रेयसि के सौंदर्य का चित्रण करते हुए व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। श्रीमती शचीरानी गुर्टू का इस सम्बन्ध में कथन है—"इन कवियों की प्रेयसियों की रूप-राशि अखिल विश्व में बिखरी हुई है और उनके नयनों में तीव्र मादकता और अनन्त स्नेह छलक पड़ रहा है; लजीली पलकों पर बिखरी अलकों के साथ ओट करती हुई कोमल आरक्त कपोलों की अरुणिमा प्रकृति के तार-तार में मुखरित हो रही है और उनकी वाणी का अक्षत माधुर्य अणु-अणु में एक दिव्य स्पन्दन कर रहा है।" इसी कारण पंत ने अपनी प्रेयसि के रूप-सौंदर्य का वर्णन करते हुए सर्वव्यापकता का ध्यान रखा है—

उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों के सांस।

पंत की सौंदर्यानुभूति मनोन्द्रिय अथवा वायवीय है। छायावादी कवियों की यह विशिष्टता है कि वे सौंदर्य को प्रस्तुत करते हुए भी मानसिक धरातल को नहीं छोड़ते। 'भावी पत्नी के प्रति' नामक कविता में हमें यही विशेषता मिलती है—

हृदय के पलकों में गतिहीन
स्वप्न संसृति-सी सूक्ष्माकार,
वास भावुकता बीच नवीन
परी-सी धरती रूप अपार।"

पंत ने सौंदर्य को नितान्त पवित्र माना है। डॉ० बच्चन के शब्दों में, "सौंदर्य को तब तक नहीं अपनाया, जब तक वह पावन भी न हो। कवि की रुचि पर सदा सन्त के संयम का अनुशासन रहा है। वे जहाँ 'उज्ज्वल तन' देखते है वहाँ 'उज्ज्वल मन' भी देखते हैं। ·· ······नारी का सौंदर्य सकल ऐश्वर्यो की खान है, पर उन्हें अभिमान उसकी पावनता का ही है।" यथा—

तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार।
तुम्हारे मृदु उर में सुकुमारि
मुझे है स्वर्गागार।
तुम्हारे गुण हैं मेरे गान
मृदुल दुर्बलता ध्यान,
तुम्हारी पावनता अभिमान
शक्ति पूजन सम्मान,
तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औ हास
सृष्टि के उर की सांस !"

कवि की नारी-सौंदर्य विषयक धारणा दैहिक न होकर दैविक अथवा अध्यात्मिक है। नारी का सौदर्य उसके आत्मोत्कर्ष पर निर्भर करता है—

"नारी की सुन्दरता पर मैं होता नहीं विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनंदित।
विशद स्त्रीत्व का ही मैं मन में करता हूँ नित पूजन,
जब आभा-देही नारी आह्लाद प्रेम का वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन।"

सारांश में कहा जा सकता है कि पंत जीवन में प्रेम एवं सौंदर्य की शक्ति एवं महत्त्व के कायल हैं। पंत का प्रेम शारीरिक एवं काल्पनिक दोनों ही है। उनके प्रेम में धरती एवं स्वर्ग का मुखर आलिंगन प्राप्त होता है।

············

५ | प्रकृति चित्रण

मानव और प्रकृति का चिर सम्बन्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी मानव का प्रारंभिक सम्बन्ध प्रकृति से ही रहा है। इस कारण मानव की आन्तर तथा बाह्य दोनों ही प्रकृति से प्रभावित रहते हैं। प्रकृति के अनेक तत्त्व आदिकाल से लेकर आज तक मानव को प्रभावित करते रहे हैं। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"वैदिक वाङ्गमय का अनुशीलन इस बात का साक्षी है कि उस काल के ऋषि-मुनियों ने विराट् चेतन सत्ता के स्तवन-प्रसंग में उषा, सविता, वरुण, चन्द्र आदि प्रकृति-तत्त्वों का प्रचुर प्रमाण मे वर्णन किया है। उनके निरतिशय सौन्दर्य एवं देदीप्यमान तेज का वर्णन जिन प्रकृति-उद्गीथों में किया गया है उसे पढ़कर पाठक का मन केवल अभिव्यंजना की प्रौढ़ शैली एवं कल्पना की समृद्धि पर ही मुग्ध नहीं होता अपितु प्रकृति की व्यापक सत्ता तथा दुर्दर्ष क्षमता पर भी रीझ उठता है।"

काव्य मानव-जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण स्वभावतः प्रकृति से जुड़ जाता है। इसी कारण विश्व के सभी महान् कवियों की रचना का अधिकांश भाग प्रकृति की गोद में बैठकर लिखा गया है। प्रकृति के विशाल प्रांगण में कवि अपने लिए विविध उपकरणों की खोज करता है। कहीं-कहीं कवि मानव से भी अधिक प्रकृति से प्रेम करता है। बायरन ने एक स्थल पर लिखा है—'I love rot man the less, but nature more" पंत के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। पंत की काव्य प्रेरणा तथा वर्णन-विषय प्रकृति ही रही है। कवि की वैयक्तिक रुचि और तत्कालीन परिस्थितियों का यदि कुछ भी प्रभाव उसकी कृतियों पर माना जाए तो हम कह सकते है कि पंत के विभिन्न प्रेरणा-स्रोतों में प्रकृति का विशेष हाथ रहा है। डॉ० प्रभाकर माचवे के शब्दों में—"उनका प्रथम विषय है, प्रकृति, गौण विषय है मानव। मानव में भी जो प्रकृति अविकृत है उधर ही उनकी संतृप्त आँखें देखी जाती है। जो विकृत है उनकी ओर से वह सौंदर्यवादी आत्मरती कवि जैसे नयन मूँद लेता था।" यही कारण

है कि प्रारम्भिक रचनाओं में वे नारी के रूप-वैभव की अपेक्षा प्रकृति के प्रांगण में ही विचरण करना चाहते हैं—

> **छोड़ द्रुमों की मृदु छाया**
> **तोड़ प्रकृति से भी माया**
> **बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?"**

काव्य का प्रेरणा-स्रोत—प्रकृति के अनन्य चितेरे पंत के लिए प्रकृति ही काव्य रचना का प्रेरणा-स्रोत रही है। उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए लिखा है—"कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्म-भूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी मुझे याद है, मैं घण्टों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था। जब कभी मैं आंख मूँदकर लेटता था तो वह दृश्य चुपचाप मेरी आँखों के सामने घूमता था।........ और यह शायद पर्वत-प्रान्त के वातावरण का ही प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गम्भीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह निश्चित रूप से अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौंदर्य, स्वप्न और कल्पना-जीवी बनाया वहाँ दूसरी ओर जनभीरु भी बना दिया।" कवि के इस स्पष्टीकरण से यह पुष्ट हो जाता है कि पंत का प्रेरणा-स्रोत प्रकृति ही रही है। वास्तव में प्रकृति की यह प्रेरणा कवि के जीवन का एक अंग ही बन गयी है। पंत के वैयक्तिक जीवन में चाहे कितना अन्तर आ गया है परन्तु प्रकृति का साथ उन्होंने नहीं छोड़ा है। हाँ, यह अवश्य है कि समय तथा परिस्थितियों के अनुरूप उनके दृष्टिकोण में अन्तर आता रहा है।

'वीणा' पंत का प्रथम काव्य-संग्रह है। 'वीणा' से लेकर 'लोकायतन' तक उनकी विचारधारा निरन्तर प्रगतिशील रही है। 'वीणा' वास्तव में प्रकृति के रंग-बिरंगे फूलों का गुलदस्ता है। कवि का कथन है—"वीणा काल में मैंने प्रकृति की छोटी-मोटी वस्तुओं को अपनी कल्पना की तूलिका से रंगकर काव्य की सामग्री इकट्ठी की है।" वस्तुतः 'वीणा' काल में पंत प्रकृति के मुग्धा रूप पर बालक के समान रीझते थे—

पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश; पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल दर्पण-सा फैला है विशाल!

यहाँ प्रकृति कवि के लिए एक ओर माँ है तो साथ ही सुकोमल प्रेयसी भी। पंत माँ के नैसर्गिक सुख से वंचित रहे, अतः उन्होंने इस सुख की क्षति-पूर्ति प्रकृति से की—

माँ मेरे जीवन की हार
तेरा उज्जवल हृदयहार हो अश्रुकणों का यह उपहार।

यही कारण है कि 'वीणा' का प्रकृति-सौन्दर्य आदर्श भावना का द्योतक है। 'वीणा' के प्रकृति-चित्रण के सम्बन्ध में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का कथन है—यहाँ प्रकृति को आलम्बन बनाकर जैसी कोमल और उल्लासमयी अनुभूतियाँ पंतजी ने प्रकट की हैं वैसी अन्य आधुनिक कवियों में दुर्लभ हैं। पंत का स्वयं कथन है, 'समस्त काव्य-पट प्राकृतिक सुन्दरता के धूप-छाँह से बना हुआ है।"

'ग्रंथि' में आकर कवि की विचारधारा में थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ है। वह प्रकृति को अब उतनी भावोत्तेजना के रूप में ग्रहण नहीं करता, जितना 'वीणा' में। यही कारण है कि 'पल्लव' तक आते-आते प्रकृति का रूप उतना आत्मीय नहीं रहता, जितना पहले की कृतियों में। 'पल्लव' की कविताओं में प्रकृति-प्रेम की गहराई के स्थान पर उसका काल्पनिक वर्णन उपलब्ध होता है। 'गुंजन' तक आते-आते कवि जीवन की ओर अधिक उन्मुख हो गया है। वह प्रकृति-सौन्दर्य के साथ-साथ नारी-सौन्दर्य के प्रति भी आकर्षित होता है। 'युगान्त' पंत के काव्य-ग्रन्थों में 'पल्लव' के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें कवि अपने वैचारिक क्षेत्र में परिवर्तन के मोड़ पर है। वह पुरानी विचारधारा को त्यागकर नये जीवन-दर्शन की ओर मुड़ा है। इसी कारण कवि प्रकृति-सौन्दर्य-निरीक्षण के स्थान पर प्रकृति के उपयोगी रूप को प्रस्तुत करता है। यहाँ कवि नव-निर्माण में संलग्न दिखाई देता है—

कंकाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर पल्लव लाली।
प्राणों की मर्मर से मुखरित जीवन की मांसल हरियाली॥

इस लिए कवि यहाँ मानव को प्रकृति से अधिक सुन्दर बताता है:

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव! तुम सबसे सुन्दरतम!

'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में भी यही बात दिखाई देती है। 'युगवाणी' में आकर प्रकृति निरपेक्ष सत्ता मात्र नही रहती। वे प्रकृति से स्पष्टतः कहते हैः

हार गई तुम
प्रकृति !
रच निरूपम
मानव कृति !

'ग्राम्या' मे आकर कवि की भावुक आदर्शवादिता समाप्तप्राय हो जाती है। 'ग्राम्या' में प्रकृति के वैभवपूर्ण अंगों के स्थान पर उसकी दरिद्रावस्था का चित्रण करते हुए पंत ने लिखा है—"युगवाणी के दृष्किोण से यदि हम अपने ग्रामीणों के जीवन को देखें तो आप गाँवों को शान्ति और प्राकृतिक सुन्दरता की रंगस्थली नहीं पायेंगे।" इसी कारण 'ग्राम्या' की प्रकृति भिन्न है—

यहाँ न पल्लव वन में मर्मर यहाँ न विहगों में गुंजन
जीवन का सगीत बन रहा यहाँ अतृप्त हृदय का रोदन !

'स्वर्ण किरण' में आकर प्रकृति वर्णन मात्र के लिए रह गई। उसका वायवी भावरूप हीं शेष बचता है। 'स्वर्णधूलि' में कवि प्रकृति से नाता तोड़कर अध्यात्म-चिन्तन में लग जाता है। 'उत्तरा' में कवि पुनः प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ है, परन्तु यहाँ आकर उसकी कला सूक्ष्म रूप धारण कर लेती है। अतः 'वीणा' से लेकर 'अतिमा' तक कवि के दृष्टिकोण में महान् अन्तर उपस्थित हुआ है। 'वीणा' की प्रकृति मानव की उपास्य है और 'अतिमा' की प्रकृति मानव की उपासक।

प्रकृति चित्रण की विविध प्रणालियाँ—हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण की मुख्यः निम्न शैलियाँ प्रचलित हैं :

(१) आलम्बन रूप में,
(२) उद्दीपन रूप में,
(३) अलंकार रूप में,
(४) मानवीकरण के रूप में,
(५) परमसत्ता (रहस्यात्मक) के आभास रूप में,
(६) उपदेशक रूप में, और
(७) पृष्ठभूमि के रूप मे,

आलम्बन रूप में—जहाँ प्रकृति का वर्णन साधन रूप की अपेक्षा साध्य रूप मे किया जाता है, वहाँ आलम्बन रूप कहलाता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रकृति चित्रण प्रकृति के लिए किया जाता है। इस चित्रण में प्रकृति की अपनी सत्ता होती है। आचार्य शुक्ल ने इस सम्बंध मे लिखा है—"प्रकृति का

अपना रूप भी है।" इस प्रणाली के अन्तर्गत कई प्रकार के वर्णन मिलते हैं; यथा—(क) वस्तु परिगणन-शैली, (ख) संश्लिष्ट चित्रण, और (ग) सामान्य वर्णन। वस्तु परिगणन शैली में कवि प्राकृतिक वस्तुओं का नाम मात्र गिना देता है, उसमें सम्प्रेषणीयता का अभाव होता है। पंत प्रकृति के सूक्ष्म चितेरे हैं, अतः यह शैली उनमें अधिक नहीं मिलती। 'ग्राम्या', 'ग्रामश्री' कविता में यह विशेषता अवश्य ही पाई जाती है—

लहलह पालक महमह धनिया, लौकी औ' सेम फली फैली।
मखमली टमाटर हुए लाल, मिरचों की बड़ी हरी थैली।

पंत के काव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र ही अधिक मिलते हैं। वर्षा ऋतु में पर्वत-प्रदेश के अमूर्त सौन्दर्य की छटा दर्शनीय है:

पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश; पल-पल परिवर्तित, प्रकृति वेश।
मेखलाकार पर्वत अपार अपने सहस्र दृग सुमन फाड़।
अवलोक रहा है बार-बार नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल दर्पण-सा फैला है विशाल।

यहाँ प्रकृति कवि के लिए साध्य है, साधन नहीं। इस चित्रण में कवि ने अपनी भावनाओं का आरोपण नहीं किया।

उद्दीपन रूप में—इस रूप में प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता नहीं रहती। व्यक्ति अपनी भावनाओं के अनुरूप ही प्रकृति को देखता है। यहाँ प्रकृति मानव की सुख-दुखात्मक अनुभूतियों को उद्दीप्त करती हुई दिखाई देती है। कवि विरह में तप्त है, सम्पूर्ण प्रकृति उसके विरह को उद्दीप्त करती है:

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन मानस-सा उमड़ा अपार मन;
गहरे, धुंधले, धुले सांवले मेघों से मेरे भरे नयन।
... ...
धधकती है जलदों से ज्वाल बन गया नीलम व्योम प्रवाल;
आज सोने का संध्याकाल जल रहा जतुगृह-सा विकराल।

यहाँ समस्त प्राकृतिक उपकरण कवि की विरहानुभूति को उद्दीप्त कर रहे हैं। 'गुंजन' की कविताओं में कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप को ही ग्रहण किया है।

अलंकार रूप में—अलंकार रूप में कवि प्रकृति के उपकरणों को काव्य-शोभा के वर्द्धन के लिए अलंकार के रूप में प्रयुक्त करता है। वस्तुतः उक्ति में

चमत्कार लाने के लिए प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को उपमान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी को प्रकृति का आलंकारिक चित्रण कहा जाता है। पंत ने प्रिया की चेष्टाओं को प्राकृतिक उपमानों के सहारे किस प्रकार स्पष्ट किया है, इसका चित्रण निम्नलिखित रूप में किया गया है—

कमल पर जो चारु खंजन प्रथम
पंख फड़फड़ाना नहीं थे जानते,
चपल चोखी चोटी पर पंख को
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।
... ...

इन्दु की छवि में तिमिर के गर्भ में, अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में
एक उत्सुकता विचरती थी, सरल सुमन की स्मिति में, लता के अधर में।

मानवीकरण के रूप में—जड़-चेतन प्राकृतिक उपकरणों पर मानवीय चेतना, क्रिया-कलापों का आरोपण ही मानवीकरण कहलाता है। इस विधा में अचेतन वस्तुएँ एवं अमूर्त भावनाएँ इस रूप में प्रस्तुत की जाती हैं कि वे मानव जैसी चेतना-सम्पन्न दिखाई देती हैं। पंत ने इस प्रकार के विपुल चित्र अपनी कविताओं में दिए हैं। चाँदनी को मुग्धा नायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शरद हासिनी
मृदु करतल पर शशि मुख धर।

इसी प्रकार 'छाया' को सम्बोधित करते हुए कवि लिखता है—

कौन कौन तुम परहित वसना म्लानमना भूपतिता-सी,
वातहता विछिन्न लता-सी रति-श्रान्ता व्रज वनिता-सी।

तथा 'गंगा' का चित्रण—

दो बाँहों-से दूरस्थ तीर धारा का कृश कोमल शरीर
आलिंगन करने को अधीर!
अति दूर क्षितिज पर विटप माल लगती भ्रू-रेखा सी अराल।

उपदेशक के रूप में—कवि अपने आदर्शों की स्थापना प्रकृति से उदाहरण देकर करता है। नित्य-प्रति वह जो कुछ भी देखता है, अपने अनुभवों के आधार पर उनका ही चित्रण करता है। छायावादी कवि होने के कारण

पंत मध्यकालीन कवियों की भांति उपदेशक नही बन गए है, किन्तु फिर भी कही-कही उन्हें प्रकृति से प्रेरणा मिलती है—

हँसमुख प्रसून सिखलाते पलभर भी तो हंस पाओ,
अपने उर की सौरभ से जग का आँगन भर जाओ।

यहाँ हँसते फूलों को देखकर कवि मानव-जीवन की प्रसन्नता की ओर संकेत करता है। इसी प्रकार पंत ने जीवन के आगे बढ़ने का उपदेश लहरों के माध्यम से दिया है—

उठ-उठ लहरें कहतीं यह
हम कूल विलोक न पावें
पर इस उमंग में बह-बह
नित आगे बढ़ती जावें।

इसी तरह संध्या का आगमन जीवन अनारता को स्पष्ट करता है।

प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या का ज्वाल।

परमसत्ता का आभास—कॉलरिज ने एक स्थान पर लिखा है कि प्रत्येक कवि किसी न किसी अंश में दार्शनिक भी होता है। वस्तुतः दृश्यमान् जगत् का वर्णन करते-करते कवि जब सामान्य अनुभूति से ऊपर उठ जाता है तो वह समस्त दृश्यमान् जगत् में ही एक सत्ता को देखता है। भावमय यह सानिध्य प्रायः सभी कालों में कवियों ने अनुभव किया है। पंत भी प्रकृति मे उसी सत्ता का स्पन्दन महसूस करते हैं—

एक छवि के असंख्य उडुगन
एक ही सबमें स्पन्दन।

'नौका विहार' में गंगा का चित्रण करते समय कवि जीवन की सैद्धांतिक विवेचना करने लगता है। धारा के निरन्तर प्रवाह में उसे जीवन की शाश्वत गति के दर्शन होते हैं—

इस धारा सा ही जग का क्रम
शाश्वत इस जीवन का उद्गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम,
शाश्वत नभ का नीला विकास।

....

६ | जीवन-दर्शन

प्रत्येक कलाकार कवि होने के साथ-साथ चिन्तक भी होता है। अनुभूति के स्तर से ऊपर उठकर वह विचार के धरातल पर अपनी अनुभूतियों के ज्ञान-पक्ष को प्रस्तुत करता है। सामान्यतया जीवन-दर्शन से हमारा अभिप्राय कलाकार के जीवन तथा जगत के प्रति दृष्टिकोण से होता है। जीवन तथा जगत के प्रति जो दृष्टिकोण बनता है, वह बाह्य परिस्थितियों का परिणाम होता है। यही कारण है कि जैसा-जैसा प्रभाव कवि पर पड़ता है, वैसी ही विचार-धारा कवि की बनती जाती है। इसी कारण चिन्तन के स्तर पर कवि का जीवन-दर्शन परिवर्तित होता रहता है किन्तु काव्य में उस चिन्तन की अभिव्यक्ति केवल उसी समय होती है जबकि कवि प्रौढ़ता के स्तर को छू लेता है।

पंत के चिन्तन की अभिव्यक्ति भी इसी कारण प्रारम्भिक काव्य में न होकर उनके मध्यवर्ती तथा परवर्ती काव्य में हुई है। सामान्य रूप से पंत के चिन्तन को तीन चरणो में विभाजित किया जाता है— सत्यं, शिव, सुन्दरं। इन तीनों में समन्वय करना ही पंत का अन्तिम ध्येय है, और इसीलिए पंत को समन्वयवादी कवि माना गया है। पंत ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"यह सच है कि व्यक्तिगत सुख-दु.ख के सत्य को, अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नही दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है।······मुझे लगता है कि सत्यं शिव में स्वयं निहित है। जिस प्रकार फूलों में रूप-रंग है, फल में जीवनोपयोगी रस; और फूल की परिणति सत्य के नियमों द्वारा ही होती है, उसी प्रकार सुन्दरं की परिणति शिवं में सत्य के द्वारा ही होती है।" पंत के इस कथन से स्पष्ट है कि वे जीवन की उपयोगिता में विश्वास करते हुए भी उसे सत्य से मौलिक तथा सौंदर्य से आकर्षक तथा सुग्राह्य बना देते हैं। पंत का सम्बन्ध गांधी, अरविन्द तथा मार्क्स से होने के कारण उनकी विचारधारा में इन तीनों महापुरुषों की चिन्तना-अनुचिन्तना मिलती है। परन्तु कवि ने इनकी विचारधारा को सैद्धान्तिक

धरातल की अपेक्षा भावात्मक स्तर पर प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त कवि पर स्वामी विवेकानन्द तथा भारतीय उपनिषदों का भी प्रभाव पड़ा है। समग्रतः कवि के चिन्तन पर निम्न प्रभाव पड़े हैं :

(१) मार्क्सवाद, (४) स्वामी विवेकानन्द, और
(२) गांधीवाद, (५) उपनिषद्।
(३) अरविंद-दर्शन,

मार्क्सवाद—पंत की विचारधारा की पहली सबल अभिव्यक्ति सन् १९३४ के आस-पास होती है। इस काल में आर्थिक धरातल पर साम्यवाद का प्रचार करने वाले कार्ल मार्क्स का प्रभाव कवि पर पड़ा। कार्ल मार्क्स ने यद्यपि राजनीतिक प्लेटफार्म पर खड़े होकर साम्यवाद का प्रचार-प्रसार किया था, किन्तु पंत ने इस विचारधारा को मानवीय दृष्टिकोण से अपनाया। मार्क्स ने अर्थ को ही सब कुछ माना और भौतिक जगत् को निरन्तर गतिशील मानकर उसका विकास द्वन्द्व के आधार पर सिद्ध किया। मार्क्स के अनुसार भौतिक पदार्थ अथवा शक्तियाँ परस्पर संघर्ष करती हैं और इसी से नयी शक्तियों तथा पदार्थों का जन्म होता है। मार्क्स ने ईश्वर के स्थान पर मानव की सत्ता की घोषणा की और पहली बार ईश्वर सत्ता को नकार कर मानव की सत्ता स्थापित की गयी। मानव की सत्ता स्थापित होने के पश्चात् इनमे संघर्ष होता है और इस संघर्ष का परिणाम हुआ—समाज का दो वर्गों में विभाजन। पहला वर्ग सत्ताधारी मनुष्यों का है, जिसे मार्क्स ने शोषकों की संज्ञा दी और दूसरा वर्ग सर्वहारा है जिसे शोषित कहा गया है। शोषक और शोषितों में निरन्तर संघर्ष होता है। अतः वही साहित्य शुद्ध साहित्य है जिसमें इन दो वर्गों का संघर्ष दिखाया जाता है। यही प्रगतिवादी साहित्य शोषकों के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है और शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है।

पंत ने 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' मे मार्क्सवादी सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति की है। इन काव्य मे मानव के कष्टों को प्रदर्शित किया गया है, उसकी सत्ता को स्थापित किया गया है, अतः इसे मानववादी काव्य माना गया है। किन्तु इसे कवि ने अपने रूप से प्रस्तुत किया है। वह मार्क्स को युग की महान आत्मा स्वीकार करते हुए लिखता है—

"धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।
... ..."

साध्य नहीं। मार्क्स जिन शोषितों के उद्धार का मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, कवि ने उसे गांधीवाद के महत् प्रकाश में स्वीकार किया है।" वास्तव में भूतवाद कवि का आधारभूत चिन्तन नही, आध्यात्मिकता ही उसका मूल चिन्तन है। डॉ० नगेन्द्र का कथन हैं—"मार्क्सवाद में श्री सुमित्रानन्दन पंत का व्यक्तित्व अपनी वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं पा सकता। जीवन के भौतिक मूल्य पंत के संस्कारी व्यक्तित्व को तृप्त नही कर सकते। उनका सूक्ष्म चेता-मन उन बुद्धि गृहीत भौतिक मूल्यों के विरुद्ध उस समय भी वार-वार विद्रोह कर रहा था और ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता था कि वे शीघ्र ही उस परिचित पथ पर लौट आयेंगे।.........मार्क्स के वस्तुवादी जीवन-दर्शन ने उन्हें आकृष्ट किया और वे अपने सहज मार्ग से थोड़ा हट गये। उस समय भी उनकी आध्यात्मिक चेतना लुप्त नहीं हुई थी।" 'युगान्तर' में कवि की रचनाएँ गांधी को सम्बोधित करके लिखी गयी है। पंत ने भी लिखा है—"इसमें मेरी इधर की कुछ नवीन रचनाएँ संग्रहीत हैं जिनमें से अधिकांश बापू जी के देह निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में लिखी गयी थीं।" बापू के महान् व्यक्तित्व तथा प्रभाव को लक्षित कर कवि ने लिखा है—

"व्याप्त हो गए जन मन में तुम आज महात्मन्,
नव प्रकाश बन आलोकित कर नव जग-जीवन।"

— — —

नव संस्कृति के दूत ! देवताओं का करने कार्य,
मानव आत्मा को उबारने आये तुम अनिवार्य।"

गांधी जी औद्योगीकरण के विरुद्ध थे। उसका कारण स्पष्ट है कि औद्योगिकरण से यन्त्रों का विकास होता है और यांत्रिक सभ्यता के विकास से मानवता का ह्रास। आज बौद्धिक प्रयत्नों से देश और काल पर विजय प्राप्त कर ली गयी है परन्तु इससे मानवीय भावना का ह्रास ही हुआ है। भौतिक विकास में हम इतने आगे बढ़ गये हैं कि आत्मा विजित हो गयी है—

"मानव ने पाई देश काल पर जय निश्चित,
मानव के पास नहीं मानव का आज हृदय।
चर्वित उसका विज्ञान-ज्ञान, वह नहीं पचित,
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित।"

और इसी कारण दिग्भ्रमित मानव को सही रास्ता दिखाने के लिए गांधी कवि से प्रार्थना करता है—

—"बापू ! तुम में आज लगे जग के लोचन ।
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बन्धन ॥"

अरविंद-दर्शन—पंत ने दक्षिण प्रवास के समय महर्षि अरविंद के दर्शन का अध्ययन किया। योगी अरविंद ने एकांगिता के स्थान पर पूर्णता का सन्देश दिया। अरविंद के 'भागवत जीवन' (Life Divine) ने कवि पर अमिट प्रभाव छोड़ा। उनका 'स्वर्ण काव्य' अरविंद दर्शन से ही ओतप्रोत है। अरविंद दर्शन वास्तव में समन्वय का दर्शन है जिसके अन्तर्गत परम सत्ता को असीम और निरपेक्ष माना गया है—"There is then a supreme Reality eternal, absolute and infinite. Because it is absolute and infinite, it is in its essence in determind, it is indefinabe and inconceivable by finite and defining mind, it is described neithei by our negations—Neti-Neti or by our affirmative iti-iti." अरविंद-दर्शन के अन्तर्गत परम सत्ता में अद्वैत भाव स्वीकार किया गया है। इसके साथ ही जड़ और चेतन में भी एक ही परम सत्ता की अभिव्यक्ति मानी गयी है। पंत ने अपनी विचारधारा पर अरविंद का ऋण स्वीकार किया है। 'उत्तरा' की प्रस्तावना में कवि ने लिखा है—"अरविंद को मैं इस युग की अत्यन्त महान् और अतुलनीय विभूति मानता हूं। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन-दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धिग्राह्य सत्य, नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मण्डित हो उठता है, मुझे कहीं दूसरा देखने को नहीं मिला। विश्व-कल्याण के लिए मैं श्री अरविंद की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूं। उनके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु-शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। ....मैंने अपने समकालीन लेखकों में तथा विशिष्ट व्यक्तियों पर समय-समय पर स्तुतिगान लिखने में सुख का अनुभव किया है। श्री अरविंद के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएं भेंट रूप में स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि तथा युग पथ में पाठकों को मिलेंगी।" अरविंद-दर्शन में, जैसा कि पहले लिखा गया है, भूत और आत्मा का सम्बन्ध अथवा समन्वय मिलता है। पंत ने 'स्वर्ण किरण' में इसी समन्वय का परिचय दिया है—

"जन मन के विकास पर निर्भर,
सामाजिक जीवन निश्चित
संस्कृति का भू-स्वर्ग अमर
आत्मिक विकास पर अवलम्बित।"

श्री अरविंद के समान ही पंत ने भी परमात्मा तथा आत्मा की एकता प्रदर्शित की है। दार्शनिक शब्दों में पंत ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है परन्तु मिथ्याभास, माया के कारण वह अपने वास्तविक रूप को भूल गया है—

"तुम हो मेरे अंश, ज्योति संतान तुम अमर
छोड़ो जड़ता, छिन्न करो भवभेदों का तम
तुम हो मुझसे एक एक तुम भूतों से सम।"

पंत के अद्वैत की व्याख्या करते हुए डॉ० नगेन्द्र का कथन है—"पंत जी का आत्मा की सत्ता में अटल विश्वास है। परन्तु वे आत्मा को चेतना का सूक्ष्म रूप मानते है, अपने में सर्वथा निरपेक्ष भौतिक जीवन से एकान्त आविष्कृत उसका अस्तित्व नही है। और स्पष्ट शब्दों में मानव-हृदय का पूर्णतम विकसित रूप आत्मा है।" पंत ने अरविंद से प्रभावित होकर ही जगत् को निरपेक्ष दृष्टि से देखा है। निरपेक्ष दृष्टि से देखने पर यह सुख-दुःख से परे की वस्तु हो जाता है—

"धूप-छांह यह जग, आशा में घुली निराशा।
राग-द्वेष, सुख-दु:ख संग बंधी अमिट अभिलाषा॥
पाप, पुण्य औ मिथ्या सत्य जगत् में गुंथित।
ज्योति तमस द्वन्द्वों से निश्चय संसृति निर्मित॥"

अरविंद दर्शन से प्रभावित होकर ही पंत ने पूर्ववर्ती मार्क्सवाद का भी 'स्वर्ण काव्य' मे विरोध किया है कि राजनीतिक तथा आर्थिक आन्दोलनों से मनुष्य का जीवन सुखी नही बन सकता। सामाजिक उन्नति आन्तरिक शांति से ही सम्भव है—

"जन-भू पर निर्मित करना नव
जीवन बहिरंतर संयोजित।
एक मनुज हो एक धरा हो
यही भागवत जीवन निश्चित।"

स्वामी विवेकानन्द—अन्य महापुरुषों के साथ ही पंत पर विवेकानन्द का प्रभाव भी पड़ा है। स्वामी जी ने अद्वैतवाद की नए ढंग से व्याख्या की तथा इस पर लगाए गए आक्षेपों का तर्कसम्मत उत्तर दिया। पंत ने अपने प्रारम्भिक काव्य में एक बालिका के रूप में महत्ता दिखाते हुए विवेकानन्द के प्रति आदर व्यक्त किया है—

मां, अल्मोड़े में आये थे, जब राजर्षि विवेकानन्द,
तब मग में मखमल बिछवाया, दीपावलि की विपुल अमन्द
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे, जननि! नहीं चल सकते हैं,
दीपावलि क्यों की? क्या वे, मां, मन्द दृष्टि कुछ रखते हैं?"

विवेकानन्द ने मानव-कल्याण के लिए वासना एवं ऐन्द्रिय-सुख का निषेध कर आत्मिक आनन्द पर बल दिया। भौतिक दृष्टि से प्राप्त किया गया सुख क्षणिक है, उसके कारण ही मानव दिन-रात संघर्ष करता है, अतः इनको छोड़ कर जीवन के सच्चे सुख, ऊँचे आदर्शों को प्राप्त करना ही मानव का ध्येय होना चाहिए—

"मैं प्रेमी उच्चादर्शों का, संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष-विमर्शों का, लगता अपूर्ण मानव-जीवन।
जग-जीवन में उल्लास मुझे; नव आशा, नव अभिलाषा मुझे,
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे, चाहिए विश्व को नव-जीवन।"

किन्तु इसके साथ ही पंत ने प्राणी-जीवन के आहार, मैथुन में व्यस्त जीवन पर आक्षेप भी लगाया है। इन निम्न बातों में ही प्राणी अपना अमूल्य जीवन खो रहे हैं—

"प्राणि प्रवर
हो गये निछावर
अचिर धूलि पर!
निद्रा, भय, मैथुनाहार
ये पशु लिप्साएँ चार—
हुईं तुम्हें सर्वस्व सार?"

उपनिषद्—भारतीय चिन्तन में उपनिषदों का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इनका उद्देश्य आत्मा को शान्ति देना है। डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में, "The aim of the Upanishads is not so much to teach philosophical truth

as to bring peace and freedom to the anxious human spirit." उपनिषदों में आत्मा के महत्व की प्रस्थापना की गई है। पंत ने भी इसी का स्वर दिया है—

"नव जीवन का वैभव जागृत हो जन गण में,
आत्मा का ऐश्वर्य अवतरित मानव-मन में।"

... ...

"सिमट गई जीवन तन छाया
जाग गया मन सोई काया
उतर प्रकाश तुम्हारा आया
मोह-भार से मुक्त हृदय में
लगा हर्ष नव कंपने।"

इसी प्रकार पंत ने ईश्वर में आस्तिकता दिखाई है और साथ ही जीवन और जगत् में एक ही सत्ता की अभिव्यक्ति मानी है—

"एक छवि के असंख्य उडुगन
एक ही सब में स्पन्दन;
एक छवि के विभात में लीन,
एक विधि के रे नित्य अधीन!
एक ही लोल लहर के छोर
उभय सुख-दुःख, निशि-भोर
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार।

पंत के जीवन-दर्शन पर सारांश मे, पंत के ही शब्दों में कहा जा सकता है— "इस प्रकार अपनी अनेक रचनाओ में मैंने धार्मिक, साम्प्रदायिक दार्शनिक विचारों के आवर्तो से जीवनोपयोगी सिद्धान्तों को उभार कर पाठकों के मन: क्षितिज में नवीन आध्यात्मिक शिखरो का सौदर्य चित्रित करने का प्रयत्न किया है जो आने वाली मानवता की ऊँचाई, गहराई एवं व्यापकता का द्योतक है। मैंने अपना जीवन-दर्शन युग की आवश्यकताओ एवं मानव के विकास की सम्भावनाओं का सम्मुख कर अनेक महान् ग्रंथो तथा महापुरुषों से प्रेरणा ग्रहण कर, उनके उपयोगा तत्त्वों को आत्मसात् कर लोककल्याण......के उद्देश्य से...... गुंफित करने का साहस किया है।"

———

७ | रस-परिपाक

प्रत्येक कलाकार चाहे किसी भी उद्देश्य से काव्य-रचना करे, किन्तु इतना निर्विवाद है कि काव्य से किसी-न-किसी अंश में आनन्द प्राप्त करना भी उसका ध्येय रहता है। यह आनन्द वस्तुतः रस के कारण ही आता है। रस से एक विशेष प्रकार की आनन्दानुभूति होती है, जिसका स्वरूप लौकिक होता हुआ भी अलौकिक हो जाता है। काव्य में अन्य बातों के साथ ही आचार्यों ने रस के महत्त्व को असंदिग्ध रूप से स्वीकार किया है। अग्नि पुराणकार के शब्दों में—

'वाग्वैदग्ध्य-प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।'

अर्थात् काव्य में भले ही वाग्वैदग्ध्य का प्राधान्य हो, परन्तु काव्य का जीवन रस ही है। रस के स्वरूप पर रसवादी आचार्यों के साथ ही इतर आचार्यों ने भी विचार किया है। आचार्य भरत मुनि ने रस निष्पत्ति के सूत्र पर विचार करते हुए लिखा है—"विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्तिः" अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस निष्पत्ति होती है। आचार्य विश्वनाथ ने रस के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्द चिन्मयः ।
वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः ॥
लोकोत्तर चमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः ।
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः ॥"

अर्थात् चित्त में सत्त्व गुण के उद्रेक से विशिष्ट संस्कारवद सहृदयजन अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, अन्य सभी प्रकार के ज्ञान से विनिर्मुक्त, ब्रह्मानन्द स्वाद सहोदर, लोकोत्तर-चमत्कार प्राण रस का निज स्वरूप से अभिन्नतः आस्वादन करते हैं।

आचार्य विश्वनाथ की रस की उपर्युक्त विशद परिभाषा अपने आप में सम्पन्न है, और आज सर्वमान्य है। रसों की संख्या प्रारम्भ में आठ स्वीकार की गयी थी, और कालान्तर में नौ रस स्वीकृत हुए। यथा—

१. शृंगार रस—स्थायी भाव : रति।
२. हास्य रस—स्थायी भाव : हास।
३. करुण रस—स्थायी भाव : शोक।
४. रौद्र रस—स्थायी भाव : क्रोध।
५. वीर रस—स्थायी भाव : उत्साह।
६. भयानक रस—स्थायी भाव : भय।
७. वीभत्स रस—स्थायी भाव : जुगुप्सा।
८. अद्‌भुत रस—स्थायी भाव : विस्मय।
९. शान्त रस—स्थायी भाव : निर्वेद।

प्राय: विद्वानों का मत है कि छायावादी कविता परम्परा विरोधी कविता है। अत: इसमें प्राचीन काव्य शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं किया गया और इसी कारण इसमें रस की वह स्थिति नहीं है, जो अन्य काव्यों में है। यद्यपि यह आक्षेप पूर्णरूप से सत्य नही है तो भी यह मानना पड़ता है कि छायावादी कविता में रस-परिपाक शास्त्रीय दृष्टि से नही मिलता; और इसके साथ ही छायावादी कविता में आत्मनिष्ठा के कारण रसों की विविधता नही मिलती। पंत की काव्य-रचना में प्रारम्भ में तो सौंदर्यवादी दृष्टिकोण के कारण रस की स्थिति मिल जाती है किन्तु मध्यवर्ती और परवर्ती कृतियों मे भावुकता के स्थान पर चिन्तन का प्राधान्य होने के कारण रस-परिपाक में बाधा पड़ी है। किन्तु पंत के काव्य-रूपकों में चिन्तन होते हुए भी भावात्मकता का प्राधान्य है। किन्तु पंत के काव्य में प्रमुख रूप से शृंगार, अद्‌भुत, करुणा और शान्त रस मिलता है। कही-कहीं अनुभूति भाव के स्तर तक रह गई है और आवश्यक उपकरणों के अभाव में रस-दशा तक नहीं पहुँच पाये है।

शृंगार रस—छायावादी काव्य में शृंगार रस का प्राधान्य मिलता है। वैयक्तिक प्रेम, विरह आदि की जो अभिव्यक्ति इस काव्य मे मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। छायावादी कवियों का शृंगार भाव प्राचीन परम्परा मे थोड़ा भिन्न है। रीतिकाल की शृगारिकता में जो अस्वस्थता है, मांसलता है, वासना है, छायावाद मे प्राय: उसका अभाव ही है। पत ने पल्लव की भूमिका में लिखा है—"शृंगारप्रिय कवियों के लिए शेप रह ही क्या गया है ? उनकी अपरिमेय कल्पना-शक्ति कामना के हाथों द्रोपदी के दुकूल की तरह फैलकर 'नायिका' के अंग-प्रत्यंग में लिपट गई।" किन्तु रीतिकालीन शृंगारिकता के विरुद्ध

छायावाद का शृंगार सूक्ष्म तथा काल्पनिक है। छायावादी सौंदर्य भावना भी शारीरिक कम तथा मानसिक अधिक है। संयोगकालीन प्रणयभाव की अभिव्यक्ति भी संयत रूप में की गयी है। पंत ने 'ग्रंथि' काव्य में संयोग और वियोग के चित्रों को प्रस्तुत किया है। संयोगकालीन प्रथम प्रणयभाव का चित्र उपस्थित करते हुए कवि ने लिखा है—

"शीश रख मेरा सुकोमल जांघ पर
शशिकला सी एक बाला व्यग्र हो,
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिंतित दृष्टि से।
इन्दु पर उस इन्दु मुख पर साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज से रक्तिम हुए थे; पूर्व का
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।
एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर सहज, नीचे गिरे
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से—
दृढ़ किया मानो प्रणय-सम्बन्ध था।"

उपर्युक्त उदाहरण में रस के प्रायः सभी उपादान मिल जाते हैं, यथा—
आश्रय—कवि।
आलम्बन—बालिका।
उद्दीपन—बालिका का रूप।
अनुभाव—पलकों का ऊपर उठना-गिरना इत्यादि।
संचारी—पुलक, चिन्ता, भय इत्यादि।

प्रेम के अन्य उदाहरण में भी रस के समस्त उपादान प्रायः मिल जाते हैं। नायक नायिका को मनाने का प्रयत्न करता है। वह नायिका की मनुहार करते हुए कहता है—

"आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण! रहने दो यह गृह-काज!
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास

प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष !
आज रे शिथिल शिथिल तन-भार
आज सौ सौ स्मृतियां सुकुमार।"

कवि का प्रेम का स्वप्न अधिक देर तक नही चल सकता और यहीं प्रणय-वियोग में परिवर्तित हो गया। कवि के सामने ही उसकी प्रेमिका का ग्रंथि-बंधन पर-पुरुष से हो गया—

"हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रंथि-बंधन हो गया, वह नव-कुसुम
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी—
अन्य मानस का विभूषण हो गया।"

पंत के काव्य में अनेक ऐसे गीत है जिनका मूलभाव प्रणय है। इनमें किसी गीत में नारी-सौंदर्य मिलता है, अथवा प्राकृतिक सौंदर्य। ये भाव की अवस्था तक सीमित रहे है, यथा—

"अरे वह प्रथम-मिलन अज्ञात
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित गति
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक-दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण !"

पंत का शृंगार देहातीत है। देह की वासनाये जब समाप्त हो जाती हैं तो वास्तविक प्रणय का उदय होता है। ऐसी दशा में प्रेम मार्मिक, सूक्ष्म एवं मानसिक हो गया है—

"देह नहीं है परिधि प्रणय की
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की।"

पंत के अनेक ऐसे गीत है जिनमें प्रकृति-प्रेम व्यक्त हुआ है—

"अरे अब जल-जल नवल प्रवाल लगाते रोम रोम में ज्वाल
आज भौंरे रे तरुण-रसाल भौंर मन मंडरा गई सुबाल।"

पंत की शृंगार रस-विषयक प्रमुख कविताओं में स्नेह, उच्छ्वास की बालिका, आँसू से, ग्रंथि से इत्यादि कविताएँ गिनी जा सकती हैं। कहीं-कही रस नहीं, रसाभास की स्थिति मिलती है। यथा—

"कौन, कौन तुम परिहत वसना, म्लान मना, भू पतिता सी,
धूलि धूसरित मुक्त कुन्तला, किसके चरणों की दासी ?
विजन निशा में सहज गले तुम लगती हो फिर तरुवर के ।
आनंदित होती हो सखि ! तुम उसकी पद-सेवा करके ॥"

यहाँ छाया और तरुवर का प्रणय तथा संयोग का जो चित्र मिलता है, वह अतीन्द्रिय होने के कारण रस-दशा तक नहीं पहुँच पाया है।

अद्भुत रस—विस्मय इसका स्थायीभाव है। पंत की कुछ कविताओं में अलौकिक कार्य-व्यापार को दिखाने के लिए ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया गया है जिससे अद्भुत रस की निष्पत्ति हुई है—

"निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि ! अखिल विस्मयाकार ।
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर भावों की आधार !
गूढ़, निरर्थ, असंभव, अस्फुट भेदों की शृंगार !
मोहिनि, कुहुकिनि, छल विभ्रममयि, चित्र-विचित्र अपार !"

यहाँ अप्सरा आलम्बन के माध्यम से अलौकिक वातावरण की सृष्टि कर कवि ने अद्भुत रस की सृष्टि की है। इसी प्रकार अन्य कविताओं में भी कवि ने आश्चर्य मिश्रित जिज्ञासा को प्रस्तुत किया है—

"शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर हो उठता चंचल-चंचल ।"

शान्त रस—पंत के परवर्ती काव्य में तथा उनकी कतिपय प्रारम्भिक कविताओं में निर्वेद भाव को प्रस्तुत किया गया है। इन कविताओं में कवि ने संसार की अनित्यता का बोध कराके परमार्थ अथवा परमानन्द की बात की है। 'परिवर्तन' कविता में यही भाव दर्शाया गया है—

"हाय ! सब मिथ्या बात !
आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर में भरता सूनी साँस
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार ।"

शान्त रस के अन्तर्गत यह स्थिति भी आती है, जबकि मन सुख-दुःख की

अनुभूति से ऊपर उठ जाता है। यहाँ मानसिक निर्वेद की स्थिति मानी जाती है—

"हे जगजीवन के कर्णधार ! चिर जन्म-मरण के आरपार।
शाश्वत जीवन नौका-विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण।
करता मुझको अमरत्व दान।"

रौद्र रस—इसका स्थायी भाव क्रोध है। पंत ने 'परिवर्तन' कविता के अन्तर्गत इस रस की व्यजना की है। रुद्र के ताण्डव-नृत्य की भयंकरता को चित्रित करते हुए कवि ने लिखा है—

'अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन,
निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर !"

करुण रस—इसका स्थायी भाव शोक है। प्रायः मृत्यु आदि हो जाने पर ही कवि इसका चित्रण करते है। पंत की कविताओं में यह रस प्रायः नही मिलता। 'परिवर्तन' कविता में एक स्थल पर यह रस अवश्य ही व्यंजित हुआ है। नव-विवाहिता के पति की मृत्यु हो जाने पर शोक प्रकट करते हुए कवि लिखता है—

"अभी तो मुकुट बंधा था माथ,
हुए कल ही हलदी के हाथ;
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुंबन शून्य कपोल;

हाय ! रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अंगार !
वात हत लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार !!"

इसी प्रकार माँ की गोद को सूनी कर जाने वाले पुत्र की मृत्यु पर भी शोक भाव मिलता है—

"प्रात ही तो पहनाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल आकार;
छिन गया हाय ! गोद का बाल,
गड़ी है बिना बाल की नाल !"

भयानक रस—'परिवर्तन' कविता के निम्न पद्य में इसी रस की व्यंजना की गयी है—

"अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू कंपन,
गिर गिर पड़ते भीत पक्षि पोतों-से उडुगन;
आलोड़ित अंबुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजंगम सा, इंगित पर करता नर्तन !
दिक् पिंजर में बद्ध, गजाधिप सा विनतानन !"

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि पंत ने अपनी स्फुट कविताओं में अधिकतर भावों को ही प्रस्तुत किया है । कहीं-कहीं भाव रस-दशा तक पहुँच गए हैं और कहीं उपादानों के अभाव में मात्र भाव-दशा तक ही सीमित रह गए हैं । किंतु वस्तुस्थिति यह है कि भावों के माध्यम से ही रस का उद्रेक किया गया है । मुख्य रूप से पंत ने श्रृंगार, शान्त, करुण इत्यादि पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है ।

---

८ | नारी-भावना

प्राचीनकाल से ही भारत में ही नहीं, अपितु प्रायः सभी देशों में नारी की दशा अत्यन्त शोचनीय रही है। जन्म से अभागिन, शीतलता की प्रतिमा, उपेक्षा-भाजना भारतीय नारी सदैव से ही पुरुष-शासित समाज में पददलित रही है। देश और काल की सीमाओं में बधी नारी का पुरुष के समान कोई अधिकार नहीं था। प्रायः सभी देशों में प्राचीनकाल में नारियों पर पाशविक अत्याचार किये जाते थे। परन्तु भारतीय संदर्भ में ये अत्याचार चरम सीमा पर होते थे। धीरे-धीरे समय में परिवर्तन हुआ और बौद्धिक विकास के साथ ही यह भावना भी सामने आई कि नारी कदापि भी निन्दा अथवा पाशविक कृत्यों का पात्र नहीं है अपितु वह देवी है तथा पूजा की अधिकारिणी है। सदियों के बाद भारत में यह श्लोक गूंजने लगा—

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'

साहित्य समाज का दर्पण है, अत. समाज में आए इस परिवर्तन ने साहित्य पर भी प्रभाव डाला और हिन्दी साहित्य के पिछले सौ वर्षो में यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। रीतिकालीन कविता में जहाँ नारी का रूप केवल मात्र कामिनी था, वहाँ आधुनिक युग में वह सती-साध्वी, वीरांगना, त्यागमयी नारी के रूप में चित्रित होने लगी। साहित्य में अब यह भावना भी व्याप्त होने लगी कि नारी नर की समकक्षिणी एवं उसका पूरक अंश है। क्रमश. यह भावना बल पकड़ती गयी और छायावाद युग तक आते-आते नारी-नर से श्रेष्ठ मानी जाने लगी। पुनरुत्थान के कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत भारती' में निम्न शब्दों में नारी महातमय प्रस्तुत किया—

ऐसी उपक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे।
भागे न फिर हमसे भला क्यों दूर सारी सिद्धियाँ?
पाती स्त्रियाँ आदर जहां रहती वहीं सब ऋद्धियाँ।

गुप्त जी के इस आह्वान का प्रभाव सम्पूर्ण साहित्य पर पड़ा और छाया-वादी कवि नारी के प्रति नितान्त नवीन दृष्टिकोण लेकर उपस्थित हुआ। पंत के काव्य में नारी को माँ, देवि, सहचरी आदि के रूप में देखा गया है। इन सभी रूपों में नारी कवि के लिए प्रेरणा का स्रोत रही है। समस्त रूपों में वह नारी को गुणों का भण्डार मानता है। उसका सौन्दर्य मात्र वासनात्मक न होकर जीवन में सत्प्रेरणा देने वाला है। 'पल्लव' में नारी कवि के लिए स्नेह तथा सौन्दर्य का आगार रही है—

स्नेहमयि! सुन्दरतामयि!
तुम्हारे रोम रोम से नारि!
मुझे है स्नेह अपार;
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि!
मुझे है स्वर्गागार।
तुम्हारे ही गुण हैं मेरे गान,
मृदुल-दुर्बलता ध्यान;
तुम्हारी पावनता अभिमान,
शक्ति, पूजन-सम्मान;
अकेली सुन्दरता कल्याणि;
सकल ऐश्वर्यों की संधान!

कवि ने सौन्दर्य को कल्याणकारी माना है। नारी का पहला रूप-बालिका-'वीणा' में मिलता है। किन्तु उस काल में कवि नारी की अपेक्षा प्रकृति से अधिक प्रभावित था—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?

किन्तु यह बालिका धीरे-धीरे वय को प्राप्त होती गयी और मुग्धा के रूप में कवि के काव्य में अवतरित हुई। परन्तु मुग्धा रूप में भी पावनता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने इसीलिए कहा भी है—'वीणा की बालिका की मुग्ध चपल कल्पना 'पल्लव' के यौवन से भी पावन है।' इस मुग्धा का चित्र खींचते हुए कवि ने लिखा है—

मुग्धा की-सी मृदु मुस्कान,
खिलते ही लज्जा से म्लान,
स्वर्गिक सुख की-सी आभास
अतिशयता में अचिर महान
दिव्य-मूर्ति-सी आ तुम पास
कर जाती हो क्षणिक विलास
आकुल उर को दे आश्वास!

पंत ने नारी को मूलतः पवित्र माना है और उसके पवित्र सम्बन्धों की चर्चा स्मृति रूप में अनेक स्थलों पर की है—

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान!
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों के साँस !

आधुनिक युग मे नारी के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण-परिवर्तन हुआ है उसमे नैतिक तथा काम (sex) से सम्बन्धित मूल्य भी आ जाते हैं। नैतिक दृष्टि से प्राचीन मूल्यों के अन्तर्गत यह स्वीकार किया जाता था कि नारी की पवित्रता-अपवित्रता उसके शरीर से है। यदि शरीर से किसी नारी को कोई पर पुरुष छू ले तो वह अपवित्र हो जाती थी—

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह : मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित;
अंग-अंग उसका नर के वासना-चिह्न से मुद्रित;
वह नर की छाया, इंगित संचालित, चिर पद लुंठित;
वह समाज की नहीं इकाई, शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन-मान मान पर नर में है अवलम्बित।

वास्तव में नारी का नर पर निर्भर होना ही उसे पराधीन बना देता था। उसका मूल कारण आर्थिक परिस्थितियाँ थीं। आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी न होने के कारण नारी असहाय होकर पुरुष का मुख देखा करती थी—

नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित
जीवन यापन कर न सके सब इच्छित;
नैतिक सीमाएँ वहकर निर्भ्रान्ति,
जीवन इच्छा की जन ने मर्यादित।

इन्हीं प्राचीन विचारों की शृंखला को तोड़कर कवि ने नवीन दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार किया है। इसी कारण कवि ने नारी को परम्परागत बन्धनों से मुक्त करने के लिए आवाज उठाई है। पुरुष सदियों से नारी को पशु-सम्पत्ति समझकर उसकी आत्मा तथा शरीर पर एकाधिकार करता आया है। किन्तु आज वह समय नहीं है, आज की नारी पुरुष-वासना का पात्र नहीं है—

मुक्त करो नारी को मानव!
चिर वन्दिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से,
जननि, सखि, प्यारी को!
... ...
पुरुष वासना की सीमा से
पीड़ित नारी जीवन,
नर नारी का तुच्छ भेद है
केवल युग्म विभाजन!

'ग्राम्या' में आकर कवि नारी के प्रति अधिक संवेदनशील हो गया है। 'युगवाणी' में कवि ने नारी की खुले रूप से प्रशंसा की है और नारी-हृदय को ही स्वर्ग माना है—

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर
तो वह नारी उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर।

किन्तु इसके साथ ही कवि की यह भी धारणा है कि नारी ही पुरुष को वासना के गर्त में धकेलती है। स्वर्ग के साथ-साथ नरक की स्थापना भी नारी के माध्यम से ही होती है। पंत ने 'स्त्री' नामक कविता में इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति की है—

यदि कहीं नरक है इस भूपर तो वह भी नारी के अन्दर
वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अन्धगर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर !

पंत ने नारी-विक्षोभ सम्बन्धी अन्य बातें 'आधुनिका' कविता में भी व्यक्त की हैं। ऐसा लगता है कि कवि को पश्चिमी सभ्यता में रंगी-पुती नारियों के प्रति कोई आदर नहीं—

पशुओं से मृदु चर्म, पक्षियों से ले प्रिय रोमिल पर,
ऋतु कुसुमों से सुरंग सुरुचिमय चित्र वस्त्र ले सुन्दर
सुभग रूज लिपस्टिक, ब्रोस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से बन नखशिख शोभित;
शिक्षित तुम संस्कृति, युग के सत्याभासों में पोषित।
समकक्षिणी नरों की तुम निज द्वन्द्व मूल्य पर गर्वित।

पंत के इस अन्तर्विरोधी कथन पर श्री फूल चन्द पाण्डेय लिखते हैं— "मुझे पता नही और यह समझ में भी नही आता कि कवि कहीं तो स्वतन्त्रता के लिए पुकार उठता है, चीत्कार मचाता है, आदर्श प्रस्तुत करता है, सिद्धान्त वादी बनता है, परन्तु जहाँ कही उसे उस स्वतन्त्र-भावना की मूर्ति के रूप में नारी मिलती है, उसका हृदय उसे आदर नही करता। यह हाथी के दांतों जैसी कथा समझ में नही आती।" जैसा कि ऊपर लिखा गया है, इस काल में आकर कवि प्रगतिवादी हो गया था और उसकी सहानुभूति शोषितों के प्रति अधिक थी। यही कारण है कि 'मजदूरनी के प्रति' कविता में कवि ने नारी के स्वस्थ चित्र को उपस्थित किया है—

नारी की संज्ञा भुला नरों के संग बैठ
चिरजन्म सुहृद सी जन-हृदयों में सहज पैठ,
जो बँटा रही जग-जीवन का काम-काज,
तुम प्रिय हो मुझे : न छूती तुमको काय-लाज !
स्त्री नहीं, आज मानवी बन गई तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अंग को छू अनलातप पुलकित।

पंत पर फ्रायड का प्रभाव भी थोड़ा-बहुत पड़ा है। इसका कारण यह है कि सेक्स के संदर्भ में नवीन मूल्यों को देने का श्रेय फ्रायड को ही है। आज मानव

केवल वासना-तृप्ति के लिए ही प्रेम करता है। मानव-समाज में इस कापुरुषत्व के कारण ही आज समाज में गंदगी फैली हुई है। इसी कारण कवि पुरुष-समाज को धिक्कारता हुआ कहता है—

धिक् रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्छल चुम्बन
अंकित कर सकते नहीं प्रिया के अधरों पर ?
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर !
क्या गुह्य क्षुद्र ही बना रहेगा बुद्धिमान।
नर-नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आकर्षण !

इस नवीन चिन्तन प्रणाली का परिणाम है—देह की अपेक्षा मन की पवित्रता पर जोर। जैनेन्द्र कुमार ने पहली बार अपने उपन्यासों में नायिकाओं को दैहिक दृष्टि से संभोग-रत दिखाते हुए भी आत्मिक पवित्रता की बात कही है। यदि मन पवित्र है तो देह की पवित्रता-अपवित्रता अधिक महत्व नहीं रखती। पंत की भी इसी भाव की एक कविता 'पतिता' शीर्षक से है। युवती का बलात्कार किया गया है और उसका पति उसे धैर्य देता हुआ कहता है—

मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से कलुषित,
प्रेम पतित पावन है, तुमको
कहने दूँगा मैं न कलंकित !

पंत ने स्वतन्त्र रूप से नारी के आन्तरिक गुणों को ही सौन्दर्य का विधायक तत्त्व स्वीकार किया है। यदि बाह्य सौन्दर्य आन्तरिक गुणों से विहीन है तो वह कवि को बिल्कुल आकर्षित नहीं करता, किन्तु यदि बाह्य सौन्दर्य आन्तरिक गुणों से संयुक्त है तो वह कवि के लिए एक आदर्श है—

नारी की सुन्दरता पर मैं होता नहीं विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनन्दित !
विशद स्त्रीत्व का मैं मन में करता हूँ नित पूजन,
जब आभादेही नारी आह्लाद प्रेम करे वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन।

पंत ने प्रेम तथा देह के प्राकृतिक सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला है। वस्तुतः प्रेम एक स्वाभाविक आकर्षण है जिसमें त्याग की भावना छिपी रहती

है किन्तु परम्परा से दैहिक परितृप्ति को ही अथवा इन्द्रिय भोग को ही प्रेम समझ लिया जाता रहा है। पंत ने इस परम्परागत विचार का खण्डन किया है। प्रेम के दैहिक आधार की अपेक्षा उसके दैविक स्वरूप का चित्रण किया है—

देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की,
यह अनहोनी रीति
देह वेदी हो प्राणों के परिणय की
... ...
मांस-मुक्ति है भाव-मुक्ति,
औ' भाव मुक्ति है जीवन-उल्लास,
मांस मुक्ति ही लोक-मुक्ति
भय-जीवन का जो चरम विकास।

पंत ने नारी को मां के रूप मे भी देखा है। इस रूप में वह अतुल वात्सल्य की मूर्ति है। जीवन के सभी उद्देश्य उसी मे केन्द्रित है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में, "इन त्रिविध रूपों में मातृत्व का स्थान सर्वोपरि है, नारी के शेष सम्बन्धों में उसी मातृत्व का सुसस्कृत सामाजिक संगठन है। पारिवारिक दृष्टि मातृत्व पूज्य है।" कवि को माँ का असीम प्यार नहीं मिल पाया इसलिए प्रकृति के विशाल प्रांगण में उसे मां की विराट्, उदात्त-शक्ति का सहज प्रति-फलन मिला—

मां तेरे दो श्रवण पुटों में
निज क्रीड़ा कलरव भर दूं!
उभर अर्धखिली बाली में।

समग्र विवेचन के आधर पर कहा जा सकता है कि पंत ने नारी की परम्परागत विचारधारा में परिवर्तन किया है तथा उसे सामन्तीय परिवेश से निकालकर मानव के समकक्ष स्थान दिया है। यद्यपि पंत ने नारी के मुक्त और स्वतन्त्र रूप का प्रतिपादन किया है, तथापि उनके मन में आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता में पली व रंगी नारी की अपेक्षा भारतीय परिवेश में जुड़ी हुई नारी के प्रति आदर और सहानुभूति का भाव है। उनकी दृष्टि में नारी नर की एक सत्प्रेरणा है जो उसे जीवन मे आगे बढ़ने में सहायता देती है।

———

९ : रहस्यवाद

[illegible]

मानव ने आँखें खोलकर जो देखा तो अनन्त वैभवशाली प्रकृति का प्रसार। नीचे हरी-भरी धरती, ऊपर नीलाम्बर, उसे चूमने के लिए नगाधिराज। उसके भी पैरों का प्रक्षालन करने वाला रत्नाकर। सब कुछ विशाल, अनुपम। मानव सिहर उठा। सागर से मिल जाने के लिए दौड़ती सरिताएँ, उछल-उछल कर उल्लास को प्रकट करने वाला जल। नदी के कुञ्जों से लिपटे हुए मृगों तथा मृगराज। अनेक प्रकार के पशु-पक्षी। सूर्य की वे आभामयी किरणें, चन्द्र का शीतल प्रकाश, वातावरण का मेघाडम्बर, कहीं धूप कहीं छाँव और न जाने कितना कौतूहल। चारों ओर व्यवस्था, नियम। यह वैभव कहाँ से आया? किसने इसका सारा प्रबंध यहाँ किया? इतना अनन्त ऐश्वर्य किस की सत्ता से है। इन अनेकानेक प्रकार के प्रश्नों ने उसका मस्तिष्क उद्वेलित कर दिया। उसके प्रति कुतूहल और जिज्ञासा की भावना उत्पन्न कर दी। यहीं से रहस्य का उदय हुआ।

रहस्यवाद : स्वरूप-विवेचन —रहस्यवाद की परिभाषा एवं स्वरूप-विवेचन भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही विचारकों द्वारा हुआ है। रहस्यवाद के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डा० रामकुमार वर्मा का अभिमत है—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य, अलौकिक शक्ति से अपना निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है। यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि आत्मा-परमात्मा में किसी प्रकार का भेद नहीं रह जाता।" अब प्रश्न यह उठता है कि जिज्ञासा की तृप्ति के लिए उस विराट् शक्ति से किस प्रकार साहचर्य-स्थापन किया जा सकता है? कुतूहलमयी जिज्ञासा की तृप्ति के लिए दार्शनिकों ने बुद्धि पक्ष का सहारा लिया तो भावुकों ने भावना का। तत्त्व एक ही है केवल दृष्टियाँ दो। इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है—'चिन्तन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।' हिन्दी साहित्य कोश में रहस्यवाद के संबंध में लिखा है—"रहस्यवाद [illegible]। रहस्यवाद और रहस्यवादी किसी

जाति, धर्म या है, देश-विशेष में सीमित नहीं रहे हैं। दार्शनिक दृष्टि से रहस्यवाद शब्द बहुत व्यापक है और किसी एक विशिष्ट दार्शनिक मत के लिए उसका स्वागत करना उचित प्रतीत नहीं होता।" रहस्यवाद में हृदयपक्ष का प्राधान्य होता है। वैसे उस रहस्यमयी सत्ता के प्रति विभिन्न साधकों की अनुभूति भिन्न-भिन्न हो सकती है। परन्तु इसमें रहस्यमयी, अव्यक्त सत्ता के प्रति श्रद्धा का होना अत्यावश्यक है। इसी बात की ओर संकेत थियोलोजिया जर्मनिया (Theologia Germania) में भी किया गया है—"He who would know before he belieth, cometh never to true knowledge." वास्तव में रहस्यवाद में व्यक्तित्व के विलयन की आवश्यकता है—"Mysticim indeed implies the abolition of individualities."

पंत का प्रारम्भिक एवं परवर्ती काव्य प्रकृति तथा अव्यक्त सत्ता से ही सम्बद्ध रहा है। पंत का रहस्यवाद साधनात्मक न होकर भावात्मक है। पंत के रहस्यवादी व्यक्तित्व के निर्माण में श्री विश्वम्भर मानव का कथन है—"पंत जी के रहस्यवादी होने में बाह्य प्रभावों का हाथ रहा है यह सत्य है। रवीन्द्र की 'गीतांजलि' इन प्रभावों में मुख्य है। 'गीतांजलि' के एक गीत के अनुकरण पर उसी प्रकार का गीत 'वीणा' में पंतजी ने रखा। परन्तु उनके स्वभाव के भीतर वह सब कुछ विद्यमान था जिससे वे रहस्यवादी बनते।" अध्ययन की सुविधा के लिए रहस्यवाद के निम्न तत्त्व स्वीकार किये जा सकते है—

(१) अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव;
(२) अव्यक्त सत्ता की विद्यमानता में विश्वास; और
(३) अव्यक्त सत्ता के साथ सम्बध-स्थापन।

जिज्ञासा का भाव—अव्यक्त सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव पंत की अनेक कविताओं में उपलब्ध होता है। संसार के इस विशाल प्रांगण में प्रकृति का यह अनुपम सौन्दर्य कुछ इस प्रकार का है कि कवि के मन में उस सत्ता के संचालक को जानने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। उसे समस्त विश्व के कण-कण में एक ही सत्ता के दर्शन होते हैं—

एक छवि के असंख्य उडगन,
एक ही सब में स्पन्दन;
एक छवि के विभात में लीन,
एक विधि के रे नित्य अधीन।
एक ही लोल लहर के छोर
उभय सुख-दुःख निशि भोर;
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार।

'परिवर्तन' कविता में कवि ने इसीलिए जीवन की विविधता, अनेकता में एक ही सत्ता को विविध रूपों में देखा है—

एक ही तो असीम उल्लास विश्व में पाता विविधाभास;
तरल जलनिधि में हरित विलास, शान्त अंबर में नील विलास;
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस, कुसुमों में वास,
अचल तारक पलकों में हास, लोल लहरों में लास !
विविध द्रव्यों में विविध प्रकार एक ही मर्म मधुर झंकार !

अव्यक्त सत्ता की स्थापना—जब कवि उस सत्ता के प्रति जिज्ञासा का भाव दिखाता है और अन्ततः वह सम्पूर्ण प्रकृति में उसी के दर्शन करता है तो उसे यह निश्चय हो जाता है कि संसार में एक ही सत्ता नाना रूप धरकर अपनी लीला दिखा रही है। इसी सत्ता के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कवि उस साधक की भाँति हो जाता है जिसे समझने के बाद प्रियतम से मिलनेच्छा उत्पन्न हो जाती है। पंत की 'मौन निमन्त्रण' कविता इसी प्रकार की है। श्री माधव के शब्दों में, "आकाश और समुद्र से, प्रभात और रात से, पावस और मधुमास से, ज्योत्स्ना और अन्धकार से जागृति और स्वप्न-काल से ऐसा क्या है जिससे कवि-हृदय को उसका मौन निमन्त्रण नहीं मिलता ? इन निमन्त्रण के दूत हैं तारे और लहरें, ओस की बूँदें और खद्योत, विद्युत और सौरभ आदि।" वास्तव में अव्यक्त सत्ता के प्रति यह मिलनेच्छा भावात्मक स्तर पर दर्शनीय है—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन ?
निमंत्रण देता मुझको मौन!

कहीं कहीं, कवि को सौरभ भी इसी सत्ता का निमन्त्रण देती है—

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेश मुझे भेजता मौन !

वास्तव में भावनात्मक रहस्यवादी की भाँति पंत ने भी प्रेम की तीव्र अनुभूति की है। इसीलिए कवि शुष्क उत्तरों की अपेक्षा रहस्यमयी सत्ता के प्रति तादात्म्य की भावना व्यक्त करता है—

इन प्रश्नों का मुझे नहीं
शब्दों में दो प्रिय उत्तर
तदाकार कर हृदय
सहज समझा दो हे करुणाकर।

अव्यक्त सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापन—साधक जब अपने हृदय में उस परम सत्ता के दर्शन कर लेता है तो उसका दृष्टिकोण ही बदल जाता है। भौतिकता के प्रति उसके मन में एक विरक्ति का भाव जाग्रत हो जाता है। अपने स्वर्ण काव्यों में पंत ने उसी दिव्य चेतना के विविध स्पर्शों से प्रस्तुत किया है। चेतना के संस्पर्श से विश्व की प्रत्येक वस्तु में एक नवीन आलोक का भाव आ जाता है—

ऊषा की लाली से कल्पित नव वसन्त के कोंपल
सौरभ वाष्पों पर पुष्पों के शत रंग खिलते प्रतिफल
शशि किरणों के नभ के नीचे, उर के मुख से चंचल
तुहिनों का छायावन कपता रहता नित तारोज्ज्वल।

और इस आलोक से भौतिकता का तामसिक भाव दूर भागने लगता है—

मुझे असत से ले जाओ तुम सत्य ओर
मुझे तम से उठा दिखाओ ज्योति छोर
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत भोर
बार-बार अनन्त सें आकर हे चिर-परिचित
दक्षिण मुख से, रुद्र करो मेरी रक्षा नित।

पंत ने आरम्भ में उस चेतन-सत्ता के साथ माँ और पुत्र का सम्बन्ध स्थापित किया है। कबीर ने भी एक स्थल पर परमसत्ता को माँ ही कहा है—

'हरि जननी मैं बालक तोरा।'

और इसी भाव में स्वर मिलाते हुए पत ने 'वीणा' की अधिकाँश रचनाएँ माँ को सम्बोधित कर लिखी है। यह माँ जननी न होकर विश्व की विराट् शक्ति हैं। रहस्यवाद के मर्म पर प्रकाश डालते हुए पत जीवात्मा तथा परमात्मा के अनादिकाल से चले आ रहे ऐक्य को प्रस्तुत करते हुए लिखते है—

जब मै थी अज्ञात प्रभात
मां तब मैं तेरी इच्छा थी
तेरे मानस की जलजात।

प्रारम्भ का यह चित्र इस तथ्य का है कि आत्मा तथा परमात्मा में माया के कारण भेद नहीं था। परन्तु आगे चलकर मायाजन्य आकांक्षाओं में जीवात्मा अपना सहज स्वरूप भूल गया—

तब तो यह भारी अन्तर
एक भेद में मिला हुआ था,
एक ज्योति अनन्त सुन्दर;
तू उपवन थी, मैं उपजात।
अब तेरी छाया सुखमय
अंधकार में नीरवता बन
यों उरझाती है चिरमय !

और अन्ततः कवि अपनी जीवात्मा को प्रिय-मिलन के लिए उद्यत करता हुआ कहता है—

उठ रे उपवन हो प्रभात !
यह सुहाग की है प्रिय रात।
यह दीपक अपने सम्मुख धर
जिसके पीछे गिरे मोह की
छाया, अन्तर हो गोचर
वह भविष्य होवे अवदात !

प्रायः सभी रहस्यवादी कवियों ने अपने को स्त्री तथा परमात्मा को पुरुष मानकर प्रेमिका-प्रेमी के प्रेम तथा विरह को प्रस्तुत किया है। वास्तव में अपने को स्त्री मानकर निम्नोक्त भावों की अभिव्यक्ति अधिक सरलता से की जा सकती है। न्यूमैन (Newman) ने इसीलिए कहा भी है—"If the soul wants to go heaven, thou must become a woman. Yes, however manly mayest be a manly man." पन्त ने भी इसी कारण कहीं तो परमात्मा को पुरुष माना है और कहीं स्त्री। यहाँ दोनों रूप ही द्रष्टव्य हैं—

नमन तुम्हें करता मन।
हे जग के जीवन के जीवन,
प्रीति, मौन प्रीति हर स्पन्दन में
स्मरण तुम्हें करता मन।
प्रभु, सहज अब मेरा आनन
दीप्ति सहज शान्ति के लोचन
यह सहज स्थिति स्तुति से पावन
करता तुम्हें समर्पण !

इसी प्रकार प्रेमिका के रूप में रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

जिसकी सुन्दर छवि ऊषा है
नव वसन्त जिसका शृंगार
तारे हार, किरीट सूर्य-शशि
मेघ केश, स्नेहाश्रु तुषार,
मलयानिल मुख-वास, जलधि मन
लीला लहरों का संसार,
उस स्वरूप को तू भी अपनी
मृदु बाहों में लिपटा ले—

कवि पंत ने अनेक स्थलों पर ईश्वर के प्रति विनय का भाव प्रकट किया है। इसके अन्तर्गत कवि की प्रार्थनाएँ संकलित है जिनमें मानव के मंगल के लिए कवि ईश्वर से याचना करता है—

हो शान्त जाति विद्वेष वर्ग गत रक्त समर
हो शान्त युगों के प्रेत मुक्त मानव अन्तर !
संस्कृत हो सब जन, स्नेही हो सहृदय सुन्दर,
संयुक्त कर्मपर हो संयुक्त कर्म निर्भर !
राष्ट्रों से राष्ट्र मिलें, देशों से देश आज,
मानव से मानव, हो जीवन निर्माण काज
हो धरणि जनों की, जगत स्वर्ग, जीवन का कर,
नव मानव को दो प्रभु, भव मानवता का वर।

पंत के समग्र काव्य पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने प्रारम्भिक तथा परवर्ती काव्य में ईश्वर के प्रति अपने हृदय के भावों को व्यक्त किया है। यदि प्रारम्भिक काव्य में उन्होंने केवल रहस्यवृत्ति का उदघाटन किया है तो परवर्ती काव्य में उसे व्यावहारिक बनाया है। पंत के रहस्यवाद के क्रमिक विकास को दृष्टि में रखते हुए श्री मानव ने आक्षेप लगाया है—"पंत जी का काव्य रहस्यभावना के विकास की ही नहीं, ह्रास की कहानी है।······इस प्रकार ब्रह्म से प्रकृति, प्रकृति से नारी, नारी से लोकहित तक कवि आया है। अर्थात् अलौकिकता से उसका उतार बराबर लौकिकता की ओर हुआ है।" श्री मानव का यह आक्षेप इस कारण ग्राह्य नहीं है क्योंकि लोकहित के पश्चात् भी उन्होंने चेतना को प्रदर्शित करने वाले स्वर्ण काव्य की रचना की है।

---

१० | स्वच्छन्दतावाद

हिन्दी कविता के इतिहास में द्विवेदी युग के पश्चात् तथा पूर्व छाया-वादी काव्य सामान्य रूप से स्वच्छन्दतावादी काव्य माना जाता है। हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद का आगमन पश्चिम से हुआ; अतः इसकी मूल पृष्ठ-भूमि तथा प्रेरक शक्तियाँ पश्चिमी ही हैं। पश्चिम में इसे 'रोमांटिसिज्म' का नाम दिया गया। पश्चिम में पुरातनवाद के विरोध में स्वच्छन्दतावाद का जन्म हुआ। स्वच्छन्दतावाद भावनाओं के आधार पर प्रयोग करता है, वह किसी निश्चित बाह्य स्वरूप को महत्व नहीं देता। हिन्दी में द्विवेदी युगीन काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में स्वच्छन्दतावाद का जन्म हुआ। द्विवेदी युगीन काव्य में परम्पराओं एवं रूढ़ियों के प्रति आकर्षण था और उन्हीं की प्रतिक्रिया के रूप में स्वच्छन्दतावाद का जन्म हुआ। अंग्रेजी कवि टेनीसन का कथन है—

> Old order changeth yielding place to new.
> God fulfils himself in many ways.
> Lest one good order should corrupt the world.

हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद के जन्म के संदर्भ में कहा जा सकता है कि नैतिकता, नियमबद्धता की प्रतिक्रिया में स्वच्छन्दतावाद का उदय हुआ। यदि भारतीय साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इसके प्रचार-प्रसार को देखा जाए तो, कहा जा सकता है कि इसका उद्भव पहले बंगाल में हुआ। कवीन्द्र रवीन्द्र ने ही आगे के कवियों के लिए मार्ग-दर्शन किया। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—'बीसवीं शताब्दी के मन के बड़े ही अन्तर्द्वन्द्व का काल था। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का हिन्दी साहित्य में बीजवपन हो चुका था, पर सही बात यह थी कि नवीन भावनाओं के स्वच्छन्दतावादी वैयक्तिक दृष्टि-भंगी को व्यक्त करने योग्य भाषा तब भी नहीं बन पाई थी। बंगाल के कविवर रवीन्द्रनाथ टागुर को भी इस कठिनाई का अनुभव करना पड़ा था। अपनी अद्भुत प्रतिभा के बल पर उन्होंने अपने वक्तव्य के अनुकूल भाषा बना ली थी। नवीन हिन्दी कवियों के

सामने रवीन्द्रनाथ की वह बंगला भाषा थी।" अन्य कवियों के समान ही पंत पर भी अंग्रेजी के रोमांटिक कवियो का प्रभाव पड़ा, तथा साथ ही उन्होंने युग की अभिव्यक्ति भी की है।

स्वच्छन्दतावाद 'रोमांटिसिज्म' का हिन्दी रूपान्तर है। यह मूल रूप से रोमांस शब्द से बना है। रोमांस के सम्बन्ध में स्टॉडर्ड (Stoddard) का कथन है—"A Romance is something, transferred, brought from afar. A romance is something foreign. It is something hunting of life better, completer or nobler than the present life, dimly known detached from, hoped for yet never expected in the present life."

वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद मे प्रतीकों का भी स्थान है। इसमें प्रकृत के स्थान पर अन्यापदेशिक रहता है। स्पष्टता के स्थान पर गम्भीर प्रतीक विधान मिलता है। इसके साथ ही इसमे स्थापित जीवन-मूल्यो के प्रति असन्तोप एवं विद्रोह का भाव भी मिलता है। श्लेगल ने स्वच्छन्दतावाद की परिभाषा करते हुए लिखा है—"स्वच्छन्दतावादी साहित्य मे सभी उपादान रंगीन एवं अस्पष्ट वातावरण में अभिव्यक्त किये जाते है। हर विचारों के साथ में कलाकार ऐसे सहायक विचारों का एक समुदाय रखते है जो इसके प्रभाव को बढ़ा सकें। यद्यपि ऐसा करने से कभी-कभी बाह्य स्वरूप भ्रमोत्पादक हो जाता है। डा० स्टेडल के शब्दों में—"Romanticism is the art of presenting to the nation the literary works, which is actual state of their habit and beliefs are capable of giving them the greatest possible pleasure.··· ···· Romanticim stands for progress, liberty, originality and the spirit of the future." एबर क्राम्बी का विचार है कि स्वच्छन्दतावाद यथार्थ से सम्बधित न होते हुए भी यथार्थ से पूर्णरूपेण असम्पृक्त नहीं है। इसमे बाह्य अनुभव के स्थान पर आन्तरिक अनुभव रहता है। स्वच्छन्दतावाद के स्वरूप-विश्लेषण के आधार पर डा० शिवकरण सिंह के शब्दो में कहा जा सकता है—"स्वच्छन्दतावाद पर फ्रास की राज्य क्रान्ति, जर्मनी की स्वच्छन्दतावादी विचारधारा, स्वदेशी राजनीतिक स्थिति, औद्योगिक क्रान्ति तथा मध्यकालीन देव-कथाओं का प्रभाव रहा।" उपर्युक्त समग्र विवेचन

के विराट रूप को चित्रित किया है--

मूलभूत कामना एक ज्यों
पत्रों में कंप उठती मर्मर
प्रिय निसर्ग ने अपने जग में
खोल दिया फिर मेरा अंतर।

कल्पना—छायावाद के समान ही स्वच्छन्दतावाद में भी कल्पना का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी में कल्पना शब्द अंग्रेजी के Image का हिन्दी रूपान्तर है। 'इमेज' का अर्थ है—'मानसिक चित्र।' प्रत्येक स्वच्छन्दतावादी कलाकार कल्पना के महत्त्व को असंदिग्ध मानता है। इन कलाकारों का विश्वास है कि कल्पना से भावनाओं और असंयत विचारों को एक निश्चित रूप-आकार मिल जाता है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों की कल्पना का सम्बन्ध धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोणों से भी था। इसी कारण ब्लेक ने कल्पना को ईश्वरीय शक्ति माना हैं। इसी प्रकार कालरिज ने कल्पना के सृजन पक्ष पर विचार करते हुए लिखा है—"कल्पना सभी मानवीय अनुभूतियों की सजीव शक्ति तथा मुख्य स्रोत है। इसे मानव के सीमित मस्तिष्क में शाश्वत सृष्टि के अनन्त कार्य में 'हूँ' की पुनरावृत्ति कहा जा सकता है।" पंत ने भी कल्पना को एक सत्य माना है—"मैं कल्पना को सबसे बड़ा सत्य मानता हूँ। मेरी कल्पना को जिन-जिन विचार-धारणाओं से प्रेरणा मिली है, उन सबका समीकरण करने की चेष्टा मैंने की है। मेरा विचार है कि वीणा से लेकर ग्राम्या तक अपनी सभी रचनाओं में मैंने अपनी कल्पना को ही वाणी दी है और उसी का प्रभाव उन पर मुख्य रूप से रहा है।" निम्न उद्धरण में कल्पना के द्वारा परिवर्तन का जो मूर्त रूप अंकित किया गया है, वह द्रष्टव्य है—

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षः स्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दन्त, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर
वक्र कुंडल
दिङ् मंडल !

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणी
त्रिवेणी की लहरों का गान।
उषा का उर में था आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चांदनी का स्वभाव में वास
विचारों में बच्चों की सांस।

रहस्य भावना—सभी आलोचकों ने स्वच्छन्दतावाद में रहस्य भावना को स्वीकार किया है। रहस्य-भावना से हमारा अभिप्राय उस अनुभूति से है जिसके अन्तर्गत व्यक्ति परोक्ष सत्ता से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। रहस्यवाद की परिभाषा करते हुए आचार्य वाजपेयी लिखते है—'इससे अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्रकृति-सौन्दर्य के द्वारा अहम् का इदम् के समन्वय करने का सुन्दर प्रयत्न है।" श्री परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार, "रहस्यवाद, काव्य की एक धारा-विशेष को सूचित करता है। वह प्रधानतः उसमें लक्षित होने वाली उस अभिव्यक्ति को सिद्ध करता हे जो विश्वात्मक सत्ता की प्रत्यक्ष गम्भीर एव तीव्र अनुभूति के साथ सम्बन्ध रखती है।" पंत ने रहस्यवाद को प्राचीन रहस्यवाद से अलग मानते हुए लिखा है—"वह रहस्यभावना मध्ययुगीन सन्तों की-सी निषेध-पोषित जीवन-रस-संचित आत्मा या ब्रह्म के अस्पष्ट स्पर्श की अतीन्द्रिय अनुभूति न होकर नये विश्व जीवन तथा विश्व-चैतन्य की खोज तथा जिज्ञासा की भावानुभूति है। पंत का रहस्यवाद प्रकृति-विषयक है—

शांत सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल-चचल।
... ...

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास

नहीं कुसुम थी बनी नवल,
शशि के कर खोले शीतल।

पलायन—स्वच्छन्दतावादी कवियों के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि जीवन में अत्यधिक वेदना तथा भौतिकता की अतिशयता से तंग आकर उन्होंने काव्य में निराशा एव पलायनवाद की भावना को चित्रित किया है। पंत के जीवन में भी अनेक कारणों से निराशा उत्पन्न हुई। ऐसी स्थिति में वे पलायन-वृति से प्रेरित होकर कह उठते है—

शैवालिनि जाओ मिलो तुम सिंधु से
अनिल आलिंगन करो तुम गगन का
चन्द्रिके चूमो तरंग के अधर
पर हृदय सब भांति तू कंगाल है।

प्राचीनता के प्रति मोह—स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्राचीन मान्यताओं, सांस्कृतिक तथा धार्मिक आख्यानों का नवीन दृष्टिकोण से विवेचन किया है। पंत ने यद्यपि जड़-बंधनों का विरोध किया है तथापि उन्होने उपनिषदों का पर्याप्त आदर किया है—

गा कोकिल बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हों जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन।
... ...

गा कोकिल सन्देश पुरातन
मानव-दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन,
वह न देह का नश्वर रजकण
देशकाल हैं उसे न बन्धन
मानव का परिचय मानवपन।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पंत पर पश्चिम के स्वच्छन्दतावादी कवियों का पूर्ण प्रभाव पड़ा है और उन्ही के आधार पर पत ने अपने काव्य में प्रकृति के साथ-साथ कल्पना का सुन्दर संयोग किया है।

—:०:—

छायावाद को रहस्यवाद से अभिन्न मानते हैं, जो कि आज स्वीकार नहीं किया जाता।

छायावाद के अन्य आलोचकों में आचार्य डॉ० नगेन्द्र का कथन है, "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है, जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण है।······स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है।" आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार, "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।" छायावाद के स्वरूप विश्लेषण में छायावादी कवियों का भी योगदान है। जयशंकर प्रसाद ने इसे भारतीय परिवेश से जोड़ते हुए लिखा है—"कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी मे उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया।········छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं। सुश्री महादेवी वर्मा के शब्दो मे, "छायावाद कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया। हृदय की भाव-भूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-सृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावादी आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी।" पंत ने छायावाद का सम्बन्ध युग से जोड़ते हुए लिखा है—"द्विवेदी युग के बाद छायावाद युग का समारम्भ होता है। मन की नीरव-वीथियों ने निकलकर लाज भरे सौन्दर्य में लिपटी एक नवीन काव्य-चेतना युग के निभृत प्राँगण में सहसा स्वप्न मुखर कर देती है। पिछली वास्तविकता की इतिवृत्तात्मकता नवीन कला सकेतों के अरूप सौन्दर्य में तिरोहित होकर भावना के सूक्ष्म अवगुंठनों के कारण रहस्यमयी प्रतीत होने लगती है।·········कवीन्द्र के युग में जो महान प्रेरणा हिन्दी काव्य-साहित्य को मिली वह वास्तव में छायावाद के रूप में विकसित हुई।"

उपर्युक्त समस्त परिभाषाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि हिन्दी

अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार
तुम्हारी छाया में आधार।
सुखद चेष्टाओं में आभार
करुण भौंहों में था आकाश
हास में शैशव का संसार।

नायिका का उपयुक्त मांसल सौन्दर्य-वर्णन नितान्त वासना-रहित होने के कारण भावात्मक हो गया है। शारीरिक सौन्दर्य आन्तरिक शुचिता का परिणाम है। कवि के प्रेम सम्बन्ध में भी यही विशेषता मिलती है—

एक पल, मेरे प्रिया के दृग-पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था!
लाज की मादक सुरा की लालिमा
फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित गढ़ों से; सीप-से

वैयक्तिकता—वैयक्तिक अथवा स्वानुभूत की अभिव्यक्ति ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जो इसे द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक कविता से पृथक करता है। इस कविता में कवि समष्टि से निरपेक्ष रहकर व्यष्टि के सुख-दु:खों की अभिव्यक्ति करता है। दूसरे शब्दों में, छायावाद में कवि अपने अन्तर्जगत को खोलकर पाठक के सम्मुख रख देता है। पंत के काव्य में यद्यपि वाह्यजगत् का यथेष्ट मात्रा में चित्रण हुआ है, परन्तु उसे चित्रित करने में उन्होने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं का समावेश कर दिया है। पंत ने अनेक स्थलों पर अपने व्यक्तिगत सुख-दु:खों की अभिव्यक्ति की है—

जब विमूच्छित नींद से मैं था जगा
(कौन जाने, किस तरह) पीयूषसा
एक कोमल समव्यथित नि:श्वास था
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।

... ...

जड़ चेतन सब एकाकार
शून्य विश्व के उर में केवल
सांसों का आना-जाना !

पंत ने अन्य छायावादी कवियों की भाँति ही प्रकृति का मानवीकरण किया है। 'छाया' को वे व्यक्त नायिका के रूप में चित्रित करते हैं—

कौन कौन तुम परहित वसना
म्लान मना भू पतिता-सी,
वात-हता विच्छिन्न लता-सी
रति श्रान्ता व्रज-वनिता-सी।

इसी प्रकार गंगा का वर्णन भी तापसी बाला के रूप में किया गया है—

शान्त स्निग्ध ज्योत्स्ना उज्ज्वल
अपलक अनन्त नीरव भूतल
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा ग्रीष्म वि ल
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल !
तापस-बाला गंगा, निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु करतल
लहरे उर पर कोमल कुन्तल।

पंत ने प्रकृति को सर्वत्र महती चेतना के रूप में स्वीकार किया है। जीवन के हर क्षण में मानव प्रकृति से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहता है।

रहस्यात्मकता—छायावादी काव्य में आध्यात्मिकता का विशिष्ट स्थान है। जीवन और जगत् के सम्बन्ध में कवि दार्शनिक धरातल पर विवेचना प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि आरम्भ में आचार्य शुक्ल ने छायावाद और रहस्यवाद को अभिन्न माना। चाहे वस्तुस्थिति आज भिन्न है, किन्तु रहस्यात्मकता छायावादी कविता में अवश्य ही मिलती है। छायावादी रहस्य-भावना में जिज्ञासा को एवं कौतूहल को ही प्राधान्य दिया गया है। विश्व में अज्ञात सत्ता का आभास ही जिज्ञासा को जन्म देता है। कवि पंत को भी प्राकृतिक उपकरणों में उसी अज्ञात, अव्यक्त सत्ता का मौन-निमन्त्रण मिलता है, और कवि कौतूहल प्रकट करता हुआ कहता है—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,

विरह के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन।

इसी प्रकार प्रकृति के विविध उपादानों में एक ही अनन्त चेतना के दर्शन पंत ने 'परिवर्तन' में किए हैं—

एक छवि के असंख्य उडुगन
एक ही सबमें स्पन्दन;
एक छवि के विभाव में लीन,
एक विधि के रे नित्य अधीन!
एक ही लोल लहर के छोर
उभय सुख-दुख, निशि भोर;
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार
सृजन ही है संहार!

नारी-भावना— छायावादी कवियों ने नारियों के प्रति परम्परागत विचारों में पूर्ण क्रान्ति उपस्थित की है। नारी मात्र उपभोग का पदार्थ न रहकर पुरुष के समकक्ष मानी गयी। छायावादी कवियों ने उसे पुरुष की उद्धारक एवं प्रेरणा-स्रोत माना। पंत ने भी नारी को इसी रूप में देखा है—

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान
मृदुल दुर्बलता ध्यान
तुम्हारी पावनता अभिमान
शक्ति पूजन सम्मान
अकेली सुन्दरता कल्याणि
सकल ऐश्वर्यों की संधान।

पंत ने सदा नारी के प्रति परम्परागत भावनाओं का विरोध किया है। वे नारी को स्वतन्त्र रूप में प्रकट देखने के पक्षपाती हैं। नारी के प्रति इस परिवर्तित दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति पंत ने निम्न रूप में की है—

मुक्त करो नारी को मानव!
चिरवन्दिनी नारी को,

युग-युग की वर्बर कारा से
जननि, सखि, प्यारी को !

नवीन अभिव्यंजना पद्धति—शैली की दृष्टि से भी छायावादी कविता में नवीनता का संचार किया गया। भाषा, छद और अलंकार मे परम्परागत रूढ़ियों को प्रायः छोड़ दिया गया। भाषा की दृष्टि से पत का काव्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रत्येक शब्द की अन्तरात्मा को पहचान कर उसका सही प्रयोग करना पंत की निजी विशेषता है। इस सम्बन्ध में डा० नरेन्द्र का कथन है—"कवि अपने चित्रों मे इतनी दिव्य रूपरेखा खींचने मे इसलिए समर्थ हो सका है कि उस पर शब्दों के अन्तर्वाह्य दोनों का रहस्य पूर्णतया प्रकट है। उनकी अन्तरात्मा और शरीर का जितना सूक्ष्म ज्ञान पंत जी को है उतना हिन्दी में गिने-चुने कवियों को ही होगा। इस कारण उनका प्रत्येक शब्द व्यंजनापूर्ण (Suggestive) है। जो शब्द जहां पर जड़ दिया गया उसका स्थान वही पर निश्चित रहेगा।" पत की भाषा मे चित्रात्मकता, बिम्ब-विधान विशेष उल्लेखनीय है—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात !
संशकित ज्योत्सना-सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण !

अलंकारों की दृष्टि से पत ने उपमा में नवीनता का संचार किया है। मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान तथा अमूर्त उपमेय के लिए मूर्त उपमान इनकी विशेषता है। इसी के साथ मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय तथा ध्वन्यर्थ-व्यंजना कतिपय नवीन अलंकार इनके काव्य में मिलते हैं। यथा—

मूर्त उपमेय: अमूर्त उपमान—

तरुवर के छायानुवाद-सी, उपमा-सी भावुकता-सी।
अविदित भावानुकूल भाषा-सी, कटी-छँटी नव कविता-सी ॥

मानवीकरण—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शरद हासिनी,

१२ | प्रगतिवाद

पंत जी निरन्तर चिन्तनशील कवि रहे हैं। युग तथा समाज से प्रभावित होकर अन्य कवियों की भांति ही पंत ने भी अपने साहित्य मे युग की मांग को मुखरित किया है। यद्यपि यह सत्य है कि पंत का काव्यारम्भ छायावाद की वैयक्तिक भावभूमि पर हुआ था, तथापि उन पर छायावाद की मनोहारी, स्वप्निल, ऐकान्तिकता का प्रभाव अधिक देर तक नहीं पड़ सका और इसी कारण आगे चलकर पत व्यष्टि से समष्टि की ओर चले आये। पंत के समग्र साहित्य पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो यह स्वयं ही सिद्ध हो जाता है कि युगान्त में आकर पंत की विचारधारा मे आकस्मिक परिवर्तन हुआ है, जिसे कवि ने स्वयं भी इन शब्दों में स्वीकार किया है—'युगान्त' में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम तक पहुँच गया था कि मानव सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि युगान्त ही वह पहली रचना है जिसमें प्रगतिवाद का बीज दृष्टिगोचर होता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी इस सम्बन्ध में यह ठीक ही लिखा है— "पंत की प्रगतिशील रचनाओं में 'युगान्त' की वही प्रारम्भिक स्थिति है जो छायावाद काल मे उनकी 'वीणा' की। वीणा मे अस्पष्ट सौन्दर्य-बोध था, युगान्त में अस्पष्ट युग-बोध। एक में छायावाद का शैशव था, दूसरे में प्रगतिवाद का बाल्यकाल।" पत ने इस प्रकार युगान्त के माध्यम से प्रगतिवाद को अपने साहित्य में स्थान दिया और इसी परम्परा में 'ग्राम्या', 'युगवाणी' आदि रचनाओं में प्रगतिवाद का खुलकर समर्थन किया।

प्रगतिवाद : सैद्धान्तिक-विवेचन—प्रगतिवाद साहित्यिक आन्दोलन होते भी मूलतः राजनीतिक धरातल पर शुरु किया गया था। राजनीतिक क्षेत्र में इसे साम्यवाद कहा जाता है जिसका संबध कार्ल मार्क्स की दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक मान्यताओं से है। कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त दार्शनिक धरातल पर द्वन्द्वात्मक भौतिक जगत् की व्याख्या करता है। मार्क्स के मतानुसार जड़ पदार्थ ही एकमात्र

(८) नारी के प्रति नवीन दृष्टिकाण

(९) काव्य के नवीन मूल्य-मान।

पंत की मध्यवर्ती रचनायें प्रगतिवादी स्वीकार की गयी है। इन रचनाओं में प्रगतिवाद की प्राय: समस्त प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। पंत ने यद्यपि प्रगतिवाद को अपनाया है, तथापि उसे हू-ब-हू न लेकर उसे अपने ढंग पर प्रस्तुत किया है। पंत प्रगतिवाद को छायावाद की ही एक धारा विशेष मानते है—"प्रगतिशील कविता वास्तव में छायावाद की एक धारा है। दोनों के स्वरों में जागरण का उदात्त संदेश मिलता है—एक में मानवीय जागरण का, दूसरे में लोक जागरण का। दोनों की जीवन-दृष्टि में व्यापकता रही है—एक में सत्य के अन्वेषण या जिज्ञासा की, दूसरे में यथार्थ के खोज या बोध की।" इससे पूर्व कि हम पंत की कृतियों में प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों का अन्वेषण करें यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कवि सामान्य रूप से मार्क्स से कहाँ तक प्रभावित रहा है। कवि ने पहली बार गगन को छोड़कर भू की बात कही है—

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु-नीलिमा-गहन गहन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
निस्पन्द शून्य, निर्जन, नि:स्वन ?
देखो भू को
जीव-प्रसू को !

इसके अतिरिक्त कवि ने मार्क्स की भूरि-भूरि प्रशंसा कर उसे नवयुग का अग्रदूत स्वीकार किया है—

धन्य मार्क्स चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदग्र शिखर पर
तुम त्रिनेत्र के ज्ञान-चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर।

सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति—प्रगतिवादी कवि परिवर्तन एव क्रान्ति में विश्वास करता है। प्राचीन जड़ परम्परायें वास्तव मे युग के अनुरूप न होने के कारण मानव-समाज के विकास में बाधक है। इसलिए गली-सड़ी व्यवस्था का परिवर्तन भावी विकास के लिए अनिवार्य है। पंत ने भी इसीलिए प्राचीन परम्पराओं और व्यवस्थाओं में परिवर्तन एवं क्रान्ति की बात की है। उनकी 'गा कोकिल' कविता भी इसी ढंग की है। पंत का कथन है :

गा कोकिल, बरसा पावक-कण !
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बन्धन
पावक-पग धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानव-पन ।

वास्तव में यह क्रान्ति तथा परिवर्तन केवल विनाश के लिए नहीं है, वरन् इस परिवर्तन से नई मानवता का उदय होगा, जिससे एक नयी सभ्यता और संस्कृति की परम्परा शुरू होगी । जीवन की समस्त कुरूपताएँ, वैषम्य जीवन की सुन्दरता में बदल जाएँगे—

हे कुरूप, हे कुत्सित प्राकृत,
हे सुन्दर, हे संस्कृत सम्मत,
आओ जनजीवन परिणय में
परिचित से मिल बाँह भरो ।

प्रगतिवादी कवि पंत ने परिवर्तन द्वारा नवयुग की कल्पना को मुखरित किया है—

हो धरणि जनों की : जगत् स्वर्ग, जीवन का घर
नव मानव को दो प्रभु, भव मानवता का वर ।

साम्राज्यवाद का विरोध —प्रगतिवादी कवि निश्चित रूप से साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोधी होता है । जन-शक्तियों का शोषण करना ही उनका ध्येय रहा है । पंत ने भी अपने साहित्य में इसीलिए साम्राज्यवाद तथा उसकी शक्तियों का विरोध किया है । पंत की 'ताज' कविता में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति न होकर, [illegible] किया गया है, यह पंत की इसी प्रवृत्ति का द्योतक है । वास्तव में पंत प्रगतिवाद को उपयोगितावाद ही मानते हैं— 'प्रगतिवाद उपयोगितावाद का ही दूसरा नाम है । [illegible] विज्ञान के [illegible] है ।" [illegible] प्रगति का विरोधी होता है । इसीलिए उन्होंने साम्राज्यवाद के [illegible] में विरोधी स्वर में लिखा है—

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन ?
स्फटिक सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वासविहीन रहें जीवित जन !
मानव ; ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति?
आत्मा का अपमान, प्रेत औ' छाया से रति ।

... ...

युग युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर
मानव के मोहांध हृदय में किए हुए घर ।

वर्ग-संघर्ष का चित्रण—कार्ल मार्क्स ने प्रगतिवाद में वर्ग-संघर्ष का चित्रण ही दिखाया है और उसी के आधार पर प्रगतिवादी साहित्यकार भी आर्थिक ढांचे पर खड़े समाज में वर्ग-संघर्ष का चित्रण करता है। इस वर्ग-संघर्ष में शोषित वर्ग के प्रति उदारता, सहानुभूति दिखाई गयी है और शोषकों के प्रति बौद्धिक आक्रोश व्यक्त किया गया है। शोषितों में कृषक एवं मजदूर ही अधिकांश में आते हैं। अतः इनके चित्रण में कवि ने अत्यन्त सहानुभूति प्रदर्शित की है। श्रमजीवी का चित्र अंकित करते हुए पंत लिखते हैं—

भूख प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति,
स्पष्ट कथा कहती, कैसी यह युग की संस्कृति ।

वास्तव में शोषण की इसी संस्कृति ने शोषितों का रक्त चूसकर उन्हें नितान्त दयनीय बना दिया है। उनका जीवन वास्तव में मृत के समान है—

ये जीवित है या जीवन मृत !

और शोषण की चक्की में निरन्तर पिसते रहने के पश्चात् शोषित कंकाल मात्र रह जाता है—

खड़ा द्वार पर लाठी टेके,
यह जीवन का बूढ़ा पंजर,
चिपटी उसकी सिकुड़ी चमड़ी
हिलते हड्डी के ढांचे पर !

वर्ग-संघर्ष को चित्रित करने के लिए कवि शोषकों के निर्मम चित्र भी अंकित करता है—

ईर्ष्या की पीड़ा अद्भुत है जिसकी मारी
अहंमन्य है, क्रूर अकिंचन है व्यभिचारी।
कुत्सित, गन्दी गुफाओं से संवेष्टित,
नर पशु के ये भाव मनुजता जिनसे लज्जित।
यहीं हुये, निरंकुश, निर्मम, पशुचित, कुत्सित
इस सम्पत्ति के नरक... लोक जीवन जिनसे मृत।

और यही कारण है कि इन वर्ग-संघर्ष से पंत ने शोषितों के प्रति मौलिक सहानुभूति दिखाते हुए मानववाद में हृदय की बात की है—

मानववाद ही मात्र स्वर्ण युग का मधुर पदार्पण
नूतन निखिल मानवता करती मानव का अभिनन्दन।

धर्म एवं ईश्वर आदि में अनास्था—प्रगतिवाद का सम्बन्ध यथार्थ भौतिक जगत से है जिसमें भौतिक शक्तियों को महत्व दिया गया है। भौतिक शक्तियों के महत्व में स्वतः उसमें आध्यात्मिकता का विरोध मिलता है। पंत ने भी इसी कारण ईश्वर एवं आध्यात्मिक शक्तियों का विरोध कर मानव-समाज एवं मानवीय गुणों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है—

मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें,—मानव ईश्वर!
और कौन-सा स्वर्ग चाहिए तुझे धरा पर!

नवीन जीवन-मूल्यों की स्थापना—प्रगतिवादी कवि प्राचीन जीवन-मूल्यों की अपेक्षा नवीन मूल्यों को महत्व प्रदान करता है। इन नवीन जीवन-मूल्यों के अन्तर्गत मनुष्य की भौतिक प्रगति एवं सामूहिक विकास पर आधारित मान्यता है—

निश्चित ही, बदले नव युग जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, पर मान्यता सनातन,
सामाजिक सम्बन्ध बने नव, अर्थ भित्ति पर नूतन।
नव विचार, नव रीति-नीति, नव नियम भाव नव दर्शन।

इसका कारण है कि इन नवीन जीवन-मूल्यों को स्वीकार करने के कारण [illegible] भी [illegible] आवश्यक [illegible] है। फलस्वरूप, [illegible] नया धर्म भी वह [illegible] के [illegible] का नया [illegible] करता है—

धर्म नीति की [illegible]
[illegible] है [illegible]

सत्य नहीं वह जनता से जो
नहीं प्राण सम्बन्धित।

इसी प्रकार प्राचीन मूल्यों के टूटने पर ही नवीन मूल्यों की स्थापना भी सम्भव है—

झरते हों झरने दो पत्ते,—डरो न किंचित
नवल मुकुल मंजरियों से भव होगा शोभित।
सदियों में आया मानव जग में यह पतझर,
सदियों तक भोगोगे नव मधु का वैभव पर।

पंत ने प्राचीन मूल्यों में जहाँ महान् व्यक्ति ही पूज्य होता था, उसके विरोध में नवीन दृष्टिकोण अपनाते हुए सामाजिक दृष्टि से हीन माने जाने वाले मनुष्यों को महत्त्व प्रदान किया है। यही कारण है कि धोबी, मोची तथा कहारों पर भी पंत की लेखनी चली है। 'कहारों का रुद्र नृत्य' कविता से एक उद्धरण द्रष्टव्य है—

स्त्री नहीं गुजरिया, वह है नर।

इसी प्रकार मध्य वर्ग के प्रति भी कवि ने बौद्धिक सहानुभूति दिखाकर उसकी नवीन जीवन-मूल्यों के आधार पर स्थिति स्वीकार की है—

मध्यवर्ग का मानव यह परिजन पत्नी-प्रिय,
यश कामी, व्यक्तित्व प्रसारक, परहित निष्क्रिय।
श्रमजीवी वह यदि श्रमिकों का हो अभिभावक,
नवयुग का वाहक हो, नेता लोक प्रभावक।

पंत ने अपने नवीन जीवन-मूल्यों पर विचार करते हुए लिखा है—"मध्य युग की अन्न, वस्त्र पीड़ित असभ्य निर्बुद्धि पक मे पालित जनता का इस वाष्प विद्युद्गामी युग में सम्पूर्ण जीर्णोद्धार न करना उनके मनुष्यत्व के प्रति कृतघ्नता के सिवा और कुछ नही है।" इसी कारण पंत ने यन्त्रों के प्रयोग पर बल दिया है। अन्ततः कवि मानव के स्वभाव को ही नवीन रूप देने की बात सोचता है—

मानव स्वभाव ही
बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण
असुन्दर को सुन्दर।

उसके पृथक पद के समर्थक हैं। पंत ने भी नारी के परम्परागत शोषण का विरोध किया एवं उसके मुक्त रूप के लिए आवाज उठाई। पंत की दृष्टि में नारी केवल भोग्या नही, अपितु वे इसे देवि तथा माँ भी मानते है। इन्ही भावनाओं से प्रेरित होकर कवि ने लिखा है—

मुक्त करो नारी को, मानव
चिर बंदिनी नारी को
युग-युग की बर्बर कारा से
जननि, सखि, प्यारी को।

नारी परम्परागत दृष्टि से पुरुष के अधीन रही है। उसकी अपनी निजी सत्ता नही है। इसी का करुणाजनक चित्र उपस्थित करते हुए कवि कहता है—

वह समाज की नहीं इकाई – शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन-मान, मान पर नर के है अवलम्बित
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नहीं प्रदर्शित
दृष्टि स्पर्श, संज्ञा से वह हो जाती सहज कलंकित।

नारी के प्रति इसी सहानुभूति को प्रकट करते हुए कवि यह भी कहता है कि देह की पवित्रता-अपवित्रता की अपेक्षा मन की पवित्रता अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से वे जैनेन्द्र के समीप जा बैठते है—

उठो मालती, लील जायगा
तुम को घर का काला कोना!
मन से होते मनुज कलंकित,
रज की देह सदा से कलुषित।
प्रेम पतित-पावन है, तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित।

काव्य के नवीन मूल्य-मान—सामान्यतया प्रगतिवादी काव्य मे रस की अधिक चवर्णा नहीं मिलती। परन्तु पंत के काव्य में (प्रगतिवादी काव्य) रस मिल जाता है। पंत ने प्रगतिशील रचनाओं मे अलंकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान नही दिया है। इस सम्बन्ध मे पंत का कथन है—"नवीन आदर्श और विचार अपनी ही उपयोगिता के कारण संगीतमय एवं अलंकृत होते है।" इसीलिए कवि ने लिखा है—

तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।

....

१३ : गीतिकाव्य

काव्य की भूमि मानव-मानसता की भूमि है और कविता उसके उच्छ्वास की वाणी। मानव आदिम युग से ही अपने भावों और हर्ष, उल्लास, दुःख, वेदना, व्यथा, निराशा का प्रकाश करता चला आया है। जब-जब उसकी मनोदशा पर इन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है, तब तदनुरूप अभिव्यक्ति भी हुई है। वस्तुतः कविता आत्मगत अभिव्यक्ति का ही दूसरा नाम है। कवि की अभिव्यक्ति के मूल में दो विशिष्ट पदार्थ हैं—एक बाह्य जगत् और दूसरा कवि का अन्तर्जगत्। प्रतिपादित विषय के आधार से काव्य का स्वरूप भी बदलता रहता है। इसी स्वरूप-वैभिन्न्य की दृष्टि से पश्चिम के विद्वानों ने काव्य के दो प्रकारों का उल्लेख किया है—विषयगत (Objective) तथा विषयीगत (Subjective)। विषयीगत काव्य आत्माभिव्यंजक शैली के कारण गीति से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है। आत्माभिव्यंजक काव्य के ही विभाजन को ही विविध रूप से लिया जाता है। व्यक्तिगत सुख-दुःख की अनुभूति जब स्वतः उद्भूत होकर गानात्मक होती है, तो उसे गीति की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः गीति में भाव एवं संगीत का पूर्ण सम्मिलन रहता है।

गीतिकाव्य : स्वरूप विवेचन — आधुनिक गीतिकाव्य पश्चिम की देन है, यद्यपि विद्वानों का मत है कि गीति की परम्परा हमारे यहाँ अत्यन्त प्राचीन समय से चली आ रही है। उनके अनुसार वेदों के प्रार्थनापरक उदाहरण [illegible]

[illegible]

ही डाला गया है। गीति-काव्य का जो रूप हिंदी साहित्य में मान्य है, वह अधिकांश में पश्चिम से ग्रहण किया गया है। पश्चिम में गीतिकाव्य का सम्बन्ध वीणा सदृश वाद्य-यन्त्र 'लायर' से जोड़ा गया है। उस यन्त्र पर भावातिरेक दशा में गेय पदों का गायन हुआ करता था, और वहीं से यह शब्द गीतिकाव्य के लिए रूढ हो गया।

हरबर्ट रीड का मत—गीत साधारणतया उस रचना को कहते है जिसमें सूक्ष्म अनुमति हो। जिसमें भावात्मकता का प्राधान्य हो।

विलियम हेनरी हडसन—"We may begin with personal or subjective poetry to which, rather loosely, the name lyrical is often applied."

अर्नेस्ट रिस का मत—गीतिकाव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण आधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।

हीगल का मत—गीतिकाव्य में किसी ऐसे व्यापक कार्य का चित्रण नहीं होता जिससे वाह्य संसार के विभिन्न रूपों एवं ऐश्वर्य का उद्घाटन हो। उसमें तो कवि की निजी आत्मा के ही किसी एक रूप-विशेष के प्रतिबिंब का निदर्शन होता है। उसका एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आन्तरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आह्लाद की तरगों और उसकी वेदना की चीत्कारों का उद्घाटन करना ही है।

Walter Pater का मत—'A lyrical poetry must be held essentially to imply that each poem shall turn upon some single thought, feeling or situations."

जान ड्रिंक वाटर का मत—गीति काव्य एक ऐसी अभिव्यंजना है जो विशुद्ध काव्यात्मक प्रेरणा से व्यक्त होती है तथा जिसमें किसी अन्य प्रेरणा के सहयोग की अपेक्षा नहीं रहती।

डॉ० श्यामसुन्दर दास का मत—गीतिकाव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत् को अपने अन्त.करण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है। आत्म-अभिव्यंजन सम्बंधी कविता गीतिकाव्य में ही छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापूर्ण आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक-सी जान पड़ती है। उसमें शब्दों की साधना के साथ स्वर की भी साधना होती है। भावना

रूप यदि कवि तथा पाठक में सीधा सम्बन्ध-स्थापन करता है तो दूसरा रूप कल्पना की दूरी डाल देता है। किन्तु यह सभंव नहीं हो सकता कि कवि सामाजिक क्षेत्र से अपने को नितान्त काट ले। कलाकार युग में रहता हुआ युग की समस्याओं पर व्यक्तिगत राय दे सकता है। इसे भी आत्माभिव्यक्ति के अन्तर्गत मानना पड़ेगा। पंत के काव्य में आत्माभिव्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से नहीं हो पायी है। पंत ने इस सम्बन्ध में स्वयं स्वीकार किया है— "यह सच है कि व्यक्तिगत सुख-दुःख के सत्य को अथवा मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नही दी है। क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है।" पंत की इस स्वीकारोक्ति का यह अर्थ नहीं उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को काव्य में उद्घाटित नहीं किया है। इनका परिमाण अवश्य कम है। 'ग्रंथि', 'आँसू' तथा 'उच्छवास' उदाहरणार्थ लिए जा सकते हैं। 'ग्रंथि' में अपने असफल प्रेम का चित्र उपस्थित करते हुए कवि कहता है—

"ओ भोले प्रेम! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से, जहाँ
झूमते गज से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है।
पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं।"

इसी प्रकार कवि ने 'अतिमा,' पुस्तक में 'स्मृति' कविता के अन्तर्गत अपने पूर्व प्रेम का स्मरण इस रूप में किया है—

"यौवन वेला वह, स्वप्न लिखी, छवि रेखाएँ जिसमें ओझल,
तुम अन्तर्मुख शोभा धारा बहती अब प्राणों में शीतल।
प्राणों की फूलों की डालो स्मृति की छाया मधु कोमल
यह गीति व्यथा, अन्तर्मुख स्वर वह प्रीति कथा धारा निश्छल।"

इसी प्रकार अनेक स्थलों पर कवि ने परोक्ष रूप में भी अपनी विचारधारा प्रस्तुत की है। अपने काव्यारम्भ में कवि मानव की अपेक्षा प्रकृति से प्रभावित था और प्रकृति ही सब कुछ उसके लिए थी। इसी प्रकृति के प्रति एकान्त भाव का चित्र निम्न रूप मे मिलता है—

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?"

संगीतात्मकता—गीतिकाव्य की [illegible] एक संगीतात्मकता मुख्य विशेषता है। गीतिकाव्य के आदि में [illegible] प्रधान है और गेय काव्य है, वहाँ [illegible] का होना स्वाभाविक ही है। इसी को लक्ष्य करके कहा भी गया है—"Poetry is music in words and music is poetry in sound." इसी प्रकार [illegible] का भी कथन है—"No verse which is unmusical or obscure can be regarded poetry, whatever other qualities it may possess." [illegible] सम्बद्ध होने से [illegible] है और इसी कारण इस काव्य में संगीतात्मकता का प्राधान्य है। [illegible] आदि काव्य-ग्रंथों में संकलित कविताएँ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। [illegible] में भावात्मक अनुभूतियाँ होने के कारण संगीत [illegible] होता गया है। [illegible] भी संगीतात्मकता इस दृष्टि से और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि इनमें छन्द-विधान में लय का ध्यान रखा है, उनकी कविताएँ इसी प्रकार की हैं। लय पर आधारित एक उदाहरण दृष्टव्य है—

"[illegible] मधुर अनुराग था, जब गंध से
[illegible] होकर [illegible] मधुर [illegible];
[illegible] से [illegible],
[illegible] से [illegible]!
[illegible] अनुराग [illegible] लय [illegible]
[illegible]
[illegible] में [illegible]
[illegible] में।"

[illegible] अनुभूति—[illegible] और अनुभूतियों का [illegible] अनु-[illegible] अनुभूतियों [illegible] किसी [illegible] अनुभूतियों [illegible] से लिखते हैं—

"शीश रख मेरा सुकोमल जांघ पर,
शशि-कला सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा, अचल,
सदय, भीरु, अधीर, चिन्तित दृष्टि से।"
... ...
एक पल, मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर, सहज नीचे गिरे,
चपलता ने इस विकम्पित पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय-सम्बंध था।"

निरपेक्षता—गीतिकाव्य में एक घटना, एक परिस्थिति, एक अनुभूति का वर्णन होता है। यह वर्णन अपने आप मे पूर्ण होता है। दूसरे शब्दो में, प्रबन्ध काव्य के विपरीत इसमें कथा नही होती और पूर्वापर सम्बंध-विहीन छंद होते हैं। पत के काव्य में यह विशेपता मिलती है। पंत की लम्बी कविता 'परिवर्तन' में भी कोई कथा नहीं, वरन् अनेकानेक विचार विन्दु है, जो कि अपने आप में स्वतः पूर्ण हैं। यथा—

"बिना दुःख के सब सुख निस्सार,
बिना आंसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ' प्यार।"
... ...
"एक बचपन ही में अनजान
जागते, सोते, हम दिन-रात,
वृद्ध बालक फिर एक प्रभात
देखता नव्य स्वप्न अज्ञात;
मूंद प्राचीन मरम
खोल नूतन जीवन!"

सक्षिप्तता—संक्षिप्तता गीत के प्रभाव को अखण्ड बनाये रखती है और भाव की इस अखण्ड प्रकृति के कारण एक अन्वित प्रभाव पाठक के मन पर पड़ता है। गीतिकाव्य में संक्षिप्तता को आवश्यक तत्त्व समझने का एकमात्र मर्म भाव की तीव्रता के कारण है। यदि गीत का आकार विस्तृत कर दिया

एकात्मकता (जीवन के एक अंश का चित्रण)—गीतिकाव्य में पूरे जीवन की अपेक्षा एक भाव अथवा जीवन के किसी अंश विशेष का चित्रण किया जाता है। 'आँसू की बालिका' एक ऐसी कविता है जिसमें कवि ने अपने प्रणय जीवन के मधुमय दिनों को प्रस्तुत किया है—

"अपरिचित चितवन में था प्रात
सुधामय सांसों का उपचार!
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार,
करुण भौंहों में था आकाश
तुम्हारी आँखों में कर वास
हास में शैशव का संसार,
प्रेम ने पाया था आकार।"

रसात्मकता—गीतिकाव्य में कथा की रोचकता प्रायः नहीं होती। अतः रोचकता उत्पन्न करने के लिए वाग्वैदग्ध्य तथा उक्ति चमत्कार आदि साधनों पर बल दिया जाता है। पंत के काव्य में रसात्मकता के लिए चमत्कार उत्पन्न किया जाता है—

"इन्दु पर, उस इन्दु मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से
लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।
बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में,
अचल रेखांकित कभी थी कर रही
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।"

गीतों के प्रकार-भेद—वर्ण्य-विषय के आधार पर गीतों के अनेक प्रकार-भेद है, यथा—वीर गीत, करुण गीत, विचारात्मक गीत, सम्बोधित गीत, राष्ट्रीय गीत, सॉनेट इत्यादि। पंत के काव्य में प्रेम गीत, राष्ट्रीय गीत, सामाजिक गीत और विचारात्मक गीतों का प्राधान्य है।

यहाँ इनमें से कुछ का विवेचन प्रस्तुत है।

प्रेमगीत — इन गीतों में कवि ने प्रेम [illegible] पर आधारित इन गीतों का सुन्दर [illegible] की अभिव्यक्ति है —

कौन, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश कलाप
मधुर, मंथर, मृदु, मौन !

चिन्तनात्मक गीत — इनमें अनुभूति के स्थान पर चिन्तन की प्रधानता रहती है । पंत के परवर्ती काव्य में यह प्रकार मिलता है । सुन्दरम् के प्रति कवि का चिन्तनात्मक दृष्टिकोण —

सुन्दरम् के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरण ।
फिर तन में यौवन हो गति,
फिर गति में यौवन हो मन ।

प्रार्थनागीत — [illegible] के प्रार्थना गीतों की रचना नहीं की है, किन्तु इन्होंने [illegible] के उद्धार के लिए प्रार्थना की है—

जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन !

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य की दृष्टि से पंत का [illegible] है । [illegible] है । किन्तु [illegible] है । पंत का [illegible] है—

[illegible]

. . . .

१४ | रूप-विधान

रूप-विधान इन्द्रियों द्वारा किये गये अनुभवों का व्यक्त रूप है। रूप-विधान के संबंध में आलोचकों के भिन्न-भिन्न मत हैं। पाश्चात्य आलोचकों में मिस एडिथ रेकर्ट का कथन है कि 'रूप-विधान एक मानसिक पुनरुत्पत्ति है जिसका प्रादुर्भाव शब्दों के माध्यम से देखी हुई, सुनी हुई, स्पर्श की हुई और सूंघी हुई वस्तुओं द्वारा होता है। अतः रूप-विधान मानसिक चित्रों के रूप में अनुभवों की अभिव्यक्ति का नाम है।' रूप-विधान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए एक अन्य आलोचक का कथन है—'कल्पना-चित्र या रूप-विधान एक नन्हा सा शब्द चित्र है, जिसका उपयोग कवि अथवा लेखक अपने भावों और विचारों की व्याख्या करने तथा उसे बोधगम्य और स्पष्ट करने के लिए करता है।' सामान्य-रूप से रूप-विधान से हमारा अभिप्राय: मानसिक चित्रों से है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन मानस-चित्रों की तीन कोटियाँ स्वीकार की है—प्रत्यक्ष रूप-विधान; स्मृत रूप-विधान और कल्पित रूप-विधान। काव्य का सम्बन्ध तीसरे रूप-विधान से है। इसके भी आगे दो भेद स्वीकार किये गये हैं—१. प्रस्तुत रूप-विधान और २. अप्रस्तुत रूप-विधान। प्रस्तुत रूप-विधान विभाव, अनुभाव आदि से सम्बद्ध होता है और अप्रस्तुत रूप विधान अलंकार आदि से। आलोचकों का यह विचार है कि काव्य में प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत रूप-विधान अधिक उपयोगी होता है क्योंकि इसी से काव्य की कलात्मकता में वृद्धि होती है, भाषा में चित्रात्मकता आती है और भावों का नवीन रूप उद्घाटित होता है। अप्रस्तुत-विधान की भी वर्ण्य-विषय तथा शिल्प के आधार पर कई कोटियाँ बन जाती हैं, यथा—

१. सांस्कृतिक
२. पौराणिक
३. ऐतिहासिक
४. प्राकृतिक
५. सामाजिक
६. राजनीतिक
७. आर्थिक

साथ आत्मसमर्पण करना। भारतीय दुलहिन में करुणा का भाव भी इसमें चित्रित किया गया है। कलात्मकता की दृष्टि से भी यहाँ चाँदनी के माध्यम से दुलहिन का चित्र उपस्थित किया गया है। पंत ने अन्यत्र भी भारतीय नारी का सांस्कृतिक रूप चित्रित किया है। भारतीय नारी परम्परा से पुरुष की अनुचरी है—

वह नर की छाया नारी।
चिर नमित नयन, पद विजिड़ित
वह चकित, भीत हिरनी-सी
निज चरण चाप से शंकित
मानव की चिर सहधर्मिणी,
युग युग से मुख अवगुंठित
स्थापित करके कोने में
वह दीपशिखा-सी कंपित
करती वह जीवन-यापन
युग-युग से पशु-सी पालित,
बंदिनी काम-कारा की
आदर्श नीति परिचालित।

उपर्युक्त उद्धरण में नारी को दीपक के समान कहा गया है। जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाश देता है, उसी प्रकार नारी आजीवन जलती है और दूसरो को लाभ पहुँचाती है। इसी प्रकार परम्परा से नारी पशु के समान निरीह है और पुरुष के अत्याचारों को सहती है। उसका जीवन आदर्शों से चलाया जाता है और उसका प्रमुख कार्य पुरुष की वासना की पूर्ति करना है।

पौराणिक रूप-विधान—इस रूप-विधान के अन्तर्गत कवि पुराण आदि ग्रंथों से घटनायें अथवा प्रसंग लेता है। पंत के काव्य में भी कई स्थलों पर पौराणिक तत्त्व मिल जाते है। पौराणिक दृष्टि से राजा बलि तथा वामनावतार के संघर्ष का चित्र है—

पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन-पग में—

[illegible]
[illegible] ।

[illegible]—

है छोर कठोर नहीं है इसका कुछ संसार !

... ...

नील की लहरों, कहाँ क्या छोर है ?
[illegible] ।

[illegible]—

[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

[illegible] ।

[illegible]—

[illegible],
[illegible] ।

मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग-सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार-बार
नीचे जल में निज महाकार
जिसके चरणों में पला ताल,
दर्पण-सा फैला है विशाल।

उपर्युक्त उद्धरण में कवि ने पर्वत की विशालता को अंकित किया है। पर्वत का पुष्प रूपी नेत्रों से देखना मानवीय रूप-व्यापार की व्यंजना करता है। जल की स्वच्छता को मूर्त करने के लिए कवि ने दर्पण शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ पंत ने पर्वत का संश्लिष्ट चित्र दिया है। इसी प्रकार एक अन्य उद्धरण में भी कवि ने प्रकृति का अत्यन्त वारीकी से रूप उतारा है। दिन की आभा समाप्त हो चुकी है। गंगा के जल मे सुनहरी किरणें अंधकार के कारण नीली पड़ने लगी है। कवि को ऐसा लगता है मानो भय के कारण अधरों की ललिमा नीलिमा में परवर्तित हो गयी है। अत्यधिक शीतलता के कारण अरुण वर्ण नील वर्ण में परवर्तित हो जाता है। इस भाव-सत्य के आधार पर कवि ने गंगा के जल का वर्णन किया है—

गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल
है मूंद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।

पंत ने प्रकृति का मानवीकरण कर उसे नारी रूप में भी चित्रित किया है। पंत ने यद्यपि अपनी कलात्मकता के कारण प्रकृति को अनेक स्थलों पर नारी रूप में चित्रित किया है, परन्तु 'छाया' कविता में पंत ने जिन अप्रस्तुतों का प्रयोग किया है, वह अपने आप में मौलिक होता हुआ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन अप्रस्तुतों से एक चित्र वन जाता है। 'संध्या' का वर्णन भी दर्शनीय है—

कहो, रूपसि तुम कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
सुनहला फैला केश कलाप,
मधुर, मंथर; मृदु मौन।
... ...

पूंजीवाद उठा हिंसा का धूम केतु ध्वज
लिये लोक संहार घोर अणु मुष्ठि में विकट
फिर ललकार रहा धरती की हरित शांति को
जन-समुद्र के उर की नभ-चुम्बी लहरों पर
दुरभि संधि से शासन करने ! हाय दुराशा ! !

इसी प्रकार 'युगवाणी' में कवि ने पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के ध्वस्त होते हुए रूप को भी प्रस्तुत किया है—

रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में शोभन
पूंजीवाद निशा भी होने को आज समापन।

आर्थिक रूप-विधान—आज के आर्थिक-वैषम्य तथा दरिद्रता के आधार पर जो रूप-विधान निर्मित किया जाता है, उसे आर्थिक रूप-विधान कहा जाता है। पंत ने इस प्रकार का रूप-विधान अधिकांश में ग्राम्या, युगवाणी इत्यादि काव्य कृतियों में प्रस्तुत किया है। आर्थिक दृष्टि से विपन्न होने के कारण ग्राम में रहने वाले व्यक्तियों का जीवन पशु समान होता है। पेट भरने के लिए, निरन्तर दु खों से जूझने के कारण ग्राम-युवतियाँ असमय ही वृद्ध हो जाती है। उनका जीवन चक्की में पिसते हुए अनाज की तरह है—

रे दो दिन का
उसका यौवन !
सपना छिन का।
रहता न स्मरण
दु:खों से पिस,
दुर्दिन में घिस,
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन धन!

'ग्राम्या' में कवि ने अधिकांश में ग्राम-जीवन से सम्वद्ध ही कारुणिक चित्र अंकित किए है। शोषण के निरन्तर चक्र में पिसने के कारण कृषक-समाज के पास सम्पत्ति के नाम पर केवल ऋण की लम्बी लिस्ट रह जाती है—

बिका दिया घर-द्वार महाजन ने, न ब्याज की कौड़ी छोड़ी
रह रह आँखों में चुभती, वह कुर्क हुई बरधों की जोड़ी।

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।

१५ | शिल्प-विधान

शिल्प-विधि अंग्रेजी के 'टेकनीक' (Technique) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। इसका तात्पर्य है—रचना-पद्धति। रचना-पद्धति कभी स्थिर नहीं रहती। वह परम्परा नहीं है। ई. एम. फोर्स्टर का कथन है—'Form is not tradition. It alters from generation to generation" इसके आगे भी उन्होंने कहा है—"Artists always seek a new technique and will continue to do so as long as their work excites them." अतः शिल्प-विधि का अर्थ हुआ रचना-पद्धति, जो कि मूलतः वैयक्तिक होती है। वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ, तथा प्रत्येक युग में नवीन रूप धारण करती है। अतः परिस्थितियों के अनुसार तथा कवि के मानसिक विकास के साथ-साथ उसकी कला में भी उत्तरोत्तर विकास होता रहता है।

पंत मूल रूप से छायावाद से सम्बद्ध रहे हैं, परन्तु समयानुसार उनकी विचारधारा में परिवर्तन होता रहा है। रचना-पद्धति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे छायावाद से लेकर प्रगतिवाद तक पहुंच गये हैं। अतः उनकी कला में भी छायावाद के अनुरूप कोमलता और प्रगतिवाद के अनुरूप पौरुषता दोनों रूप ही मिलते है।

पंत के काव्य में उनके कवि का भावुक रूप उतना सबल नहीं जान पड़ता जितना उनका कलाकार रूप। यही कारण है कि इनको कवि की अपेक्षा कलाकार अधिक माना जाता है। इनके भाव प्रायः सुकुमार होते है, अतः कला का रूप भी कोमल है। इस सुकुमारता के कारण इनकी कला की तुलना तितली के रगीन पंखों से की गयी है। इनकी कला का मूल उत्स छायावाद है। अतः छायावादी कवियों की भांति मूलतः अलकृत है और अलंकरण के साधनों में भाषा, छन्द तथा अलंकारों का विशिष्ट स्थान है। इसीलिए यहाँ इन पर विचार किया जा रहा है।

भाषा—पंत का आगमन साहित्य में उस समय हुआ जबकि महावीर प्रसाद

तीर, फलक इत्यादि और अंग्रेजी में मिसेज, क्वीन, हिल, ग्रेट, ब्लैक इत्यादि है। कहीं कही चिमटी, पिचका इत्यादि ग्रामीण शब्द भी मिल जाते है।

(२) चित्रात्मकता—शब्दों के द्वारा वर्ण्य-विषय का चित्र उपस्थित करने में पंत सिद्धहस्त हैं। यह चित्रण दो प्रकार का किया गया है—स्थिर तथा गत्यात्मक। गत्यात्मक सौन्दर्य का चित्र दर्शनीय है—

बाँसों का झुरमुट, सन्ध्या का झुटपुट
हैं चहक रही चिड़ियाँ टी-वी टी टुट्-टुट्।

यहाँ रात्रि के आगमन तथा वातावरण के धुंधलेपन को चित्रित किया गया है।

(३) ध्वन्यात्मकता—शब्दों की ध्वनि के द्वारा ही पंत ने वर्ण्य-विषय को साकार बनाने का सफल प्रयत्न किया है। चिड़ियों की 'टी-वी-टी' के द्वारा ही वातावरण की साकारता प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार पर्वत से गिरने वाले झरने का चित्र भी इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है—

गिरि का गौरव गाकर झर्-झर्
मद में नस नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों-से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर!

(४) शब्दों की अन्तरात्मा का परिज्ञान—पंत की भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि अनेक पर्यायवाची शब्दों के पार्थक्य को वे जानते हैं। कौन-सा शब्द किस विशिष्ट भाव, चित्र, ध्वनि को प्रकट करता है, इसका परिज्ञान पंत को है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है—"भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः संगीत-भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते है। जैसे भ्रू से क्रोध की वक्रता, भृकुटि से कटाक्ष की चंचलता, भौहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय मे अनुभव होता है।" इसी कारण पंत ने शब्दों का अत्यन्त सावधानी से प्रयोग किया है—

अनिल-पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुर-ध्वनि खग-कुल रोल।

(५) मुहावरे और कहावतें—पंत जी ने मुहावरों एवं कहावतों का अधिक प्रयोग नहीं किया है। यदि कुछ प्रयोग किये भी है तो उन्हें अपने रूप में ढाल लिया है। डॉ० नगेन्द्र का इस सम्बन्ध में स्पष्टीकरण है—"पंत जी का

विश्वमय हे परिवर्तन !
अतल से उमड़ अकूल अपार
मेघ से विपुलाकार
दिशावधि में पल-पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार ।
... ...
अखिल विश्व की आशाओं का इन्द्रचाप वर
अहे तुम्हारी भीम भृकुटि पर
अटका निर्भर !

(२) नवीन छन्दों का निर्माण— पंत ने गति एव लय के आधार पर कतिपय नवीन छन्दों का भी निर्माण किया है । यथा—

जल छलकाती,
रस बरसाती
बल खाती वह घर को जाती,
सिर पर घट
उर पर धर पट

पंत ने पश्चिम के ढंग का Run on Lines छन्द का अपने काव्य में प्रयोग किया है—

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने—
वेदना के विकल हाथों से जहाँ—
झूमते गज से विचरते हो वहीं—
आह है, उन्माद है, उत्ताप है ।

(३) मुक्त छन्द—

एक पल जग-सिंधु का गंभीर गीत
आज पुलकित वीचियों में डूब जा
हम प्रणय की सदय-मुख छवि देख लें
लोल लहरों पर कलापति ने लिखी ।

पंत के छन्द-विधान में भी क्रमिक विकास हुआ है । 'वीणा' तथा 'पल्लव' में छन्द-विधान का प्रयोगात्मक रूप है । 'ग्रन्थि' में अंग्रेजी के Run-on-Lines का विधान है । 'गुंजन' में छन्दों की रुनझुन है । 'ज्योत्स्ना' में छन्द एक विशेष

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इस अलंकार के अन्तर्गत कवि ने ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता तथा नाद-मय चित्र खीचे है।

यमक—एक शब्द की एकाधिक वार आवृति हो, परन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न हो—

तरणि के ही संग तरल तरंग में
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

यहां पहले 'तरणि' का अर्थ सूर्य तथा दूसरे 'तरणि' का अर्थ नौका है।

उपमा—दो भिन्न वस्तुओं में साधारण धर्म के आधार पर समता दिखाई जाती है। उपमा अलंकार में पंत ने नवीनता प्रदर्शित की है। कवि ने प्राचीन उपमानों को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है—

कहो कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई,
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि! नल-सा निष्ठुर कोई।

यहाँ 'छाया' को दमयन्ती उपमान दिया गया है। अमूर्त उपमेय के लिए इस प्रकार का मूर्त उपमान सराहनीय है। कवि ने कहीं-कही अमूर्त उपमान की योजना भी की है। यथा—

प्रथम हास-से, प्रथम अश्रु-से
प्रथम पुलक-से-हे छविमान्
स्मृति-से विस्मय से तुम सहसा
विश्व स्वप्न से खिले अजान।

रूपक—जहाँ उपमेय पर उपमान के रूप का आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है। पंत के काव्य में रूपक का विशिष्ट प्रयोग मिलता है। इसमें सादृश्यमूलक तथा साधर्म्म मूलक अप्रस्तुतों का प्रतीक रूप में प्रयाग किया गया है।" 'परिवर्तन' को निरंकुश राजा के रूप में ग्रहण करते हुए कवि लिखता है—

तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित पद मर्दित
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमायें खंडित
हर लेते हो विभव कला कौशल चिर-संचित।

सैकत—शय्या पर दुग्ध धवल, तन्वंगी गंगा ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल।

विशेषण विपर्यय—विशेषण को अपने उचित स्थान से हटाकर अन्य स्थान पर लगा देने में विशेषण विपर्यय अलंकार होता है। पंत ने इसका भी उत्कृष्ट रूप में प्रयोग किया है, यथा—

गिरा हो जाती है सनयन
नयन करते नीरव भाषण,
श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण।

ध्वन्यर्थ व्यंजना—जहाँ शब्दों का नाद-सौन्दर्य अर्थबोध का प्रधान कारण हो, वहाँ यह अलंकार समझना चाहिए। पंत की कविता में भी इसका प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों की भारी झर-झर
झींगुरों की झीनी झंकार,
घनों की गुरु गम्भीर गहर
बिन्दुओं की छनती छंकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर।

संक्षेप में, पंत अलंकार-प्रिय कवि है। वे अलंकारों को अत्यन्त सुन्दर रूप से काव्य में उतार कर चित्र-शक्ति को द्विगुणित कर देते हैं। अलंकार उनके उनके लिए स्वाभाविक बन्धन है, जिन से भावाभिव्यंजना में अधिक शक्ति आ जाती है। निष्कर्षतः पंत की कला सुकुमार है। इनकी कला को अनेक विशेषणों से उद्घाटित किया जाता है। काव्य के क्रमिक विकास के साथ ही साथ उनकी कला में भी विकास होता गया है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में—"पंत जी सुन्दर कलाकार हैं, उनकी कला रंगीन है—चटकीली। प्रारम्भ से ही उसमें एक स्वस्थ विकास दृष्टिगोचर होता है।" पंत की कला समन्वय की कला है जो विरोधी तत्वों में सामंजस्य उत्पन्न करती है। इसी कारण वह रंगीन होती हुई भी वास्तविक है।

———

१६ । मूल्यांकन

कविवर सुमित्रानन्दन पंत के यदि समग्र साहित्य पर दृष्टिपात किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने एक ओर जहाँ समसामयिक कवियों से अपना सम्बन्ध स्थापित किया है, वहीं वे पश्चिम के स्वच्छन्दतावादी कवियों से भी प्रभावित रहे हैं। पंत ने इस संदर्भ में अनेक स्थलों पर पश्चिम के शैली, कीट्स इत्यादि कवियों से प्रेरणा ग्रहण करने की बात की है। 'शिल्प और दर्शन' के पर्यालोचन में पंत ने लिखा है—"शैली, कीट्स और टेनीसन आदि अंग्रेजी कवियों से मैंने बहुत सीखा है। मेरे मन में शब्द चयन और ध्वनि-सौन्दर्य का बोध हुआ।" यही कारण है कि पंत का मूल्यांकन करते समय जहाँ उनके काव्य की तुलना प्रसाद, निराला इत्यादि हिन्दी कवियों से की जाती है, वहीं इनके काव्य को शैली, कीट्स, टेनीसन तथा वर्ड्सवर्थ के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाता है। यहाँ प्रथम भारतीय तथा तत्पश्चात् पाश्चात्य कवियों के साथ पंत के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा।

पंत और प्रसाद—छायावाद के प्रवर्तक [illegible] कवि प्रसाद [illegible] हैं, जो [illegible] जाता है। प्रसाद ने जिस [illegible] किया, [illegible]। [illegible] दोनों ही प्रेम और सौन्दर्य के कवि हैं। [illegible] दोनों कवियों की [illegible] है। [illegible] प्रसाद [illegible] और [illegible] [illegible] प्रकृति के [illegible] है। प्रसाद [illegible] और [illegible] है।

[illegible] है।

[illegible]

वेदान्ती स्तर पर है, जीवन के प्रति आस्था पर निर्मित है। यही निराला का मूल्यगत और अप्रतिम प्रदेय है।"

पंत और महादेवी वर्मा—पंत और महादेवी दोनों के काव्य में ही प्रकृति के दो अलग-अलग रूप दिखाई देते हैं। पंत ने प्रकृति के मनोहारी रूप, सुकुमारता को अपने काव्य में चित्रित किया है तो महादेवी ने प्रकृति के माध्यम से पुरुष-पुरातन का रूप अंकित किया है। पंत और महादेवी में एक अन्तर है अवश्य और वह है—पंत उल्लास, क्रीड़ा एवं आनन्द के कवि हैं तो महादेवी वेदना एवं पीड़ा की कवयित्री हैं। पंत और महादेवी दोनों ने ही प्रकृति के व्यापक सौन्दर्य की सूक्ष्मताओं का उद्घाटन किया है। पंत के काव्य में कहीं-कहीं प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से रहस्योद्घाटन किया गया है, जबकि महादेवी के काव्य में रहस्यात्मकता प्रायः सर्वत्र मिलती है। भाषा की दृष्टि से पंत ने खड़ीबोली में रमणीयता का संचार किया है और महादेवी ने उसे माधुर्य-वेष्ठित किया है। पंत में भावों की विशदता है, महादेवी में हृदय की संक्षिप्तता, आकुलता है। महादेवी के काव्य की सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता गीतिकाव्य की रचना है। महादेवी की प्रशंसा में आचार्य शुक्ल का यह कथन ठीक ही है—'गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।" पंत और महादेवी के जीवन-लक्ष्य में एक अन्तर यह भी है कि पंत निरन्तर प्रगतिशील रहे हैं जबकि महादेवी ने आद्यान्त छायावादी काव्य की ही रचना की है। इसी प्रकार पंत जीवन में सुख के आकांक्षी हैं, महादेवी चिर दुःख को ही अपना साथी मानती हैं।

> विकसते मुरझाने को फूल, उदय होता छिपने को चंद,
> शून्य होने को भरते मेघ, दीप जलता होने को मंद,
> यहाँ किसका अनन्त यौवन, अरे अस्थिर छोटे जीवन।

पंत और वर्ड्सवर्थ—जीवन की विशालता को लेकर चलने वाले कवि वर्ड्सवर्थ मूलतः प्रकृति के कवि थे। वर्ड्सवर्थ की सबसे बड़ी विशेषता उनकी साधारणता थी। वे स्वच्छन्द एवं वासना की उद्दाम लालसा से रहित थे। उनकी कविताएँ अधिकांश में भावात्मक और आकर्षक हैं, किन्तु कहीं-कहीं

भी नहीं बच पाता है। वे एक ही क्षण में नवीन सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट हो उठते है और तत्क्षण ही उनकी प्रवण कल्पनायें और भावनाएँ उसे आवृत कर लेती हैं और तभी वह सौन्दर्य व्यापक और मार्मिक रूप में कोमल और मधुरतम शब्दों की समीचीन योजना के साथ अभिव्यंजित हो जाता है। व्यक्तित्व की दृष्टि से भी पंत और कीट्स में समानता है। जिस प्रकार पंत एकान्तप्रिय और प्रकृति से भीरु है, उसी प्रकार कीट्स भी जनभीरु कवि था। भाषा के प्रयोग में भी पंत और कीट्स ने कोमल शब्दावली का प्रयोग किया है। दोनों ने ही कर्कश शब्दों को भरसक दूर रखा है।

उपसंहार—पंत का काव्य हिन्दी साहित्य के विविध वादों एवं प्रतिक्रियाओं से सम्बद्ध रहा है। छायावाद की सुकुमारता, प्रगतिवादी यथार्थवादिता और आध्यात्मिक चेतना को एक साथ पंत के काव्य में देखा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी काव्य में सौन्दर्य चेतना एव अभिव्यंजना-कौशल की दृष्टि से पंत का काव्य मूर्धन्य है। भाषा के क्षेत्र में पत की सबसे बड़ी देन खड़ीबोली का परिष्कार है। शब्दों की अन्तरात्मा को पहचान कर उन्हें सही अर्थ बता देने का श्रेय पंत को ही है। किसी भी अन्य हिन्दी कवि का विकास इतनी तीव्र गति से नहीं हुआ, जितना पंत का। पंत के प्रथम काव्य-चरण में सौन्दर्य है तो द्वितीय चरण में यथार्थ की कठोरता तथा समाज-कल्याण की भावना। यही तो आगे चलकर विश्व संचालक में रम गयी है। इन तीनों चरणों में कवि ने पार्थक्य की अपेक्षा समन्वय को प्रस्तुत किया है। तीसरा रूप व्यापक धरातल पर अवस्थित है जिसके अन्तर्गत कवि का सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी उभरा है। कवि ने इसी तृतीय चरण के अन्तर्गत 'नवमानववाद' का प्रचार किया। कवि के शब्दों में, "इस युग के क्रान्ति विकास सुधार जागरण के आन्दोलनों की परिणति एक नवीन सांस्कृतिक चेतना के रूप मे होना अवश्यम्भावी है जो मनुष्य के पदार्थ, जीवन मन के सम्पूर्ण सतरों का रूपान्तर कर देगी तथा विश्व के प्रति उसकी धारणा बदल देगी।·········जनतन्त्रवाद की आन्तरिक परिणति को ही अन्त-र्चेतनावाद अथवा नवमानववाद कहता हूँ।" सम्पूर्ण विवेचन को निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पंत का काव्य युग धर्म का काव्य है, जो अपने को परिवर्तित परिस्थितियों में बदलता रहा है।

······ ·····

प्रकृति का मोह तोड़कर, तुम्हारी इस केश-राशि में उलझा दूँ। क्या तुम समझती हो मेरे लिए यह सब सम्भव होगा ?

माना कि तुम्हारी कुटिल, बंकिम भौंहों के वाणों के समक्ष कोई नहीं ठहर सकता, परन्तु इस प्रकृति की तरल किरणों रूपी तरंगो की ओर तो देखो, इस इन्द्रधनुषी छटा को तो तनिक निहारो ! क्या मैं इस सबका त्याग करके तुम्हारे कटाक्षों से अपना सरल, कोमल, सौन्दर्य—प्रकृति सौन्दर्य पर मुग्ध मृग-सा हृदय बिंधवा दूँ, और अभी से इस प्रकृति को सुषमामय, शान्त और पवित्र जगत् को विस्मृत कर दूँ। ऐसा क्योंकर हो सकता है ?

विशेष—(१) कवि का प्रकृति-प्रेम यहाँ व्यक्त हुआ है। वस्तुतः यह कवि के काव्य-विकास का प्रथम सोपान है, जो उसकी अल्मोड़ा के अप्रतिम सौन्दर्य की सूक्ष्म पहचान के साथ जुड़ा हुआ है।

(२) सौन्दर्य-प्रतिभा (बाला) के बाल-जाल से कवि सघन-वृक्षों की छाया और कुटिल भ्रू-भंगों से कुटिल-अर्द्धवृत्ताकार इन्द्रधनुष को अधिक सुन्दर बताता है। तुलना के उपमानों का अनायास चुनाव सुन्दर बन पड़ा है।

(३) 'बाले' सम्बोधन साभिप्राय है। नारी की आर्य-कोमलता स्वयमेव उद्भासित हो उठी है। सम्भवतः उसकी कोमलता उभारकर ही कवि प्रकृति-प्रेम की अतिशयता का परिचय देना चाहता है।

(४) **अलंकार**—(i) तजकर तरल तरंगों को—अनुप्रास।
(ii) मृग सा-मन—उपमा।

कोयल का वह.. इस जग को।

शब्दार्थ—मधुकर=भ्रमर। सस्मित=सहास्य, मन्द मुस्कान। अधरामृत=अधरों का अमृत। सुधा-रश्मि=चन्द्र किरणें।

प्रसंग—पूर्व पंक्तियों में कवि मन एवं नेत्रों के आकर्षण की वस्तुओं का वर्णन ही करता है। उसका दृष्टिकोण प्रकृति-विषयक अतिशय प्रेम को व्यक्त करता है। परन्तु, उसके लिए मात्र मनज एवं नेत्रज वस्तुएँ ही तो सबकुछ नहीं। इनसे इतर श्रवण एवं स्पर्श भी तो आकर्षण है। प्रस्तुत पंक्तियों में इन्हीं भावों को व्यक्त किया गया है।

व्याख्या—हे सौन्दर्यमयि ! तेरे प्रिय स्वर की मधुरिमा से खिंचकर कोई भी युवा-हृदय स्थिर हो सकता है। किन्तु, जरा कोयल का वह कोमल गान तो सुनो—कैसे पंचमस्वर में गा-गाकर सम्पूर्ण प्रकृति-परिवेश को एकतान किए

(४) चित्रोपम कल्पना का सुन्दर उदाहरण है।
(५) अलंकार—(i) मधुकर की वीणा—रूपक।
(ii) किसलय दल—पुनरुक्ति वदाभास।

—०—

विनय

कविता-परिचय—'विनय' कविता का रचना-काल जनवरी, सन् १९१८ है। यह प्रार्थना-परक कविता है, और कवि पंत की आरम्भिक कविताओं में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस कविता में कवि ने माता सरस्वती के प्रति अपने भावभीने श्रद्धा-सुमन समर्पित किए है। कविता भावप्रधान और स्वाभाविकता से ओतप्रोत है तथा भाषा-शैली का निखरा हुआ रूप भी इसमें दृष्टिगोचर होता है।

मां मेरे जीवन की..........................विनय है बारम्बार।

शब्दार्थ—मंजुल=कोमल। रति=शृंगार-भाव। कृति=रचना। भूरि=सांसारिक।

प्रसंग—प्रस्तुत कविता में कवि माँ सरस्वती की वंदना कर रहा है। सरस्वती के प्रति उसका समर्पण भाव इतना गहन है कि वह समस्त सफलताएँ उसकी अनुकम्पा मानता है और समस्त पराजय अपनी समझकर, नैवेद्यार्पण कर देता है।

व्याख्या—कवि विनय करते हुए कहता है—हे माँ सरस्वती! मेरे जीवन की पराजय तुम्हारे हृदय का कोमलहार बन जाये, इसी भाव के साथ आज अपने इन अश्रुकणों का उपहार तुम्हारे चरणों में रख रहा हूँ। पराजय भाव के कारण गलित अश्रु ही अब मेरा नैवेद्य है। मां मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे जीवन की सफलताएँ, तेरे मस्तक का उज्ज्वल, श्रम के कारण निकले स्वेद के कणों से सिक्त मोतियों का अलंकार बन जायें।

हे मां! मैं नमन कर इच्छा रखता हूँ कि मेरे समस्त साँसारिक दुखों का भार तेरे हृदय की इच्छा का फल हो, जिससे मेरा हृदय पवित्र हो सके, मेरा भौतिक शरीर उन दुःखों की आग में तपकर कुन्दन बन सके। मेरे समस्त शृंगार, गीत रचनाएं, व्रत और व्यवहार तेरी आशा के शृंगार का रूप हों अर्थात् तेरे सुन्दर भाव ही कर्मों में झलक पड़ें। हे माँ, मेरी यही प्रार्थना है

ने रात्रिकालीन दृश्यों को चित्रित करते हुए अपनी प्रतिभा और कल्पना का परिचय दिया है।

प्रथम रश्मि का..............................उसका आना।

शब्दार्थ—रश्मि=किरण। रंगिणी=आनन्द मग्न रहने वाली। विहगिनी=पक्षिणी। नीड़=घोंसला। कामरूप=इच्छानुसार रूप धारण करने वाले। नभचर=आकाशचारी; पक्षी। नवल=नवीन। मृदु=कोमल। अवनि=पृथ्वी।

प्रसग—प्रभातकाल में कोयल की मधुर आवाज सुनकर कवि आश्चर्यचकित हो जाता है कि सारा संसार शांति में सोया हुआ था; स्वयं कोयल भी अपने घोंसले में सुख-निद्रा का आनन्द ले रही थी, फिर यह अचानक क्यों बोल उठी है। प्रभात होने की पूर्ण सूचना इसे कैसे मिली है? इसी जिज्ञासा में कवि एक दृश्य की अवतरणा करते हुए पूछता है कि आनन्दमग्न रहने वाली बाल पक्षिणी कोयल को प्रथमकिरण के उदय की पूर्व सूचना किसने दी है? जिस मधुर स्वर में वह गाती है वह स्वर उसे कहाँ से मिला है?

व्याख्या—कोयल तो अपने पंखों में सिमटकर घोंसले में सो रही थी। वह तो अपने ही सपनों में, भावों में खोई हुई थी और घोंसले के बाहर अपार सौन्दर्य विकीर्ण था। उनके जुगनू घोंसले के चारों ओर पहरेदारों की तरह घूम रहे थे। चन्द्रमा की कोमल किरणों के सहारे धरती पर उतर कर आकाशचारी पक्षी, जो अपनी इच्छानुसार रूप बदल सकते है अथवा आकाशचारी देवताओं के सौन्दर्य से आपूर्ण कोमल तितलियाँ नवीन, कोमल कलियों का मुख चूम-चूमकर उन्हें मुस्कराना सिखा रहे थे। चारों ओर अपार सन्नाटा व्याप्त था। आकाश में तारों के दीपक, जिनमें तेल नहीं अथवा जिन्हें स्नेह प्राप्त नहीं हुआ, जल रहे थे; वृक्षों के पत्ते भी थमे हुए थे और सम्पूर्ण चेतन जगत अपने स्वप्नों की मोहकता-मादकता में निमग्न था। चारों ओर अंधकार व्याप्त था; ऐसे शान्त, शून्य, एकान्त वातावरण में कोयल किसी के स्वागत के लिए अचानक कैसे कूक उठी है; उस अन्तर्यामिनी को विश्व के कण-कण में व्याप्त और भावी परिवर्तन का ज्ञान कैसे हुआ? रात्रि के पश्चात् दिन का होना तो स्वाभाविक ही है किन्तु पंत जी ने उस रात्रि का अत्यन्त भावमय चित्र उपस्थित करके अपनी जिज्ञासा और कल्पना का अत्युत्तम स्वरूप इस पद्यांश में प्रस्तुत किया है।

ोना से आकर्षक षड्यन्त्रों की सृष्टि कर रहे थे। राक्षसी माया का विस्तार
था और दूसरी ओर शशि-वाला रात्रि भर यात्रा करते हुए थक रही
सके मुख से शोभा और कान्ति क्षीण हो रही थी। कमल की पंखुड़ियों में
ा भ्रमर भी दुःखी हो रहा था और अपनी प्रियतमा से बिछड़ा हुआ प्रेमी
शोकाकुल हो रहा था। सम्पूर्ण संसार एकदम शान्त और स्तब्ध था।
ो कोई हलचल नहीं थी। जड़-प्रकृति और चेतन जगत् सभी उस अधंकार
रूप हो चुके थे। संसार की इस जड़ता अथवा शून्यता में केवल हृदय की
धि का आभास श्वाँसों के आने-जाने से होता था। इस प्रकार निस्तब्धता,
अथवा जड़ता से भरे हुए वातावरण में हे बहुदर्शिनि ! नाना विषयों
ागत भविष्य की गतिविधि को पहचानने वाली कोयल तुमने ही तो सर्व-
जागृति का गीत गाया है। उस गीत का अनुकरण करती हुई प्रथम रश्मि
हुई जिसने चारों ओर शोभा, सरसता, सुगन्धि और आनन्द का ताना-
ूंथ दिया है।

शेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि के रात्रिकालीनदृश्य का जो चित्रण
है वह अनेक दृष्टियों से प्रभावाक है। सर्वप्रथम रात्रि से सम्बद्ध कुछ
ागत विश्वासों को कवि ने साहित्यिक सौन्दर्य दिया है। यह माना जाता है
क्षसी माया का प्रभाव रात्रि के समय अधिक होता है, इसीलिए उन्हें निशा-
म दिया गया है। भ्रमर कमल का रसपान करता हुआ रात्रि को उसी मे
जाता है। चकवा-चकवी का रात्रि में मिलन नहीं होता। इन परम्परागत
ों के अतिरिक्त कवि ने दार्शनिकता की भी पुट इसमें दी है। अज्ञानांध-
खोए हुए जीव को कुछ भी दीखता नहीं। माया जाल में मोहित होने
की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है। जीवित होने पर भी जीवन के लक्षण
न्द पड़ जाते है। जिस प्रकार पिछली रात में चन्द्रमा का सौन्दर्य या चमक
ो जाती है उसी प्रकार मानव-जीवन मे भी कुछ कमियां आ जाती हैं।
कार प्रकाश की एक किरण विश्व को नाना रूप और नाम में प्रकट करके
ल बना देती है उसी प्रकार ज्ञान की किरण निराशा, अज्ञान और
यता को समाप्त करके जीवन को सुख-समृद्धि से आपूर्ण बना देती है।
कार प्रकृति के प्रेम, सौन्दर्य और अपने दार्शनिक विचारों की समन्वित
वित करने मे कवि पंत को अपूर्व सफलता मिली है।

(२) कोमलकान्त पदावली के माधुर्य में कवि की कुछ अपनी मान्यताएँ

साथ ही सोई हुई दुनिया ने आंखें खोली। चारों ओर प्रभात की स्वर्णिम आभा फैल गयी। फूलों की सुगंधि फैली और उसका रसपान करने के लिए भ्रमर उन पर मंडराने लगे। प्रकृति के इस परिवर्तित रूप से, उनके कम्पन और प्रेमपूरित रूपों से जगत् ने नवजीवन के गुणों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया।

इस परिवर्तित दृश्य को देखकर कवि कोयल से पूछता है कि हे आनन्द-मग्न रहने वाली बाल पक्षिणी तुमने प्रथम रश्मि के आगमन का पूर्वाभास कैसे पाया ? वह स्वर्गिक माधुर्य से परिपूर्ण गीत तुमने कहाँ से पाये हैं ?

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रभातकालीन सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है। कवि ने प्रकृति के प्रत्येक अंग की जैसी अभिव्यक्ति की है। उसमें जड़ और चेतन दोनों का उत्तम समाहार किया गया है। दार्शनिक दृष्टि से अन्धकार को अज्ञान अथवा मृत्यु मान लिया जाय तो कवि ने यह स्पष्ट किया है कि मृत्यु के पश्चात् जीवन, अंधकार के बाद प्रकाश तथा अज्ञान के बाद ज्ञान की उपलब्धि होती है। इसकी गतिविधि को जानने वाला जो भी दार्शनिक अथवा विचारक होता है उसके प्रति अन्य लोगों की जिज्ञासा तथा श्रद्धा का बढ़ना भी नितान्त स्वाभाविक है। इस प्रकार जीवन और जगत् सम्बन्धी भारतीय दर्शन को वाणी देने के साथ-साथ पंत जी ने प्राकृतिक सौन्दर्य की अवतारणा भी कुशलता से की है। अन्तिम पक्तियों मे कवि यह भी सकेत कर देता है कि प्रकृति ही वास्तव में जीवन की प्रेरक अथवा मार्गदर्शक है। इस प्रकार छायावादी सौन्दर्य और रहस्यवादी चिन्तन का मधुर समन्वय इसमें हो सका है।

(२) भाषा चित्रात्मकता, वाग्विदग्धता एवं लाक्षणिक प्रयोगों से युक्त है।

(३) अलंकार—(i) 'निराकारतम···नाना'—उत्प्रेक्षा।
,, (ii) 'स्पन्दन, कंपन औ 'नवजीवन'—अनुप्रास।
(iii) 'पुलकित हो द्रुमदला'—मानवीकरण।
(iv) 'सुप्त समीरण'—मानवीकरण।

पर्वत प्रदेश में पावस

कविता परिचय—'पर्वत प्रदेश में पावस' कविता की रचना सन् १९२१ में हुई थी। उस समय छायावादी काव्यधारा पूर्ण विकसित अवस्था को प्राप्त कर रही थी। छायावादी काव्य को सौंदर्य, कोमलता, कमनीयता एवं माधुर्य

सौंदर्य पर रीझ कर प्रत्येक व्यक्ति उसे उत्सुकता से देखना चाहता है। खिले हुए पुष्पों को दृग फाड़कर देखने की उपमा देने से उत्सुकता, आश्चर्य आदि भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

(३) अलंकार—(i) 'पल पल···वेश'—अनुप्रास और पुनरुक्ति प्रकाश।
(ii) मेखलाकार···महाकार—रूपक और मानवीकरण।
(iii) दर्पण-सा फैला—उपमा।

गिरि का गौरव······························ कुछ चिन्ता पर।

शब्दार्थ—मद=मस्ती। निर्झर=झरना। तरुवर=वृक्ष। अनिमेष=एकटक।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने पार्वतीय सौदर्य का चित्रण करते हुए उसकी गत्यात्मकता को शब्दबद्ध किया है। प्राकृतिक उपकरणों से मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हुए कवि वातावरण की सजीवता, प्रभावोत्पादकता को साकार करने का प्रयत्न करता है।

व्याख्या—अपने सौदर्य, उच्चाशयता में विमोहित पर्वत में स्थान-स्थान पर झरने कल-कल गान करते हुए बहते हैं और उसके प्रत्येक अंग में मादकता भर रहे है। वह झागभरे झरने ऐसे प्रतीत हो रहे है जैसे वह सुन्दर मोतियों की लहरें हों। पर्वत शिखरों पर खड़े हुए ऊँचे-ऊँचे वृक्ष शून्य आकाश की ओर देख रहे है। जैसे उच्चाकांक्षाओं से आपूर्ण व्यक्ति का मन सदा अपने लक्ष्य की ओर देखता रहता है। वह बिना किसी अन्य की ओर आंखें उठाये पूर्णतया निमग्न होकर अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे लगा देता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पंक्तियों में पंत जी ने प्राकृतिक सौदर्य का चित्रण करते हुए उसमे मानवीय भावनाओं की झलक दिखाने का प्रयास किया है। पहले पद्यांश मे पर्वत की स्थिरता का चित्रण था; किन्तु इसमें उसके अंग-प्रत्यंगों से मानवीय भावों का चित्रण किया गया है। झरनों की ध्वनि में पर्वत का गौरवगान, उनके प्रवाह से नस-नस में मस्ती का झरना और पर्वत शिखरों पर मूक खड़े वृक्षों को महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक आदि में कवि की कल्पना और चित्रण शैली का वैभव दर्शनीय है।

(२) अलंकार—(i) गिरि का गौरव गाकर झर झर—अनुप्रास।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में प्रकृति-चित्रण अनेक दृष्टियों से महत्त्व-पूर्ण है। पार्वतीय प्रदेश मे प्राय: बादल अतिशीघ्रता से आकर बरस जाते हैं। बादलों में घिर कर पर्वत, वृक्ष, पुष्प, झरने आदि का लुप्त हो जाना भी वहाँ का सहज रूप प्रस्तुत करता है। नगरों में ऊपर का वातावरण ही आवृत होता है लेकिन किसी पर्वत शिखर पर खड़े होकर देखे तो ऊपर-नीचे केवल बादल अथवा वर्षा ही दिखाई देती है। इस प्रकार अम्बर का टूट पड़ना, वृक्षों का धंस जाना, धुंआ उठना अथवा तालाब में आग लगना आदि के जिन व्यापारों का चित्रण हुआ है वे स्वाभाविक और आकर्षक है।

(२) पहली दो पंक्तियों की शब्द-योजना गति और ध्वनि का अपूव साम्य प्रस्तुत करती है। 'फड़का अपार बादल के पर' मे कवि ने पक्षी के आकार को पूर्णतया प्रकट करने वाले शब्दों का प्रयोग किया है।

(३) कविता के पहले भाग में कोमल, सरस एव भावात्मक रूप का प्राधान्य था, किन्तु प्रस्तुत पद्याँश में प्रकृति के कठोर और भयानक रूप का चित्रण भी अभूतपूर्व है।

(४) अन्तिम पंक्ति में बालिका के अबोध भोलेपन की अभिव्यंजना अपनी सूक्ष्मता और सरसता के कारण आकर्षक हो गयी है।

(५) प्रस्तुत पद्याँश में अनुप्रास अलंकार सहज प्रयोग हुआ है।

इस तरह मेरे..............................मनोरम मित्र थी।

शब्दार्थ—चितेरे=चित्रकार। चमत्कृत=चमत्कार उत्पन्न करने वाली। शैशव=बचपन।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्याँश में कवि ने प्रकृति के साथ अपने रागात्मक सम्बन्ध और उसकी मूल प्रेरक शक्ति का सांकेतिक स्पष्टीकरण किया है। प्रकृति की सुखद गोद में विचरण करते हुए कवि को किसी भोली-भाली बालिका का साथ मिला था, उसी के बचपन की सुखद स्मृतियों को प्रकट करते हुए कवि कहता है—

व्याख्या—वह बालिका, जो अपने सरल, सात्विक, भोलेपन मे पर्वत को बादलों का घर कहा करती थी, उसी से प्रेरित इस भावुक और चित्रकार हृदय के लिए प्राकृतिक सौंदर्य-सुषमा का यह बाह्य रूप एक लुभावने, आकर्षक चित्र के समान हो गया। जिस प्रकार प्रकृति का चित्रण सुखद और

आनन्ददायक है, उसी प्रकार मेरे बचपन की सुखद स्मृतियों के समान भोली-भाली वह बालिका मेरी मित्र थी।

विशेष— (१) 'सरला' बालिका की स्मृति से अपनत्व की अभिव्यक्ति कविता की मार्मिकता में वृद्धि करती है। इससे दोनों सात्विक, पवित्र तथा छल-कपट रहित तथा शुद्ध प्रेम का भी संकेत मिलता है। जीवन में सबसे पवित्र और याद आने पर व्यक्ति को तन्मय बनाने वाली अवस्था शैशव ही होती है। उस शैशव की स्मृति के कारण ही कवि का प्रकृति चित्रण भावप्रवणता में उत्तम हो गया है।

(२) **अलंकार**—(i) सरल शैशव ''सुधि-सी—उपमा।
(ii) मेरी मनोरम मित्र—अनुप्रास।

आँसू की बालिका

कविता परिचय—'आँसू की बालिका' कविता पंत जी के 'आँसू' कविता का ही एक अंश है। इसकी रचना सन् १९२२ में हुई थी। 'आँसू' से पूर्व वीणा, ग्रन्थि और उच्छ्वास का प्रकाशन हो चुका था। प्रकृति सुषमा और सौकुमार्य का चित्रण करने के पश्चात् कवि ने नारी-सौन्दर्य की मादक अनुभूतियों का भी चित्रण किया था। 'वीणा' काल का विस्मय मुग्ध कवि प्रेमानुभूति की सरसता तथा वियोग की कातरता से भी परिचित हो चुका था। यही कारण है कि आँसू को कवि का गीला गान भी कहा गया। इसमें सांसारिक पीड़ा और दुःख का अद्भुत प्रतिपादन हुआ है। छायावादी युग के कवि ने शृंगार वर्णन में शारीरिक कोमलता की अपेक्षा भावात्मक सूक्ष्मता को महत्त्व दिया था। उस अशरीरी, भावप्रधान अनुराग की अभिव्यक्ति ही प्रस्तुत कविता में की गयी है। इसमें नारी विषयक भावों को उद्घाटित करते हुए कवि ने पूर्ण संयम तथा उदात्त भावना का परिचय दिया है। नारी-विषयक तथा प्रेम-विषयक मान्यताओं का अत्युत्तम स्वरूप प्रस्तुत कविता में व्यक्त हुआ है। कवि ने नारी में सभी उदात्त गुणों का समन्वय दिखाते हुए उसे संसार की अनुपम विभूति माना है। उसके वियोग में बच्चों की तरह रोता हुआ कवि का विधुर

एक वीणा की································लहरों का गान।

शब्दार्थ—मृदु=कोमल। प्राण=जीवन। पावन=पवित्र। त्रिवेणी=गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि प्रेयसी के अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण करते हुए उसमे दिव्यता, सुकुमारता, पावनता आदि गुणों का समन्वय प्रस्तुत करता है और कहता है।

व्याख्या—हे कल्याणि! तुम्हारी वाणी वीणा की मृदु झंकार के सदृश है। जिस प्रकार वीणा की झंकार मधुर और कोमल होती है उसी प्रकार तुम्हारी वाणी भी सरस और कोमल है। तुम्हारा सौन्दर्य अपार है, असीम और अकथनीय है। भाव यह है कि वह नायिका इतनी सुन्दर है कि कवि उसकी सुकुमारता सुषमा को ठीक प्रतिबिम्बित करना भी असम्भव मान लेता है। संसार में कोई दर्पण भी उसे साकार दिखाने की क्षमता नही रखता। प्रेयसी के प्रेम और सौन्दर्य को वह अपना प्राणाधार स्वीकार करता है। प्रेयसी को छूने में प्राण-शक्ति प्राप्त होती है और उसका साहचर्य ऐसा ही पवित्र शान्तिदाता है, जैसे तीर्थराज प्रयाग में गंगा स्नान है। प्रेयसी शारीरिक अथवा भौतिक कलुष से कहीं ऊपर है, वह तो जीवन की कल्याणि शक्ति है, उसकी वाणी के माधुर्य में त्रिवेणी की लहरों के कलगान के समान जीवन के प्रेरक स्वर ही गूँजते हैं।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में छायावादी सौन्दर्यभावना का पूर्ण प्रतिपादन हुआ है। रीतिकाल में विलासिता प्रधान संस्कृति के कारण नारी के नख-शिख का वर्णन करना ही कवि का लक्ष्य होता था, किन्तु छायावाद में ऐन्द्रिय सौदर्य की अपेक्षा भाव सौन्दर्य को प्रमुखता दी जाती थी। प्रस्तुत पंक्तियों में भाव-सौन्दर्य का वर्णन अपनी सूक्ष्मता, अतीन्द्रियता के कारण विशेष आकर्षक बन गया है।

(२) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने भारतीय जीवन, प्रकृति और संस्कृति में सुख, आनन्द एवं पवित्रता के मान्य प्रतीकों को प्रेयसी के स्वरूप में देखने का सफल प्रयास किया है। वीणा माधुर्य, गंगा स्नान की शीतलता, पावनता तथा त्रिवेणी की लहरों मे भारतीय जीवन-दर्शन का उदात्त आदर्श-समन्वयात्मकता, उदारता, लोक-कल्याण आदि उदात्त जीवन-मूल्यों का उल्लेख होने के कारण प्रेयसी का स्वरूप अधिक व्यापक और प्रभावी बन गया है।

अपरिचित चितवन·························तुम स्वर्ग पुनीत ।

शब्दार्थ—अपरिचित=अनजानी । सुधामय=अमृत से भरा । उपचार=इलाज । चेष्टाओं=क्रिया, प्रयत्न । शैशव=बचपन । श्रवण=कान । दुराव=छिपाव । आवास=निवास । मुकुद=कमल । भास=अनुमान । अखिल=सम्पूर्ण । पुनीत=पवित्र ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि पंत ने प्रेयसी के अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण किया है । प्रारम्भ से ही प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा से प्रेरित होने के कारण पंत जी जीवन की सभी भावनाओं को प्रकृति के आधार पर परखते हैं । प्रेयसी के शरीर, मन, प्राण तथा उसकी चेष्टाओं को कवि नेप्रकृति के माध्यम से ही देखा तथा परखा है । कवि जीवन का विकास इस तथ्य को और भी पुष्ट करता है । अतः प्राकृतिक उपकरणों के रूप-गुण सादृश्य का प्रेयसी में समाहार ही प्रस्तुत पंक्तियों में किया है ।

व्याख्या—प्रेयसी के गुणों का स्मरण करता हुआ कवि कहता है कि उसकी अपरिचित चितवन, जिसका पहले कुछ भी परिचय नहीं था, प्रभातकाल के समान अनुराग, उल्लास और उत्साह को जगाने वाली चिर-परिचित-सी चितवन थी । सुगधित श्वांसों का सामीप्य संतप्त जीवन का सर्वोत्तम उपचार था । उनके स्पर्श मात्र से अनेक प्रकार की पीड़ायें शमित हो जाती थीं । प्रेयसी की छाया पाकर जैसे भटके हुए जीवन यात्री को आधार मिल जाता और उसकी भावपूर्ण चेष्टाओं, अंग-प्रत्यंग परिचालन जीवन को कितना सुखमय बना देते, उसका उल्लेख नहीं हो सकता । प्रेयसी की करुणा पूरित भौहों में घिरी हुई आँखों की अपार नीलिमा, गहनता और चमक में कवि को आकाश की व्यापकता दृष्टिगत होती है । उसकी मधुर मुसुकान इतनी सरल सात्विक तथा शान्तिप्रद है जैसे उसमें शैशव के सभी गुण समाहित हों । उसी की आँखों के आकर्षण और अनुराग में ही तो कवि का प्रेम साकार हुआ था । इस प्रकार के आकर्षण-मोहकता आदि से युक्त प्रेयसी का वर्णन शब्दों में तो सभव नहीं, कवि उसके प्रत्येक अंग, हाव-भाव आदि का सांकेतिक एवं विदग्धतापूर्ण चित्रण करते हुए कहता है कि उसका अन्तर्बाह्य समान रूपी है । मन के कोमल भावों की सहज झलक उसके गालों पर स्पष्ट झलकती है । कपोलों की कोमलता, लालिमा, स्निग्धता—सभी में अनुराग के तत्त्व की ही अभिव्यक्ति है । उसके कान और नेत्र भी परस्पर प्रिय बर्ताव करते है । नायिका प्रिय की

बातों की उपेक्षा नहीं करती और न ही उपेक्षा भरी दृष्टि से उसे देखती है। यह सब होकर भी उसमें नारी-सुलभ सहज संकोच का अभाव नहीं, उसके प्रत्येक संकेत में संकोच का समावेश और अधरों पर कुछ बात आती है, फिर सहज माधुर्य में उसे छिपाया जाता है। मन की बात प्रकट न करने का सहज संकोच उसके मन की मधुरता को ही सहज प्रकट करती है।

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने प्रेयसी के सौन्दर्य, सद्गुण और सद्व्यवहार की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक उपमानों को प्रमुखता दी है। प्रेयसी के हृदय में अनुराग की सात्विकता का निवास था। जिस प्रकार उषा में सरलता, लालिमा, जीवन-दायी शक्ति, तत्परता निहित रहती है उसी प्रकार के गुण उसके हृदय में थे। उसका कोमल मुख जैसे पूर्ण कमल की तरह ही खिला हुआ था। उसका स्वभाव सहज शांति और शालीनता से परिपूर्ण और चाँदनी के समान सब को आकृष्ट करने की क्षमता से युक्त था और जिस प्रकार एक बच्चा भोले-भाले सरल बचनों में बातें करता है उसी प्रकार प्रेयसी की विचारधारा सरलता से परिपूर्ण थी। सभी प्रकार के गुणों का गान करने के पश्चात् कवि उसे अनिर्वचनीय मान लेता है। वह एक में अनेक, बिन्दु में सिंधु, व्यक्ति में समष्टि के गुणों का साकार स्वरूप थी, जिसके एक-एक स्वर में सम्पूर्ण संगीत समाया हुआ था, धरती का वह पवित्र स्वर्ग ऐसा था जैसे एक कली में ही वसंत ऋतु का सर्वांगीण सौन्दर्य समाया हुआ था।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रेयसी के प्रत्येक गुण को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है। कवि पंत का प्रकृति से जन्मजात सम्बन्ध है, उनकी निरीक्षण शक्ति और विधायनी शक्ति ने प्राकृतिक सौंदर्य और मानवीय सौंदर्य को कितनी निकटता, सूक्ष्मता और सर्वांगीणता से देखा तथा चित्रित किया है, इसका उदाहरण प्रस्तुत पद्यांश की प्रत्येक पंक्ति प्रस्तुत करती है।

(२) नायिका के नख-शिख का वर्णन करने की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन है किंतु पंत जी ने उसमें मूलतः परिवर्तन कर दिया है। पूर्ववर्ती कवियों ने नख से शिख अथवा शिख से नख तक का वर्णन करते हुए नायिका के अंग-प्रत्यंग का अनेकविध चित्रण किया था, किन्तु एक बात में प्रायः सभी एक थे, नारी शरीर के बाह्य चित्रण करने में। रीतिकालीन कवियों को तो अधिकतर वासना-उत्तेजित करने वाला ही चित्र उपस्थित करना उचित लगता था। पंत जी ने बाह्य रूप की अपेक्षा भाव-सौन्दर्य को प्रमुखता दी है।

(३) शब्द-चयन की दृष्टि से भी यह कविता पूर्णतया सफल है। समास पद्धति में कोमल कान्त पदावली का प्रयोग करते हुए कवि द्वारा शरीर और भाव-सौन्दर्य का चित्रण 'करुण भौंहों में था आकाश,' 'श्रवण-नयनों में प्रिय वर्तात्र', 'मृदुल अधरों में मधुर दुराव' तथा 'बिन्दु में थी तुम सिंधु अनन्त' आदि पंक्तियों में दर्शनीय है।

(४) प्रस्तुत पद्यांश में उल्लेख तथा अनुप्रास का अलंकार का प्रयोग किया गया है।

विधुर उर के..............................करता हूँ मान।

शब्दार्थ—विधुर=वियोगी। दृगद्वार=पलक। असहाय=वेसहारा।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश मे कवि ने अपने मन की विरह जन्य और अभाव-प्रतिक्रिया को व्यक्त किया है। पहले भाग में प्रेयसी के अद्वितीय सौन्दर्य का चित्रण करने के पश्चात् उसकी स्मृति और अपनी व्यथा का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या—प्रियतमा को सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है कि हे सुकुमारि! मै अपने उदास और वियोगी हृदय की कोमल भावनाओं से प्रतिदिन तेरा शृंगार करता हूँ। जिस प्रकार कोई भक्त अपनी आँखों को बंद कर भगवान की आराधना करता है, उसी प्रकार मै भी अपनी आँखों के दुहरे द्वार बंद करके अर्थात् आँखों के साथ हृदय को बाह्य गतिविधियों से मोड़कर केंद्रित कर मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ। तेरे ध्यान में निमग्न होकर अपनी पलकों में ही तुम्हारा रूप स्मरण करता हुआ उसका अवलोकन करता हूँ। उस अपार रूप धन-राशि का रसास्वादन करते-करते मेरे वियोगी प्राणो में जो व्यथा उमड़ती है, वह अश्रुधारा बनकर प्रवाहित हो जाती है। ऐसी असहायावस्था में केवल तुम्हारी स्मृति ही मेरे पास रह जाती है और मै बालकों की तरह फूट-फूटकर रो उठता हूं। फिर न जाने किसी को अपना मानकर मैं पुनः मान करने लगता हूँ।

विशेष—(१) प्रेम और सौन्दर्य के प्रति छायावादी कवियों की अपनी ही मान्यताएँ है। पंत जी का नारी के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त प्रांजल, परिष्कृत और संयमित है। नारी-सौन्दर्य का वर्णन करने में वह ऐन्द्रियता से ऊपर उठ जाते है। उसी प्रकार विरह-व्यथा की व्यंजना मे भी शारीरिक प्रतिक्रियाओं को महत्व नहीं देते। प्रस्तुत पद्यांश में प्रेयसी के रूप में पावनता और संयम के

अतिरिक्त समर्पण का भाव उनकी विरह-वेदना को मार्मिक बनाते हैं।

(२) अलंकार—(i) 'विधुर उर', 'दुहरे दृग द्वार', 'पिघल पड़ते है प्राण'—अनुप्रास।

(ii) 'बालकों-सा'—उपमा।

मूंद पलकों में..............................गाएँगी सर्वदा।

शब्दार्थ—मूंद=बंदकर। आह्वान=बुलावा। त्रिभुवन=संसार। श्री=शोभा। प्रेयसी=प्रेमिका। भग्न हृदय=टूटा हुआ दिल। अनिल=वायु। मधुप=भ्रमर। सर्वदा=हमेशा।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि पंत ने वियोगी हृदय को आश्वासन देकर अपने प्रेम की चिरन्तनता को व्यक्त किया है।

व्याख्या—किसी की अपरिचित चितवन और सहज प्रेम तथा सरलता से प्रेम भावना विकसित हुई थी किन्तु उसके वियोग में विधुर उर को वेदना-जन्य आँसू बहाने पड़े थे। अपने प्रेमाधार के ध्यान में मग्न कवि हृदय को समझाता है कि प्रियतमा के ध्यान में पलकों को बंद कर लो, बाह्य संसार के आकर्षण-आह्वान से अपने को अलग करके केवल उसी के सौन्दर्य का स्मरण करो; क्योंकि प्रेयसी के अभाव की रिक्तता को सम्पूर्ण संसार का सौन्दर्य-वैभव और शोभा भी भरने में असमर्थ है। हे भग्न हृदय! तुम्हारी आँखों से निकलने वाले चमकीले आँसू रूपी सुमनों में उसकी स्मृति जन्य व्यथा सदा निवास करेगी। तेरे वेदना भरे अश्रुओं से जो भाव-पुष्प खिलेंगे, वायु उनके आँसू पोंछेगी और मधुप-बालिकाएँ उनका रसपान कर सदा सर्वदा प्रेमगीत गायेंगी। जिस प्रकार उसका सौन्दर्य और प्रेम कवि ने अलौकिक, दिव्य तथा चिरन्तन माना उसी प्रकार उसके वियोग को भी शाश्वत मानकर कवि अपने मन को सान्त्वना देने का उपक्रम करता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में प्रेम की महानता, व्यापकता तथा चिरन्तनता का सहज किन्तु मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है। प्रियतमा के वियोग में वाह्य सौन्दर्य से अन्तः सौन्दर्य की ओर हृदय को प्रेषित करने में कवि के अतीन्द्रिय प्रेमाभाव का दर्शन होता है।

(२) वियोगजन्य व्यथा में प्रकृति द्वारा वेदना शांत होने का वर्णन एक ओर कवि के प्रकृति प्रेम का द्योतक है तो दूसरी ओर हृदय को आश्वस्त करने

के लिए प्रकृति की करुणा का संकेत मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

(३) इस पद्यांश में छन्द परिवर्तन करने से भावप्रवाह, रोचकता तथा उसकी मार्मिकता में अभिवृद्धि हुई है। ऐसा लगता है कि कवि अपने मन को जैसे दुलार कर शांत कर रहा हो। शब्द-चयन में भावानुकूलता और ध्वन्यात्मकता का संयोग कवि-कौशल की सफलता व्यक्त करता है।

'आँसू' से

कविता परिचय—'आँसू' से कविता कवि पंत के 'पल्लव' नामक काव्य-संकलन में प्रकाशित 'आँसू' कविता का एक अंश है। इस कविता का रचना-काल सन् १९२२ है। इस कविता में कवि ने विरह को जीवन का वरदान माना है और उसी में सुखानुभूति की है। इस कविता के विषय में एक आलोचक ने लिखा है—"लगता है पिछली तीन रचनाओं—स्नेह (पल्लव), उच्छ्वास की बालिका (पल्लव) और आँसू की बालिका से इसका सम्बन्ध है। पंत जी का हृदय कोई बालिका ले गई। वह उसके दीदार के लिए तड़फता रहा, याद में आँसू बहाता रहा, रूँठता-मनाता रहा, पर उसके मन की व्यथा के बारे मे किसी ने भी तो नही पूछा। बालिका कवि के रग-रग में व्याप्त हो गई। पर यह दुःख भी इतना अधिक हो गया है कि स्वयमेव दवा बन गया। अब उसे विरह मे ही आनन्द आ निकला—दूसरा चारा ही क्या था?" अतः स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता प्रलम्भ शृंगार-प्रधान है।

विरह है अथवा..............................कविता अनजान।

शब्दार्थ—कसकसी=टीस भरती हुई; रह-रहकर वेदना देती हुई। अवसान=समाप्ति; अन्त। वियोगी=सांसारिक भोगों से विरक्त।

प्रसंग—प्रस्तुत कविता का सीधा सम्बन्ध 'उच्छ्वास की बालिका', 'आँसू की बालिका' और 'पर्वत प्रदेश में पावस' नामक कविताओं से है। इन्हीं कविताओं का विशद रूप 'ग्रन्थि' में मिलता है। कवि का हृदय कोई बालिका ले गई है। दर्शनाभिलाषी उसके प्रेम में व्याकुल है, आंसू बहा रहा है, उसी की स्मृति में जी रहा है। वियोग इतना अनुभूतिमय हो गया है कि वह उससे आनन्द प्राप्त करने लगा है।

व्याख्या—कवि के मन में संशय है कि प्रेयसी से उसका वियोग विरह है

या वरदान का रूप धारण कर चुका है। उसकी स्थिति बड़ी विचित्र है। उसकी स्मृति में वे मधुर क्षण हैं, उनकी कल्पना उसमें कसकती हुई, रह-रहकर टीसने वाली वेदना भर देती है; इसी वेदना को झेलता-भोगता हुआ, सिसकता हुआ वह सोचता है कि मेरी कल्पना मे तो कसकसी वेदना है, मेरे आँसुओं में जीता हुआ, सिसकता हुआ गान ! किन्तु, विचित्र स्थिति है मेरी विरह के दुख में उच्छ्वासित् आहें मधुर छन्द बन जाती हैं और उनकी मधुर लय का कही अन्त नही होता। मेरी अनन्त वेदना अत्यन्त मधुर छन्दों को जन्म देती है।

वियोग प्रेम को भावमय बनाने की स्थिति है। हमारे कवि को भी वियोग ने इतना भावमय बना दिया है कि छन्द स्वयमेव निकलते चले जाते हैं। तभी उसकी कल्पना में ससार का प्रथम कवि घूम जाता है और वह सोचता है कि सम्भवतः संसार का प्रथम कवि भी कोई वियोगी होगा और उसकी वेदना-संकुल आहों से गान उपजा होगा। उसके गान भी उसके नेत्रों से चुपचाप, अनजाने वह निकले अश्रुओं मे उत्पन्न हुए होगे। उसकी वेदना, कसक और अश्रुओं ने अनजाने ही उसकी आहों को कविता में ढाल दिया होगा।

विशेष—(१) पद्यांश की अन्तिम चार पंक्तियां, काव्य-रचना के कारण अथवा काव्य-प्रयोजन के स्पष्टीकरण के लिए बहुधा उद्धृत की गयी है। पंत जी ने 'अनजाने' ही काव्य-प्रयोजन पर अपना मत दे दिया है। वस्तुतः 'दर्द की हद से गुजर जाना है दवा हो जाना।'

(२) 'वियोगी···अनजान'—पक्तियों का अर्थ आदि कवि बाल्मीकि से भी स्थापित किया गया है। आदि कवि ने स्वयं लिखा है—**'मा तिषाद प्रतिष्ठां त्वमगम शाश्वती समाः।'** व्याध द्वारा क्रौंच बध देखकर उसकी वेदना ने स्वतः कह दिया—'मा तिषाद···।' और इस प्रकार उसने संस्कृत के महानतम् ग्रन्थ 'रामायण' का सूत्रपात किया।

(३) 'वही होगी कविता' शब्द कवि की रचना-प्रक्रिया के द्योतक हैं। काव्य-रचना की नही जाती, हो जाती है। इसीलिए 'वही होगी' शब्द का प्रयोग है।

हाय किसके उर·························अश्रुकणों का हार।

शब्दार्थ—उर = हृदय।

प्रसंग—वियोग की टीस कवि के हृदय में विद्यमान है। वेदना उसकी

काव्य रचना हो जाती है। किन्तु, उसका एकाकीपन दूर नहीं होता। वह प्रेयसी की याद में रो उठता है।

व्याख्या—उसे चारों ओर सूनापन दिखाई देता है। कोई भी ऐसा नहीं जो उसकी व्यथा का भार बाँट ले! वह पुकारता है—किसे अपनी अन्तर्वेदना सुनाऊँ? कौन है यहाँ जिसे अपनी व्यथा सुना-सुनाकर अपने हृदय का भार हल्का कर लूँ। वेदना के कारण मेरे नेत्रों से अविरल अश्रु बह रहे है। इन अश्रुओं को हार वनाकर किसके गले में डालूँ? किसको यह वेदनामय उपहार भेंट करूँ?

विशेष—(१) वेदना की अनुभूति की तीव्रता में व्यक्ति अपने हृदय का भार अपने अन्तरंग के साथ बाँटना चाहता है। परन्तु कवि अकेला है, इसलिए अपना भार बाँट भी नहीं सकता। किन्तु कवि का यह भाव उसका अपना नहीं लगता। मूलभाव शैली (Shelley) की निम्न पंक्ति में आया है—

'Did any heart now spare in my emotion.'

(२) भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है।

मेरा पावस ऋतु-सा .... है असहाय।

शब्दार्थ—पावस=वर्षा ऋतु। मानस=मानसरोवर। कूजते=चिल्लाते; गाते।

प्रसंग—कवि को अपने अकेलेपन के कारण अपनी वियोग वेदना से छुटकारा नही मिल पाया। साहाय्य के लिए उठी पलकें अनुसंधान-रत ही रहती है और उसका हृदाकाश मेघ-संकुल हो जाता है। प्रस्तुत पंक्तियों में इसी भाव को व्यक्त किया गया है।

व्याख्या—मेरे हृदय की वेदना उसे सदा तरल किए रहती है। अश्रुओं के कारण मेरा जीवन वर्षा ऋतु का-सा हो गया है, जिसमें मेघ ही मेघ है, वर्षा ही वर्षा है; मेरा हृदय आकाश की भांति वेदना रूपी वादलों से आच्छादित है और मेरे नेत्रों के आगे का जीवनाकाश वही गहरे, धुंधलाए हुए, धुले हुए (श्वेत) और सांवले मेघों से ही भरा रहता है। उन बादलों का उठना ही प्रियतमा का स्मरण दिला जाता है। जिस प्रकार वर्षा ऋतु में मानसरोवर जल से परिपूर्ण हो जाता है, उसी प्रकार मेरा हृदय भी दुःखों से भर गया है। कभी मेरे हृदय में असंख्य मृदु भाव जन्म लेते हैं जो कोमल स्मृतियां और सुखमय क्षणों से जुड़े हुए है और पक्षियों के समान रव कर उठते हैं। उनका आर्त्त स्वर मेरी स्मृति

को और भी कचोट जाता है। कभी प्रिय की याद में हृदय के घाव, जो लालिमा लिए कोमल कलियों के समान है, उघड़ आते हैं और मेरी पीड़ा को बढ़ा जाते है। मैं असहाय उन्हें भोगने के लिए उपस्थित हूँ।

विशेष—(१) मानव-जीवन ससीम है। प्रकृति असीम है। पत जी ने जीवन और प्रकृति को पावस ऋतु की उपमा देकर एक कर दिया है और इस प्रकार वे अपनी पीड़ा को, अपनी वेदना को सम्पूर्ण प्रकृति में प्रसारित कर देते है। इस प्रकार कवि ने वेदना की तीव्रता और गहनता का आभास कराने का प्रयत्न किया है।

(२) अलंकार—(i) 'ऋतु-सा', 'मानस-सा', 'मेघों-से', 'विहगों-से', 'कलियों-से'—उपमा। (ii) 'धुंधले धुले'—अनुप्रास।

इन्द्र धनुष-सा ....तुम्हें निदान।

शब्दार्थ—इन्द्र धनु=इन्द्र धनुप। सेतु=पुल। अछोर=विना किसी किनारे के। तडित=विजली। गूढ=गम्भीर। निदान=अन्तिम रूप से।

प्रसंग—प्रस्तुत पक्तियों से पूर्व कवि अपने जीवन को पावस-ऋतु की उपमा दे चुका हैं। उसका हृदय दु.खों से इस प्रकार परिपूर्ण हो गया है, जिस प्रकार वर्षा मे सरोवर जल से भर जाता है। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि अपनी टूटन की प्रनुभूति करता हुआ अपने आशा-सेतुओं के आकाश मे अटक जाने की बात करता है।

व्याख्या—जिस प्रकार वर्षा ऋतु में वर्षा हो चुकने के बाद आकाश में इन्द्र धनुष चमक उठते है और क्षितिज के आर-पार एक सतरगे पुल का निर्माण कर देते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे मेरे जीवन से गुजर जाने के पश्चात् तुमसे पुनर्मिलन की आशा के पुल मेरे हृदय में उदित होते है। इन आशा-सेतुओं का भी कोई ओर-छोर नहीं है। मेरी आशा भी इन्द्रधनुष की भांति आधारविहीन है, जिसका पता नहीं कब टूट जाए—इसका दूसरा पक्ष एकदम नैराश्यमय है। वर्षा ऋतु का प्राप्य काला-धूमिल कुहरा भी है; यही मेरे जीवन का प्राप्य भी वन जाता है। वे आशा-सेतु टूट जाते है और हृदय में एक शून्य जन्म ले लेता है।

परन्तु वर्षा ऋतु में भी तड़ित का चमत्कार होता है। काले मेघ-संकुल आकाश में भी प्रकाश भर जाता है। इसी प्रकार मेरे जीवन में भी जब तुम्हारी स्मृति की तड़ित चमकती है तो उसका गहन, गम्भीर गर्जन करता हुआ आकाश

मेरे हृदय में प्रवेश कर क्षण भर के लिए उस जन्मे नैराश्य को दूर कर देता है और मुझे तुम्हारे दर्शन के लिए विकल कर देता है।

तुम्हारी वे स्मृतियां मुझे तीव्रता से सोचने को विवश कर देती है। तुम मेरे पास नही होती हो, इसलिए मै जुगनुओं की भाँति उड़कर तुम्हे पा लेने का प्रयत्न करता फिरता हूं।

विशेष—(१) आशा और इन्द्र धनुष में साम्य के कारण कवि ने स्थिति को उभारने के लिए दोनों का प्रयोग किया है। कल्पना और इन्द्र धनुष दोनों रंगीन है, किन्तु दोनों का अस्तित्व क्षणिक है; उनका सौदर्य स्मृति में संजोय रखने वाला सौंदर्य है; दोनों आधारहीन है। अन्धकार और नैराश्य दोनों को लील जाता है। इस सार्थक प्रयोग से काव्य-सौष्ठव में वृद्धि हुई है।

(२) प्राणों को जुगनुओं की उपमा देना भी सार्थक है। जिस प्रकार जुगनुओं का प्रकाश भी अन्धकार के आभास को और तीव्र ही कर पाता है, उसी प्रकार स्मृति की तड़ित चमकने से उत्पन्न हुई आकुलता का प्रयत्न भी रूपसी प्रेयसी को ढूँढने में असमर्थ रहता है।

(३) सम्पूर्ण पद में उपमा अलंकार का सौदर्य द्रष्टव्य है।

देखता हूँ ....पग अज्ञात।

शब्दार्थ—पियालों=आसव-पात्र। नवोढ़ा=नव विवाहिता। बाल-लहर=लघु लहर। उपकूल=किनारे के पास का भू-खण्ड; बेला। प्रसून=पुष्प। सत्वर=शीघ्र। कृश=क्षीण, दुर्बल।

प्रसंग—बाला का वियोग कवि के लिए जीवन-दुर्वह कर देता है। वर्षा का संगीत स्मृत्यात्मक है। सुखद वस्तुएँ भी अब दु:खप्रद बन गई है। चन्द्रमा आग के गोले सदृश प्रतीत होने लगा और नक्षत्र छिटके हुए अंगार-कण। इसी भाव को कवि प्रस्तुत पंक्तियों में अभिव्यक्त कर रहा है।

व्याख्या—वर्षा ऋतु में प्रकृति का प्रत्येक उपादान आनन्द में मग्न है, किंतु उसके लिए सब-कुछ दु:खदायी है। इसीलिए वह कहता है कि मैं जब भी उपवन को फूलों रूपी पात्रों में अपना यौवन भर कर अपने प्रिय भ्रमरों को पिलाते देखता हूँ तो मेरे प्राण व्याकुल हो जाते हैं, तड़पने लगते है—मेरी स्मृति में तुम्हारे सहवास के वे दिन उभर आते हैं जो मेरे लिए अतीत हो गये हैं। जब मैं लघु नवोढ़ा लहरों को अचानक ही बेला पर उग आये जंगली पुष्पों को तनिक लजाकर, तनिक रुक कर चूम कर धीमे से आगे बढ़ जाते देखता हूँ

तो तुम्हारी स्मृति मुझे निरन्तर कचोटने लगती है। कही कोई आकुलता मेरे प्राणों पर हल्का-सा आघात करती है और मेरा यादों में खोया क्षीण, दुर्बल शरीर सिहर उठता है, मेरे पग किसी अज्ञात भाव से रुक जाते है। कहने का तात्पर्य यह है कि विरह व्यथित शरीर आगे बढ़ना भी विस्मृत कर बैठता है।

विशेष—(१) यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि विरह में सौंदर्यमयी, शृंगारमयी और सुखमयी वस्तुएं भी दु.खप्रद प्रतीत होती है। यही स्थिति कवि की भी है। वह विरह मे सब प्राकृतिक उपादानों को निराशामय दृष्टिकोण से देखता है।

(२) कवि का भापा-प्रयोग द्रष्टव्य है। 'नवोढ़ा' शब्द लहर की मंद-मंद गति और प्रसूनों को चूमकर आगे बढ़ जाने की अर्थ-छाया में सार्थक प्रयोग है।

(३) अलंकार—(i) 'उपवन···मधुकर को'—मानवीकरण।
(ii) 'बाल-लहर'—रूपक।
(iii) 'नवोढ़ा बाल-लहर···सत्वर'—मानवीकरण।
(iv) 'भर भर'—पुनरुक्ति प्रकाश।

(४) 'प्रिये भर भर अपना यौवन' पक्ति में यदि 'प्रिये' को सम्बोधन न मानकर उपवन का प्रिये 'मधुकर' से जोड़ें तो यहाँ विशेषण-विपर्यय अलंकार होगा।

देखता हूँ जब················ ··················क्या आदान।

शब्दार्थ—इन्द्र धनुषी=इन्द्र धनुप जैसा; रंगीन; आशामय। कुमुद-कला=चन्द्र की कला। अन्तर्धान=अन्तर्मुखी; लीन। आदान=बदला; पुरस्कार।

प्रसंग—प्रकृति मधु-व्यापार में लीन है, किंतु कवि का जीवन विरह की आग में जल रहा है। प्रकृति का यह मधु व्यापार भी उसे दाहक प्रतीत होता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब मैं चन्द्रकला को बादल रूपी पतले रेशमी अवगुंठनों को अपने मुख पर से उठाते देखता हूँ—अर्थात् जब मैं चन्द्रमा को बादलों के पतले, रेशमी आवरण के मध्य से झाँकते देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि चन्द्रकला रूपी रूपसी अपने चन्द्रमुख से बादलों का इन्द्रधनुषी घूँघट हटा रही हो। उस प्राकृतिक शोभा में मुझे तुम्हारे सुन्दर मुख का ध्यान हो आता है और मैं उसका रस लेने के लिए अपने हृदय में झाँकने लगता हूँ, अन्तर्लीन

हो जाता हूँ; पता नही, उस समय मेरे प्राण किस वस्तु की कामना करते है।

विशेष—(१) काव्य-सौदर्य की दृष्टि से ये पक्तियां अप्रतिभ हैं। चन्द्र-कला का बादल रूपी इन्द्रधनुषी अवगुँठन हटाना और कवि को अपनी प्रेयसी का हल्के आवरण में लिपटे चन्द्रमुख का स्मरण हो आना उसके सौदर्य-बोध को स्पष्ट करते है:

(२) इन पक्तियों से कवि की 'मोह' से, 'आसू' से तक की यात्रा और उसके दो छोरों की प्रतीति होती है। कहां तो 'मोह' में कवि प्रकृति के लिए अपनी मुग्धा नायिका का भी त्याग कर देता है और कहां अब उसे प्रकृति की शीतलता भी प्रेयसी की अनुपस्थिति में दाहक लगने लगती है।

(३) 'अन्तर्धान' शब्द का प्रयोग अटपटा-सा है। इसका अर्थ होता है—दृष्टि से ओझल हो जाना अथवा वायवी हो जाना; किन्तु कवि ने इसका प्रयोग आत्म-लीन होकर भाव बोध और कल्पनात्मक स्मरण-बोध का रसास्वादन करने के अर्थ में किया है।

(४) अलंकार—(i) 'इन्द्र धनुषी'''कुमुद-कला'—रूपक।
(ii) 'तुम्हारे ही'''अन्तर्धान'—स्मरण।

बादलों के छायामय...........................प्रमुदित गिरि पर।

शब्दार्थ—छायामय मेल=छाया के समान मिलन; सूक्ष्म मिलन। अवनि = पृथ्वी। शैल = पर्वत। जलद = बादल। मरुत = पवन। प्रमुदित=प्रसन्न।

प्रसंग—कवि की दृष्टि का चित्रपटल परिवर्तित होता है। विरही मन प्रकृति की मिलन-लीला का वर्णन करता है।

व्याख्या—मेरी आँखों के समक्ष बादलों का यह मिलन व्यापार चलता है। बादल परस्पर एक दूसरे पर अपनी छाया डाल, नहीं अपनी छाया में दूसरे बादल की छाया को विलीन कर मिलते है, एकाकार हो जाते है और मेरी आँखे विस्फारित-सी फैली रह जाती है। समस्त व्योम में यही क्रिया-व्यापार चलता है। उस जलद-मिलन की छाया पृथ्वी पर पड़ती है। आकाश और पृथ्वी एकाकार हो रहे हैं। पृथ्वी पर आकाश की ओर बांहे उठाये शैल-राशियों में बादल घुमड़ रहे है और बादलों में शैल-राशियाँ समा गयी है। बादलों के छोटे-छोटे टुकड़े मेमनों की भांति पर्वत-शिलाओं पर प्रसन्न-वदन होकर उछल-कूद करते है। शिखरों पर वायु प्रवाहित हो रही है। उसकी शैल-मालाओं से

टकरा कर उत्पन्न हुई ध्वनि मानों मरुत रूपी उस रखवाले की वंशी की संगीतमय तान है।

विशेष—(१) कवि ने प्रस्तुत आवरण में चित्रात्मक बिम्वों का निर्माण किया है। बादलों का मिलन शैल और बादल की एकरूपता, शिलाओं पर बादल-मेमनों की उछल-कूद और मरुत-रखवाल की वेणु की तान चित्रात्मक बिम्व हैं।

(२) 'मेमनों' के लिए 'कुदकना' क्रिया का प्रयोग सटीक है।

(३) 'अवनि औ'···में शैल' मे अद्वैत भाव की स्थापना की गयी है।

(४) अलंकार—(i) 'अवनि औ'···खेल'—मानवीकरण।
(ii) 'मरुत रखवाल'—रूपक। (iii) 'मेमनों-से'—उपमा।
(iv) 'मेमनों-से···गिरि पर'—विशेषण विपर्यय।

इन्द्र धनु की सुनकर·····························था मेघासार।

शब्दार्थ—टंकार = घोर, गहन शब्द। उचक = उछल-उछल कर। विशिख = बाण। द्रुत = गतिशीलता। मेघासार = मेघों का आक्रमण; मूसलाधार वृष्टि; मेघों द्वारा शत्रु का घिराव।

प्रसंग—पूर्व पंक्तियों मे कवि ने बादलों का बिम्ब प्रस्तुत किया है। उसी बिम्ब का वह प्रस्तुत पंक्तियों में प्रसार करता है।

व्याख्या—जलदों में चमकती बिजली चमक कर द्रुतगति से पर्वत के दूसरी ओर दौड़ जाती है, मानो बिजली के बालक इन्द्रधनुष की टंकार सुनकर डर गये हों और भय के कारण पर्वत के दूसरी ओर छिपने के लिए दौड़ गये हों, क्योंकि बरसती वर्षा की तीक्ष्ण घोर उनका पीछा कर रही है। लेकिन पवन भला उन्हे कहाँ जाने देता। वह सहायता के लिए आ निकलता है और अपने विपरीत वेग से वर्षा के बाण-सरीखे वेग को रोक लेता है। बादलों का व्यूह तोड़ देता है।

विशेष—(१) बिम्ब रचना सुन्दर है। थोड़े शब्दों में एक सशक्त बिम्ब का कल्पनात्मक निर्माण किया गया है। आखेट-का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

(२) अलंकार—(i) 'इन्द्र धनु···टंकार'—रूपक।
(ii) 'चपला के चंचल बाल'—मानवीकरण।
(iii) 'मरुत जव···देता था'—मानवीकरण।

अचल के जब.................................विशाल अम्बर।

शब्दार्थ—अचल=पर्वत। विमल=पवित्र। विपुल=अथाह। अवि-कार=विकार रहित। सत्वर=शीघ्र। विहंगम=पक्षी।

प्रसंग—बादलों का दृश्य अवसान को प्राप्त हुआ प्रतीत होता है। बादल छिटक रहे है। आकाश की व्यापकता स्पष्ट होने लगती है। इसी भाव को प्रस्तुत पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि बादल पर्वत से ऊँचे उड़कर आकाश में तिरने लगते हैं और फिर शीघ्र ही खण्ड-खण्ड होकर सम्पूर्ण अम्बर में व्याप्त हो जाते हैं। पर्वत के ऊपर का आकाश-भाग निरभ्र हो अपनी रहस्यमयी नीलिमा लिए चमकने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे बादल नहीं, उस अचल के पवित्र विचार हैं जो पृथ्वी में उठकर आकाश में, उसकी व्यापकता में अविकार रूप से विलीन हो जाते हैं और अपनी व्यापकता प्रदर्शित करते हैं। यह दृश्य ऐसा लगता है मानो पर्वत आकाश के रूप में कोई नीलवर्णी पक्षी बैठा हुआ हो।

विशेष—(१) चित्रात्मक बिम्ब-रचना पूर्ववत् चल रही है। गिरि मानो कोई तपस्वी हो, जो तप-मग्न हो अपने विचार बादलों के रूप में समस्त व्योम में प्रसरित कर रहा हो। नीलवर्ण उसके रहस्यात्मक व्यक्तित्व का परिचायक है।

(२) 'प्रसाद' ने भी नील वर्ण का प्रयोग रहस्यमयता के लिए किया है—

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।

—कामायनी, श्रद्धासर्ग।

(३) अलंकार—(i) 'अचल' का मानवीकरण किया गया है।
(ii) 'विपुल···अविकार'—अनुप्रास।
(iii) 'विहगम-सा'—उपमा।

पपीहों की वह.................................के प्रश्नोत्तर।

शब्दार्थ—पीन=तीखी। निर्झर=झरने। घहर = घहराहट; भारी घुमड़ने का सा स्वर। दादुर=मेंढक। पावस=वर्षा ऋतु।

प्रसंग—पूर्व पंक्तियों में कवि ने दृश्य-बिम्बों के माध्यम से प्रकृति का

आलम्बनात्मक वर्णन किया है। प्रस्तुत पंक्तियों में भी उसका हृदयस्थ भाव पूर्ववत् चलता है। प्रस्तुत अवतरण में उसने दृश्य-बिम्बों की रचना की है।

व्याख्या—वर्षा में विरही प्रेमी का जीवन कितना कष्ट-प्रद होता है—कवि अपनी पृष्ठभूमि में रह रही प्रेयसी को इसका आभास दिलाना चाहता है। वह कहता है कि पपीहों की प्रिय के लिए वह तीखी पुकार कितनी आर्त्त लगती है। वर्षा मे पपीहे ही क्यों, सब प्राकृतिक उपादान परस्पर कानाफूसी करते हैं। पर्वत मानो पपीहों की उस आर्त्त पुकार के माध्यम से कुछ पूछ रहा है और वर्षा ऋतु उसका उत्तर देती है झरनों की झर-झर से। पर्वत मानो झींगुरों की झीनी झंकार के मिस प्रियतमा के मधुर स्वर के विषय में पूछ रहा है और वर्षा उसका उत्तर बादलों के गम्भीर, गहन, घहराते घोष से मानो हृदय की विकट स्थिति का आभास कराना चाहती हो। पर्वत मानो वर्षा की घहराती बूँदों के माध्यम से प्रश्न पूछ रहा है और प्रकृति उसका उत्तर देती है मेंढकों के विपुल टर्र-टर्र के स्वर मे। मानो वह एकान्त का, एकाकीपन का पर्वत को बोध कराना चाहती हो। पर्वत और वर्षा के ये प्रश्नोत्तर, ध्वनि-प्रतिध्वनि हृदय को न जाने कहाँ से कहाँ लिए जाती है।

विशेष—(१) यहाँ पर्वत नायक और पावस नायिका के रूप में भी हो सकती है। उनके प्रश्नोत्तर कवि के तीव्र और गहन प्रेम का परिचय देते हैं। ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा कवि ने अपने भाव को स्पष्ट किया है।

(२) नाद सौंदर्य दर्शनीय है। श्रव्य बिम्ब और संगीतात्मकता का ऐसा मिलन विरले ही काव्य में प्राप्त होता है।

(३) अलंकार—(i) शैल पर्वत के प्रश्नोत्तर—मानवीकरण।
(ii) 'पपीहों···पुकार'—अनुप्रास।
(iii) 'निर्झरों···झर झर'—अनुप्रास।
(iv) 'झर-झर'—पुनरुक्ति प्रकाश।
(v) 'घनों···घहर'—अनुप्रास।

खैंच ऐंचीला······························ देती है साकार।

शब्दार्थ—ऐंचीला=तना हुआ लेकिन लचकीला। भू-सुर-चाप=भौंहें रूपी इन्द्र धनुष। सुदुकूल=सुन्दर वस्त्र। झलमल=झिलमिलाता हुआ। जलद-पट=बादल रूपी घूंघट। चपला=बिजली। भग्न=टूटा हुआ।

प्रसंग—कवि का स्मृति-भाव इतना गहरा है कि अन्ततः उसे पर्वत भी

एक सुन्दरी रमणी के रूप में दिखाई देने लगता है। उसके अतीत की स्मृतियां वर्तमान से संवाद कर उठती हैं।

व्याख्या—कवि अपनी प्रेयसी बाला को सम्बोधित कर कहता है कि यह पर्वत मुझे अपने परिवेश सहित एक रूपसी नारी प्रतीत होता है। जब इस पर्वत पर खिंचा वक्र इन्द्रधनुष चमकता है तो मुझे तुम्हारी वंकिम भौंहों के कटाक्ष याद आते हैं। जब इस पर्वत पर फैली हरीतिमा पवन के हिचकोलों से हिलती है, तो मुझे तुम्हारा झीना वस्त्र स्मरण हो आता है। जब झरनों के रूप में यह पर्वत झिलमिलाती जल-राशि को बिखेरता है तो मुझे तुम्हारे तारों के समान झिलमिलाते हार की याद आती है; पर्वत शिखर के ऊपर बादलों का घूंघट हटा कर निकला चन्द्र मुझे ऐसा लगता है मानो तुम स्वयं बादल का-सा झीना अवगुंठन हटाकर अपना चन्द्रमुख प्रकट कर रही हो। बादलों के मध्य चमकती बिजली मुझे तेरी पलकों का उठना-गिरना लगता है। इस समस्त व्यापार को देखकर मुझे तेरे स्वरूप का स्मरण हो आता है और मेरे टूटे हुए हृदय पर मानो व्यथा के रूप में दुर्वह पर्वत रख दिया गया हो।

विशेष—(१) सादृश्य के माध्यम से कवि पंत ने अपनी 'प्रेयसी' को स्मरण किया है। वर्णन आलंकारिक तो है किन्तु है परम्परागत। उपमानों को देखकर उपमेय का स्मरण हो आया है। कवि केशवदास की निम्न पंक्तियों में भी यही भाव-साम्य देखा जा सकता है—

कलहंस कलानिधि खंजन कंज कछु दिन केशव देखि जिए।
गति आनन लोचन पायन के अनुरूपक से मन मानि लिए।
यहि काल कराल तें शोधि सबै हठि कै बरक्षा मिस दूरि किए।
अब धौं बिन प्रान प्रिया रहि हैं कहि कौन हितू अवलंबि हिए।

(२) 'ऐंचीला' और 'झलमल' आदि ध्वन्यार्थक शब्दों का प्रयोग सार्थक है। सौंदर्य की सरलता की ओर संकेत करते हैं।

(३) 'शैल' पुल्लिंग है किन्तु उस पर स्त्री-लिंग का आरोपण किया गया है। व्याकरण-दोष होते हुए भी कवि के भाव को स्पष्ट करने में इसका विशेष महत्त्व है।

———

ग्रंथि से

कविता परिचय—कवि पंत के काव्यविकास मे 'ग्रंथि' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतः पंत जी गीतिकार माने जाते हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताओं में प्रेम, सौंदर्य और प्रकृति के भावमय चित्रों की प्रमुखता है। 'वीणा' की सौंदर्य-प्रधान स्फुट कविताओं के पश्चात् पंत ने 'ग्रंथि' का प्रणयन किया था। इसकी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि कवि ने एक प्रणयगाथा को संक्षिप्त, रोचक तथा सरस अभिव्यक्ति दी है। यह प्रणयगाथा इस प्रकार है: संध्याकालीन प्राकृतिक सुषमा मे सम्मोहित नायक नाव में सरोवर की सैर कर रहा था, अचानक किसी भँवर में पड़ कर उसकी नौका डूब गयी। नायक मूच्छित हो गया; उसे ज्ञात नही हुआ कि कोई अनजानी युवती उसे किनारे पर ले आती है। नायक की मूर्च्छा टूटी तो वह देखता है कि किसी अनुपम सुन्दरी की जंघा पर उसका सिर है, युवती अत्यंत व्यग्रता से युवक को देख रही थी। प्रभातकाल की मादक लालिमा में उस मादक सौंदर्य को देखकर नायक के मन में प्रेम की जागृति हुई। यही प्रेम पनपता गया, किन्तु एक दिन समाज के क्रूर हाथो ने उसके सामने ही युवती का ग्रथि-वन्धन किसी अन्य से कर दिया, वेचारा युवक नायक उसके प्रति शुभ-कामनाओं को व्यक्त करता ही रह गया।

इस संक्षिप्त प्रणय-गाथा को पंत जी ने एक वचन उत्तम पुरुष में लिखा है। स्वानुभूतिपरक उक्तियों, भावात्मकता और अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता देखकर कतिपय अलोचकों का यह मत है कि 'ग्रथि' केवल काल्पनिक नही, अपितु इसमें कवि के वैयक्तिक जीवन की वास्तविकता अभिव्यक्त हुई है। डा० नगेन्द्र ने उक्त मत की आलोचना इस प्रकार की है—" वहुतों से सुना कि ग्रंथि पंत जी के अपने अनुभव पर आधृत है, उसमे उन्होंने अपनी प्रणय-कहानी लिखी है। वास्तव में इस लेख का लेखक कवि के आन्तरिक जीवन के इतने निकट नही है कि इस विषय में कुछ निश्चयपूर्वक कह सके-और न किसी के व्यक्तिगत जीवन की चर्चा श्लाघ्य है। हां, इतना अवश्य प्रतीत होता है कि उनकी उच्छ्वास, आंसू और ग्रंथि—ये तीन कविताएँ किसी विशेष-प्रेरणा भार से दवकर लिखी हुई है और इनमें आत्म जीवन सम्बन्धी कुछ स्पर्श अवश्य है।" वास्तव में यह कवि के यौवन काल की रचना है। उस काल में प्रेम-सौन्दर्य आदि के प्रति आकर्षण स्वाभाविक हो सकता है।

किन्तु साहित्य जगत् में प्रत्येक कृति व्यक्ति-विशेष के जीवन तक सीमित नहीं रहती। अतः ग्रंथि का अध्ययन करते हुए हमें पंत जी के रूप-सौन्दर्य को प्रमुखता देनी चाहिए। खण्ड काव्य का-सा कथानक लेकर भी पंत ने उसे गीति काव्य के रूप में चित्रित करते हुए अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

वह मधुर..के ईश से।

शब्दार्थ—मधुमास=वसन्त। मुग्ध=मोहित। रसिक=रस लेने वाला। तरुण=युवक। अवनि=पृथ्वी। मृदुल=कोमल।

प्रसंग—'ग्रंथि' की प्रणय-गाथा को प्रारम्भ करने से पूर्व कवि पंत ने उसे प्राकृतिक सौन्दर्य की भूमिका देने के लिए वसन्त के सौन्दर्य का चित्रण करते हुए उसकी प्रभावात्मकता और सरसता को शब्दों में उतारते हुए लिखा है।

व्याख्या—ऋतुराज वसन्त का समय था, जब खिले पुष्पों की सुगंधि में मग्न होकर भ्रमरों के झुण्ड झूमते हुए फूलों पर मंडराते रहते थे। मंजरियों की सुगंधि से आम्रवृक्ष अपनी सरसता फैला रहे थे, उसी आम्रवृक्ष पर कोयल के रसपूर्ण गीत गूंज रहे थे। सुगंधि, सुन्दरता, मृदुता से संपूर्ण विश्व का सुख उत्तरोत्तर वृद्धि कर रहा था। जिस प्रकार वसन्त ऋतु में दिन बड़े हो जाते हैं। विकसित पुष्पों को देखकर कवि कल्पना करता है कि ऋतुराज बसन्त का आगमन सुनकर विश्व की सभी इच्छायें, कामनायें अथवा आकांक्षाएँ अनेक कोमल फूलों में खिल उठीं थी। फूलों के खिलने में पृथ्वीवासी सभी लोगों की इच्छाएँ इसी प्रकार व्यक्त हो रही थी, मानों संसार का ईश्वर उन्हें सफल बनादे।

विशेष—(१) पंत को प्रकृति का कोमल और सुकुमार कवि माना जाता है। प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने केवल प्राकृतिक सौन्दर्य ही नही, अपितु प्रेम भावना भरित मनों का भी संकेत किया है, जो अपनी स्वाभाविकता और सरसता के कारण अत्यधिक आकर्षक हो गये है, जिस प्रकार प्रकृति का यह उद्दीपन रूप स्थान-स्थान पर बाधक हो जाता है, उसी के कारण प्रेमी-युगलों के मन में भी इसी प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं। आम्र वृक्षों की सरसता, कोयल की मधुरता, फूलों का खिलना और उन पर भ्रमरों का मण्डराना-यह सभी मिलकर किसी के मन में अपने प्रियतम से मिलने की भावना जाग्रत करते हैं जो अत्यन्त स्वाभाविक है।

(२) भाषा स्वर-माधुर्य और लक्षणिक वैचित्र्य से वातावरण और भावात्मकता की सफल सृष्टि करने में सक्षम है।

(३) अलंकार—(i) 'मधुर मधुमास', 'रसिक पिक से सरस'—अनुप्रास।
(ii) 'अवनि के···दिवस-से'—उपमा।
(iii) 'मृदुल सुमनों में'—श्लेष।
(iv) 'अखिल कोमल कामनायें अवनि की'—विशेषण विपर्यय।

अस्तिमित निज·································हमारी सो गई।

शब्दार्थ—अस्तिमित=अस्त होता हुआ। कनक=स्वर्णिम। कृपण=कंजूस। अरुण=लाल। आभा=प्रकाश। पतन=गिरना। रजकणों=धूलि-कण। विपुल=पर्याप्त। तरणि=सूर्य; नौका। नि:स्वन=शब्द रहित। तन्मय=मग्न। अचिर=क्षणिक।

प्रसंग—वासन्ती वैभव और मादक वातावरण में नायक जल-विहार करने गया तो उसे प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा के साथ जीवन की स्थिति का भी आभास मिलने लगा। अस्ताचलगामी सूर्य की स्वर्णिम रश्मियों और जल में उठने वाले बुलबुलों में जीवन की क्षणिकता का अनुभव करते-करते नायक की नौका भी उस अगाध जल में निमग्न हो गयी, उस समय का दृश्य और अपनी मन: स्थिति का चित्रण करते हुए कवि लिखता है—

व्याख्या—अस्ताचलगामी सूर्य पर्वत के सर्वोच्च शिखर को दिनभर तपाने के पश्चात् अपनी स्वर्णिम किरणों को इस प्रकार समेट रहा था जैसे कोई कंजूस व्यक्ति अपने बिखरे हुए धन को संचित करता है। उस समय का दृश्य लालिमा के रंग में रंगा हुआ था। प्रत्येक कण उस समय स्वर्णिम आभा में रंगा हुआ था। जिस प्रकार रजोगुण प्रधान वासनाओं का आधिक्य आकर्षक होकर भी अन्ततोगत्वा पतनोन्मुख होता है उसी प्रकार सूर्य भी अस्त हो रहा था। ऐसे समय में ही एक चंचल लहर की चोट खाकर सूर्यास्त के साथ ही नायक की नौका भी उस तालाब में डूब गयी। संध्याकाल की उस निस्तब्धता में नायक का सम्पूर्ण संसार उस गहरे जल में डूब गया। कुछ समय पूर्व लहरों के उत्थान-पतन में उठने वाले बुलबुले जीवन की क्षणिकता के गीत गा रहे थे, थोड़े समय में ही उनके प्रबल आघात से केवल नौका ही नहीं, अपितु नायक के मन की भावलहरियां भी सो गईं वह पूर्णतया मूर्च्छित हो गया।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि पंत ने प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करने के साथ-साथ उपदेशात्मकता की भी अभिव्यक्ति की है। अस्ताचलगामी

र्य को कंजूस का रूप देकर जहाँ दृश्य की वास्तविकता को उभारा गया है, सी प्रकार वासनाओं की विपुलता का पतनोन्मुख होना भी स्वाभाविक रूप में त्रित हुआ है। नौका के डूबने का दृश्य चित्रित करते हुए मानवीय भावनाओं ा संकेत देने में कवि ने अपने काव्य-कौशल का परिचय दिया है।

(२) भाषा माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त है। रूप और ध्वनि के सादृश्य ं सक्षम होने के कारण इसकी प्रभावात्मकता बढ़ गयी है।

(३) **अलंकार**—(i) 'अस्मित···कृपण-सा'—उपमा।
(ii) 'रजकणों-सी···विपुल'—उपमा।
(iii) 'रजकणों-सी'—श्लेष।
(iv) 'तरणि···ताल में'—यमक।

वह विमूर्च्छित·····························चिन्तित दृष्टि से।

शब्दार्थ—पीयूष=अमृत। समव्यथित=समान व्यथा से युक्त। पुनर्जीवन =दुबारा जीवन मिलना। व्यग्र=बेचैन। म्लान=उदास। सदय=दयायुक्त। ीरु=कायर; डरपोक।

प्रसंग—'ग्रंथि' के प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने उस समय का चित्रण िया है जब नायक की मूर्च्छा दूर हुई और उसने अपने को किसी की कोमल ंघा पर पड़े हुए देखा था। नौका डूबने के पश्चात् नायक और नायिका के िलन का दृश्य प्रस्तुत करते हुए कवि लिखता है—

व्याख्या—जब मूर्च्छा टूटी तो नायक को ऐसा प्रतीत हुआ जैसा वह नींद े जगा हो। वह अपने आप में विस्मित था कि वह कहाँ है और कैसे वहां हुँचा है। चिन्ता और विस्मय में भरे नायक को महसूस हुआ कि किसी का मृत के समान जीवनदायी और सहानुभूति एवं संवेदना से युक्त किसी के ोमल श्वांस जैसे उसे जीवन-दान दे रहे है। वह आँखे खोलता है और देखता ै कि चन्द्रकला के समान एक अनुपम सुन्दरी अपनी कोमल जाँघ पर उसका िर रखे हुए उसकी ओर अत्यन्त व्यग्रता से देख रही थी। वह स्थिर दृष्टि से ायक का उदास मुख निहार रही थी, उसकी दृष्टि में दया, भय, व्याकुलता ्रौर चिन्ता का अद्भुत समन्वय हो रहा था।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें कवि ी भावात्मकता तथा कलात्मकता का उत्कर्ष पाठक को विमुग्ध करने में ूर्णतया समर्थ है।

(२) नौका डूबने के पश्चात् नायक तो जैसे अपना जीवन खो चुका था।

इस पद्यांश में उसकी मूर्च्छा टूटने के साथ ही जो दृश्य प्रस्तुत किया गया है, वह भावोत्कर्ष की दृष्टि से प्रभावशाली है। मृत्यु मुख से निकलते हुए किसी की सहानुभूति, दया एवं भावनामय संसर्ग पाकर एक सहज आनंद और उत्सुकता जगाने में यह पूर्णतया सफल है।

(३) भारतीय प्रेम गाथाओं में प्रायः नायक और नायिका के मिलन तथा प्रमोत्कर्ष में समुद्र अथवा नदी की घटना को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पंत ने प्राचीन परम्परा को ही नवीनता के आवरण में व्यक्त किया है। जिससे कथानक की भावात्मकता अधिक प्रभावी हो गयी है।

(४) नायिका के सौदर्य तथा उसके मन में उठने वाले विविध भावों को पंत जी ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। 'समव्यथित निश्वास' में व्यथा-युक्त निराशा की अभिव्यक्ति है और अचल, सदय, भीरु, अधीर नायिका के भावों के प्रवाह और शान्त चेष्टाओं का मूर्तिकरण कर दिया गया है।

(५) 'जाँघ' शब्द में ग्राम्यत्व दोष है।

(६) अलंकार—(i) 'पीयूष-सा'—उपमा।
(ii) 'पुनर्जीवन-सा'—उपमा।
(iii) 'शशिकला-सी'—उपमा।

इन्दु पर उस इन्दु.................................के काव्य में।

शब्दार्थ—इन्दु=चन्द्रमा। रक्तिम=लाल। अपूर्व=अद्भुत। बाल रजनी=संध्या। अलक=लट। भ्रमित=भटकी हुई। रेखांकित=महत्त्व बताने के लिए रेखा से युक्त।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने नायक द्वारा नायिका के प्रथम दर्शन का चित्र प्रस्तुत किया है। मूर्च्छा हट जाने के पश्चात् नायक नायिका की सदय, भीरु और आतुर दृष्टि को देखकर अपने को पुनर्जीवित समझता है। जिससे सहानुभूति मिली उस जीवन-दात्री की ओर देखता है तो उसे सौंदर्य का अपूर्व रूप दिखाई दिया। उस समय पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदय हो रहा था। कवि नायिका और चन्द्रमा के सौन्दर्य की तुलना करता है।

व्याख्या—मूर्च्छा समाप्त होने पर नायक नायिका के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख को देखने लगता है। पूर्व दिशा में उदय होने वाले चन्द्रमा और नायिका के चेहरे में उसे बहुत समानता दिखाई देती है। उदय होता हुआ चन्द्रमा लालिमा से युक्त था और नायिका लज्जा के कारण रक्ताभ हो रही थी। पूर्व दिशा के चन्द्रमा की अपेक्षा प्रस्तुत चन्द्रमा उसे अपूर्व लगता है।

जिस प्रकार चन्द्रमा के चारों ओर सांध्यकालीन अन्धकार फैला हुआ था, जिसमें चन्द्रमा का सौदर्य द्विगुणित हो रहा था, उसी प्रकार नायिका के मुख-चन्द्र में एक लट लहरा रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह अलक सौदर्य के महत्व की कई गुणा वृद्धि कर रही थी। जिस प्रकार किसी काव्य में रेखांकित शब्दों का महत्त्व बढ़ जाता है, वैसे ही नायिका की मुख-सौदर्य की अलक से अभिवृद्धि हो रही थी।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने वातावरण की स्वाभाविकता और भावात्मकता की समन्वित सृष्टि की है। कविता के पहले छन्द में नौका डूबने का उल्लेख था, सांध्यकालीन वातावरण का विकसित रूप इस पद्यांश के प्रथम शब्द 'इन्दु' से ही ध्वनित हो जाता है।

(२) सांध्यकालीन चन्द्रमा तथा नायिका के सौंदर्य को ध्वनित करने के लिए कवि ने कालिमा, लालिमा, अलक तथा लज्जा को क्रमशः प्रस्तुत करते हुए सौन्दर्य को काव्यात्मक भावात्मकता प्रदान की है।

(३) लहराती हुई अलक से सौंदर्य की वृद्धि का प्रयोग परम्परागत होकर भी अधिक प्रभावात्मक है।

(४) अलंकार—(i) पूर्व को पूर्व था—यमक।
(ii) वाल रजनी-सी—उपमा।
(iii) पूर्व था···अपूर्व था—व्यतिरेक।

एक पल, मेरे······························से सीप-से।

शब्दार्थ—चपलता = चंचलता। विकम्पित = कांपती हुई। पुलक = सिहरन। प्रणय-संबंध = प्रेम सम्बंध। सस्मित = मुस्कराते हुए।

प्रसग—प्रस्तुत पद्यांश में पंत जी ने नायक और नायिका के प्रथम दर्शन और परस्पर अवलोकन से दोनों के प्रेम-सम्बन्ध का चित्रण किया है। नायिका के सौदर्य तथा दोनों के हाव-भाव का सहज चित्रण करने में यह पद्यांश विशेष महत्त्व रखता है।

व्याख्या—वासन्ती संध्या के मादक, एकान्त वातावरण में चन्द्रमा-सी सुन्दर वाला को देखकर नायक उसे आकाश के चन्द्रमा से भी अपूर्व मानता है। वह एकटक उस सुन्दर मुख को देखने लगता है। अचानक नायिका की पलकें ऊपर उठीं और नायक की आँखों में देखकर अति शीघ्र नीचे झुक जाती है। प्रियतमा की पलकों का ऊपर उठना, आँखें चार होना और नीचे झुक जाना, इस सबकी चंचलता में प्रसन्नता से परिपूर्ण जो सिहरन उठी, उसी ने

दोनों के प्रेम-सम्बन्ध को दृढ़ कर दिया। नायिका में लज्जा के स्वाभाविक विकास से उसके चेहरे पर लालिमा दौड़ गयी, उसमें मदिरा की मादकता तथा गुलाव सी मोहकता और कोमलता मिली प्रतीत होती है। प्रसन्नता, उत्सुकता तथा लज्जा के कारण उसके मुख पर जैसे सौंदर्य की बाढ़ आ गयी, जो उसके गालों पर मुस्कराते हुए गढ़ों से बाहर छलक रही थी।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में प्रेम, सौंदर्य और लज्जा से सम्बद्ध भावों, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का अत्यन्त प्रभावी चित्रण हुआ है। एक पल के लिए प्रिया की पलकों का उठना और गिरना उसकी शालीनता, संयम, लज्जा तथा सहज प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रथम दृष्टि में प्रेम भाव की उत्पत्ति का यह चित्रण संक्षिप्त होकर भी नारी-भावना का अपार सागर समेटे हुए है।

(२) चपलता, विकम्पित पुलक, प्रणय-सम्बन्ध आदि में मानसिक तथा शारीरिक क्रियाओं का संकेत है तो सुरा-सी, गुलाव-सी लालिमा में सौंदर्य की मादकता और कोमलता को प्रकट किया गया है। सीप-से गढ़ों में नायिका के उस सौंदर्य की ध्वनि आती है जो उसकी कोमलता और शरीर-सौंदर्य के आदर्श माने जाते है।

(३) भाव-सौंदर्य, गत्यात्मकता और चित्रमयता की दृष्टि से भाषा पूर्णतया सफल है।

(४) अलंकार—(i) दृढ़ किया मानो प्रणय-सम्बंध था—उत्प्रेक्षा।
(ii) सुरा-सी, गुलाव-से, बाढ़-सी, सीप-से—उपमा।

इन गढ़ों में..................................छिपाना चाहती।

शब्दार्थ—आवर्त=भँवर। तरुण=युवा। सुभग=सुन्दर। उषामय=प्रभातकालीन। सुकुमारता=कोमलता। अवनि तल=पृथ्वी।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में नायिका के सौन्दर्य और सौकुमार्य का वर्णन करते हुए पंत जी ने प्रेम भावनाजन्य लज्जा तथा संकोच की कुछ क्रियाओं का चित्रण किया है, जिसमें कवि की सूक्ष्म दृष्टि एवं उनकी विधायिनी कल्पना का परिचय मिलता है।

व्याख्या—सुन्दर, मोहक, सुकुमार और यौवनभारभरित नायिका के कपोलों पर पड़ने वाले सीप जैसे गढ़ों का सकेत करते हुए नायक कहता है कि सौन्दर्य-सागर के भँवर के समान इन गढ़ों में किसके नौका रूपी नेत्र आकर

अटक नहीं जाते। सागर अथवा नदी में पड़ने वाले भँवर में यदि कोई नौका घिर जाय तो वह बाहर नहीं निकल पाती, अपितु उसी में भटक कर डूब जाती है। नौका अपने बोझ की अधिकता से डूबती है और नेत्र सौन्दर्य-भार से दबकर उसी में खो जाते है। गुलाब अपनी सहज सुन्दरता में आकर्षक होता है किन्तु प्रभातकालीन गुलाब की शोभा कुछ और ही होती है। जिस प्रकार सेव की लालिमा उसकी सरसता का परिचय देती है उसी प्रकार लज्जा की लालिमा में यौवन और सौन्दर्य की सरसता और सुकुमारता का परिचय मिल जाता है।

नायिका की मनःस्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि वह अपने पदनखों से पृथ्वी को खुरचती हुई समय की दीर्घता को भुलाने का प्रयास कर रही थी। वियोग की घड़ियां जो व्यतीत नही होतीं उनको मिटाने या कम करने के साथ वह अपनी पलकों की धृष्टता भी छिपाने का प्रयास करती है जो वरवस नायक को देखने के लिए ऊपर उठना चाहती है।

विशेष—(१) शारीरिक सौंदर्य का वर्णन करने वालों ने नायिका की गाल पर गढ़े पड़ने को उत्तम सौंदर्य का लक्षण माना है।

(२) नौका और नयन दोनों का विमोहित होकर निमग्न हो जाने का वर्णन सादृश्य के कारण स्वाभाविक और प्रभावात्मक बन गया है।

(३) नायिका के संकोच, लज्जा तथा उत्सुकता आदि भावों को प्रकट करने के लिए कवि ने परम्परागत रूप को अपनाया है। नायिका का शील मर्यादा, संकोच आदि उसे मुखर नहीं बनाता, वह अपनी भावनाओं को छुपाने का उपक्रम करती है, उसी का सहज चित्रण पंत जी ने किया है।

(४) अलंकार—(i) इन गढ़ों में···सौंदर्य के—दृष्टान्त।
(ii) क्या उषामय···कहना भला—भेदकातिशयोक्ति।
(iii) पद नखों···छिपाना चाहती—उत्प्रेक्षा।

इन्दु की छवि··································मेरी दीप-सी।

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार। अनिल=वायु। सलिल=जल। वीचि=लहर। उत्सुकता=अधीरता। स्मिति=मुस्कान। मृगाक्षी=मृग जैसी आंख वाली। स्निग्ध=चिकनी।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में प्राकृतिक सौंदर्य तथा नायिका के सौंदर्य भावात्मक सम्वन्ध स्थापित करते हुए कवि ने नायक की उत्सुकता तथा नायिक

की प्रेमाकुलता का चित्रण किया है। नायिका लज्जावनत थी; नायक उसे निहार रहा था, उसे लगा कि जैसे सम्पूर्ण प्रकृति भी उसी के समान नायिका को देखने के लिए समुत्सुक है।

व्याख्या—सम्पूर्ण प्रकृति में नायिका को देखने की उत्सुकता व्याप्त थी। स्वयं नायिका संकोचवश धरती की ओर देख रही थी किन्तु उसके चन्द्रमुख की सुन्दरता में, जो घने केशान्धकार में घिरा हुआ था, मादक श्वांसों की कोमल ध्वनि में, आंखों में लहराते हुए प्रेमाश्रुओं की लहरों मे, फूलों जैसे कोमल अधरों की मुसकान तथा लता के समान कोमल शरीर में उत्सुकता व्याप्त थी। नायिका के समान नायक भी पूर्ण तन्मयता से देख लेना चाहता था, ऐसे समय में उस मृगनयनी ने अपनी पलकों को ऊपर उठाकर नायक की ओर देखा। उस एक पल के दृष्टि-निक्षेप ने नायक की व्याकुलता को समाप्त करने के साथ ही अपनी प्रेमभरी दृष्टि से नायक के जीवन-दीप की लौ को जीवन-दान देकर उसकी चमक को बढ़ा दिया।

विशेष—(१) प्रस्तुत पक्तियों में कवि ने प्रकृति तथा मानव के रागात्मक सम्बन्ध की सृष्टि की है। चिरकाल से मानव प्रकृति को अपनी ही भावनाओं के अनुकूल देखता आया है, उसी के अनुसार नायक चन्द्रमा, अन्धकार, वायु, जल, पुष्पलता आदि में अपनी ही भावना का प्रतिविम्व देखता है।

(२) प्रस्तुत पद्यांश की सबसे बड़ी विशेपता यह है कि कवि ने लज्जाभार भरित नायिका की भावनाओं की अभिव्यक्ति और उसके सौंदर्य का दिग्दर्शन कराने के लिए प्राकृतिक उपमानों का सुन्दर चयन किया है। इन्दु मुख, तिमिर-केश जाल, अनिल-श्वास, सलिल-आंखों की चमक, सुमन-मुख, लता-शरीर आदि नारी-सौंदर्य की अभिवृद्धि करने वाले परम्परागत उपमान हैं। इनमें रूप और गुण-सादृश्य का निर्वाह करने में पंत जी को पूर्ण सफलता मिली है।

(३) अलंकार—(i) निज पलक · दीप-सी—यथासंख्य।
(ii) स्नेह, स्निन्ध—श्लेष।
(iii) सरल सुमन की स्मिति—अनुप्रास।
(iv) दृष्टि मेरी दीप-सी—उपमा।
(v) श्यामल दृष्टि—विरोधाभास।

प्रथम केवल..................................**को साथ ला।**

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि पंत ने प्रेमी मन की आकांक्षा तथा प्रेम-

मार्ग पर चलने वालों की परिस्थिति का चित्रण किया है। नायक कभी केवल नायिका का सौंदर्य देखना चाहता था किन्तु निकट सम्पर्क से उसकी विकसित भावनाओं को व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है—

व्याख्या—प्रेमानुभूति जागने से पूर्व जो हंस केवल मोती चुगना चाहता था, उसे केवल सरोवर में से उदात्त मूल्यों को पाने की आकांक्षा थी, किन्तु नायिका के सौन्दर्य तथा अनुरागमयी दृष्टि पाने के पश्चात् उसके मन मे गहरे जल में कमलिनी के समान केवल नायिका से सुखदायी क्रीड़ा करने की लालसा बढ़ती है। प्रेम रंग में ज्यों-ज्यों वह निमग्न होता है, उसकी लालसा भी बढ़ती जाती है। अपनी मनःस्थिति को देखकर नायक प्रेमी-जनों, रसिक-पाठकों को सम्बोधन करते हुए पूछता है कि क्या कोई व्यक्ति कामनाओं के चंचल, उत्सुकता भरे पैरों से चलकर प्रेम-पंथ के संकरे मार्ग से अपना हृदय लेकर कुशलता से लौटा है। प्रेम-मार्ग तो केवल एक ओर ही जाता है। सच्चा प्रेमी उस पंथ पर चलता है तो वापिस नहीं लौट पाता; भले ही उसका जीवनान्त हो जाये।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यावतरण में प्रेम के मनोवैज्ञानिक विकास का चित्रण किया गया है। रूप-सौन्दर्य से प्रेम की उत्पत्ति, सहानुभूति तथा निकट सम्पर्क से प्रणय की परिपक्वता और अन्त में प्रेम की सम्पूर्ण समर्पण आदि स्थितियों का इसमें सरस प्रतिपादन हुआ है।

(२) नायक के लिए 'हंस' उपमान भी सार्थक है। नीर-क्षीर विवेचन की शक्ति रखने वाला हंस सात्विक होकर भी ज्ञानी माना जाता है। मोतियों जैसे उदात्त जीवन मूल्य पाना उसका लक्ष्य रहता है, किन्तु प्रेम का संसर्ग पाकर उसकी रागात्मकता अपने प्रिय में पूर्णतया समर्पित हो जाती है।

(३) अन्तिम पंक्तियों में यह भी ध्वनि प्राप्त हो जाती है कि प्रेम-पंथ तलवार की धार के समान है, जहां किसी की कामना पूर्णतया सफल नहीं होती। परिणाम निराशा में ही फलीभूत होता है।

(४) अलंकार—(i) लालसा पल-पल—अनुप्रास।
(ii) पल-पल—पुनरुक्ति प्रकाश।

बादल

कविता परिचय—'बादल' सन् १९२२ में लिखित कवि पंत की एक महत्वपूर्ण कविता है। छायावादी काव्यधारा में प्रकृति पर प्राणों का आरोप करके

उसका विविध रूपों में प्रतिपादन किया जाता था। 'बादल' उस शैली की बहुत-सी विशेषताओं का साकार चित्र उपस्थित करता है। यह कविता आत्म कथात्मक शैली में लिखी गयी है। बादल आत्मकथा-सी कहते हुए अपने जन्म, विकास और अन्त की स्थितियों का चित्रण करते हैं। बादलों के विविध रूप, रंग, आकार,गति, ध्वनि, कोमलता, भयंकरता आदि को शब्दों में चित्रित करते हुए पंत जी ने स्वाभाविकता और प्रभावात्मकता को साकार किया है। इस कविता को पढ़कर यह मानना पड़ता है कि कवि पंत ने प्रकृति के रूप को केवल निकट से देखा ही सही, अपितु उसका चित्रण करने में भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है। इस कविता की आलोचना करते हुए डॉ० नगेन्द्र लिखते हैं—"बादल में कवि ने एक ओर तो अपनी भाव प्रेरित कल्पना द्वारा बड़े विशद् और विराट् चित्र खींचे हैं, दूसरी ओर कल्पना-पुष्ट भावुकता की सहायता से उन चित्रों में मानवता का रंग भर दिया है।" वास्तव में बादल कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कवि ने बादल के माध्यम से पौराणिक मान्यताओं, प्राकृतिक सौन्दर्य की स्वाभाविकता, मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति तथा कर्त्तव्य पथ की कठोरता आदि भावों को जिस रूप मे प्रस्तुत किया है, वह कवि की सफलता का प्रमाण है।

सुरपति के हम..................................के जलधर।

शब्दार्थ—सुरपति=इन्द्र। अनुचर=सेवक। जगत्प्राण=वायु। मेघ-दूत=प्रसिद्ध सदेश-काव्य। चिर=सदा रहने वाला। मुग्ध=मोहित। शिखी=मोर। मुक्ताकर=मोतियों का समूह। विहग=पक्षी। विधायक=निर्माता। जलधर=बादल।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों का मानवीकरण करते हुए उसके विविध रूपों की कल्पना की है। बादल के बाह्य रूप का वर्णन करने की अपेक्षा आत्मपरिचय शैली पर कवि ने बादलों के रूप, रंग, आकार-प्रकार आदि का वर्णन करते हुए अपनी नव-नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

व्याख्या—बादल अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि वे देवराज इन्द्र के सेवक है। उनके इंगित के अनुसार ही बादलों की गतिविधि का संचालन होता है। सम्पूर्ण संसार के प्राणों का आधार वायु भी हमारा चिरन्तन मित्र हैं। इन्द्र को बादलों का स्वामी माना जाता है और बादल एवं वायु का अटूट सम्बंध भी स्वाकार किया जाता है। यही नहीं, बादलों का अनुपम सौन्दर्य

मानव जीवन में नित नवीन कल्पनाओं को जन्म देता है। बादल कहते हैं कि उन्हें देखकर ही कवि कुल शिरोमणि कालिदास ने मेघदूत की कल्पना की थी। बादल ही चातक के जीवनाधार है; जब चातक अपनी व्यथा-पिपासा में पीड़ित होता है तो वर्षा जल ही उसके मन को तृप्ति प्रदान करता है। हमारे मोहक रूप को देखकर ही मोर अपना नृत्य करते हैं और स्वांति नक्षत्र में हमसे निकल कर ही तो बिन्दु सीपी में पड़कर मोती बन जाती है। वर्षाकाल के मादक वातावरण में मनुष्य ही नही, पक्षियों में भी कामोत्तेजना बढ़ती है। पक्षियों की वंश-वृद्धि भी तो वर्षाऋतु में ही होती है। हम यह सब कुछ होकर भी कृषक बालिका के लिए सामान्य रूप वाले बादल ही है। हमारे कारण ही तो उसकी कृषि पनपती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने पौराणिक विश्वासों और प्राकृतिक परम्पराओं का अत्यन्त सफल किन्तु भावात्मक चित्रण किया है। पौराणिक दृष्टि से इन्द्र बादलों का स्वामी है, उसके आदेशनुसार ही बादलों के कार्यकलाप चलते है। प्राकृतिक दृष्टि से पवन के सहचर, चातक के जीवनधर, शिखी के नृत्य, स्वाँति के मोती आदि कल्पनायें सहज और स्वाभाविक होकर भी अत्यन्त आकर्षक हैं।

(२) साहित्यिक दृष्टि से मेघदूत का संकेत करते हुए कवि ने कालिदास के करुणासिक्त हृदय को जैसे साकार कर दिया हो। कृषक बालिका का संकेत मानव जीवन के सहज रूप को ही व्यक्त करता है।

(३) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों के अनेक कार्यो का उल्लेख किया है जैसे चातक की जीवन-रक्षा, शिखी का नृत्य, मोतियों के जन्म तथा पक्षियों के गर्भ-विधान आदि सभी में बादल अपना प्रभाव ही देखते है।

(४) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने ध्वन्यात्मकता के कारण अनेक रोचक प्रसंग प्रस्तुत किये है। अलंकारों की दृष्टि से कवि ने चमत्कार लाने की अपेक्षा भावाभिव्यक्ति करने को महत्त्व दिया है। प्रायः सम्पूर्ण कविता प्रकृति की गोद में ही पलती है। अतः वियोग क्षणों की भूमिका तथा आत्मपरिचय शैली के कारण प्रवाह, भावात्मकता तथा सरसता की अभिवृद्धि हुई है।

(५) अलंकार—(i) 'चातक के चिरजीवनधर'—अनुप्रास।
(ii) विहग वर्ग के गर्भ विधायक—अनुप्रास।

(iii) 'जगत्प्राण', 'जीवन'—श्लेष ।
(iv) दोनों छंदों में उल्लेख ।

जलाशयों में ....ले जाता ऊपर ।

शब्दार्थ—जलाशय=तालाब । दिनकर=सूर्य । सत्वर=शीघ्रता से । लघु=छोटी । चल=चंचल । पलनों=झूलों ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों के निर्माण, विकास और अन्त का चित्रण किया है । सूर्य की उष्णता, वायु की गतिशीलता और शीतलता मिल बादलों का निर्माण करती है । उसी का विवरण प्रस्तुत पद्यांश में प्रस्तुत किया गया है ।

व्याख्या—बादल कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य प्रतिदिन सरोवरों और बड़े-बड़े जलाशयों में कमलों का विकास करता है उसी प्रकार वह सरिता, सरोवर अथवा सागर से जल को सोखकर बादलों का निर्माण करता है । वायु एक क्रीड़ाशील बालक के समान उस बिखरी हुई वाष्प को एक स्थान पर केन्द्रित करता है और फिर अति शीघ्रता से उसे बिखेर देता है । जैसे बालक घरौंदे बनाते और बिगाड़ते है उसी प्रकार सूर्य और वायु बादलों का निर्माण करके फिर उन्हें बिखेर देते है । यही वायु हमारी बाहों को पकड़ कर एक चील के ससान अचानक झपटकर हमें ऊपर आकाश मे ले जाता है, जब शान्त और गम्भीर सागर अपनी छोटी-छोटी चंचल लहरों के झूले पर झुलाया करता है

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में प्राकृतिक कार्यालाप का चित्रण अत्यन्त सार्थक और आकर्षक बन गया है । सूर्य और वायु के सम्मिलित प्रयास से बादल बनते है । दोनों पर चेतना का आरोप करते हुए क्रीड़ाशील बालक का रूप देकर उसे और भी आकर्षक बना दिया गया है ।

(२) दूसरे छन्द में लहरों को झूले और वायु को चील का रूप देकर पंत ने एक ओर तो प्राकृतिक गतिशीलता को साकार किया है और दूसरी ओर पक्षी-जीवन का भी स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत कर दिया है ।

(३) अलंकार—(i) लघु लहरों के चल पलनों में—अनुप्रास ।
(ii) 'कमलदलों-सा', 'बालक-सा', 'चील-सा'—उपमा ।
(iii) सागर और वायु का मानवीकरण ।

भूमि गर्भ में...............................उर में निःशंक ।

शब्दार्थ—विहग=पक्षी । रोमिल=रोएँदार । अस्फुट=अविकसित । जड़=निर्जीव । पंक=कीचड़ । विपुल=अत्यधिक । विविध=अनेक । अंक=गोद । कौतुक=खेल । निःशंक=निर्भीक ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों को पक्षियों के रूप में प्रस्तुत करते हुए उनके विविध कार्यकलापों के अतिरिक्त संसार के अन्नदाता रूप का भी संकेत किया है।

व्याख्या—जिस प्रकार पक्षी अपने कोमल और रोएँदार पंखों को फैलाकर अपने अण्डे सेते हैं, समयान्तर पर उन अण्डों से जीवित और साकार पक्षियों का जन्म होता है। उसी प्रकार हम भी अपने कोमल, व्यापक और विशाल पंखों को फैलाकर पृथ्वी के गर्भ में जो असंख्य अविकसित बीज होते है, उन्हें कीचड़ की जड़ता से मुक्त कर विकसित होने का अवसर देते हैं। भूमि-गर्भ में छिपे बीजों की स्पष्ट और साकार फल, फूल, बनस्पति अथवा शस्य के रूप में भी प्रकट करते है। वास्तव में बर्फ के परिणाम स्वरूप ही धरती में पड़े बीजों का विकास हो पाता है। नाना-नाम-रूपात्मक संसार की महान् और व्यापक कल्पना के समान हम भी अपने अनेकविध रूप मे प्रकट होकर आकाश का प्रांगण भर देते हैं और उस अनन्त आकाश में निर्भीक होकर अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में बादलों को एक महान पक्षी का रूप देकर कवि ने उसके निराकार को साकार, अविकसित को विकसित करने की क्षमता का वर्णन किया है। पक्षी तथा बादल का गुण—साम्य इस प्रसंग की रोचकता का आधार है। त्रिभुवन की कल्पना का साम्य भी बादलों के विविध रूपों की व्यंजना करने में समर्थ है।

(२) अलंकार—(i) 'फैला कोमल रोमिल पंख'—अनुप्रास ।
(ii) सेते सांस छुड़ा जड़ पंक—अनुप्रास ।
(iii) 'विहग-से; 'कल्पना-से'—उपमा ।
(iv) 'हम असंख्य···जड़ पंक'—मानवीकरण ।

कभी अचानक ....कर·····सुकुमार ।

शब्दार्थ—विकट=डरावना । सुभग=सुन्दर । पसार=फैलाकर । समुद=

प्रसन्नता से। शुचि=पवित्र। ज्योत्स्ना=चाँदनी। इन्दु=चन्द्रमा। कर=हाथ; किरण।

प्रसंग—'बादल' कविता में कवि पंत की कल्पना ने बादलों के विविध रूपों की अवतारणा की है। प्रस्तुत पद्यांश में बादलों के कठोर और कोमल रूपों का अत्यन्त प्रभावी चित्रण किया है।

व्याख्या—अपनी विकटता का परिचय देते हुए बादल कहते हैं कि कभी-कभी हम अचानक अपना अत्यन्त डरावना रूप प्रकट करते है। जिस प्रकार कोई भूत अचानक प्रकट होकर दूसरों को आतंकित करता है उसी प्रकार जब हम अपनी भयंकर हँसी में कड़कते हैं तो उससे सम्पूर्ण संसार भयभीत होकर काँप उठता है। भूत का नाम, आकार, प्रकार अथवा ध्वनि की कल्पना ही किसी को डरा सकती है, किन्तु बादल का आकार तो स्पष्ट दिखाई देता है। इसलिए उसका डरावनापन और भी बढ़ जाता है। किन्तु यह कठोरता अथवा भयंकरता सदा नही रहती। बादल भी कोमल रूप धारण कर लेते हैं। जिस प्रकार परियों के बच्चे अपने सीप जैसे श्वेत पंख फैलाकर आकाश में उड़ते हों, उसी प्रकार बादल भी श्वेत रूप के छोटे-छोटे टुकड़ो में बड़ी प्रसन्नता से चन्द्रकिरणों के सुकुमार हाथों का सहारा लेकर पवित्र चाँदनी में विचरण करते हैं।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि पंत द्वारा प्रकृति के रूप, रंग, आकार, ध्वनि और गति को अनुकूल शब्दों में साकार करने की क्षमता का पूर्ण परिचय मिलता है। पहले छन्द में भूतों-से समता करते हुए कवि ने विकटता की कड़क-कड़क शब्द से और भी बादल को साकार बना दिया है। दूसरे छन्द में बादल का वह रूप चित्रित किया है जब बरसने के पश्चात् छोटे-छोटे श्वेत टुकड़ों में चाँदनी रात में बादल उडते हों। परियों के बच्चों का चन्द्रमा के कोमल हाथों को पकड़ कर चलने में दृश्य की सजीवता और भी बढ़ गयी है।

(२) अलंकार—(i) सुभग सीप-से—अनुप्रास।
(ii) कड़क-कड़क—पुनरुक्ति प्रकाश।
(iii) इन्दु के कर—श्लेष।
(iv) 'भूतों का-सा', 'बच्चों-से'—उपमा।
(v) फिर परियों-से···सुकुमार—मानवीकरण।

बुद् बुद-द्युति·································संदेश ललाम।

शब्दार्थ—बुद्बुद-द्युति=बुलबुलों की चमक। तारक=तारे। तरलित=प्रतिबिम्बित। तम=अंधकार। जम्बाल=काई। अमूल=जड़ के बिना। अविराम=निरन्तर। कुमुदकला=चन्द्र कला। रजतकरो=रुपहली किरणें। अभिराम=सुन्दर। मृदु=कोमल। ललाम=मनोहर।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने अंधकारमयी रात्रि को यमुना का रूप देकर बादलों का वर्णन करने के अतिरिक्त उन्हें संदेशवाहक का रूप देते हुए लिखा है—

व्याख्या—जिस प्रकार अंधकारपूर्ण रात्रि में तारों की चमक से प्रतिबिम्बित यमुना जल में काई का विशाल आकार, जिसका कोई आधार नहीं होता, निरन्तर बहता हुआ दिखाई देता है। उसी प्रकार तारों-भरी अंधेरी रात्रि में हम विशाल आकार में बिना जड़ अथवा आधार के निरन्तर चलते रहते हैं। और कभी चन्द्रकिरणों की रूपहली आभा में हम नल-दमयन्ती के संदेशवाहक स्वर्ण-हंस के समान अपनी मधुर ध्वनि और मंथर गति में चलते हुए चन्द्रिका का प्रेम संदेश उसके प्रियतम के पास पहुँचाने के लिए चलते रहते हैं।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश के पूर्वार्द्ध में रात्रि और यमुना का सादृश्य दिखाते हुए कवि ने प्रकृति का सौंदर्य और भाव-सादृश्य भी प्रतिपादित किया है। जम्बाल-जाल में काई और बादल की गतिशीलता पूर्णतया स्वाभाविक लगती है।

(२) दूसरे छंद में कवि ने सुप्रसिद्ध प्रेमगाथा का संकेत किया है। दमयन्ती ने स्वर्ण-हंस के द्वारा महाराज नल को प्रेम-संदेश प्रेषित किया था। उसमें उसके अनुराग, उल्लास तथा भावुकता का प्राधान्य था। चंद्रिका-स्नात रात्रि में उड़ते हुए बादल हंस के समान ही सात्विकता और उल्लास का संकेत करते हैं। चन्द्रिका को प्रेमिका और बादलों को संदेशवाहक कहकर कवि ने भाव-सादृश्य तथा रूप-सादृश्य का सफल चित्रण किया है।

(३) **अलंकार**—(i) 'बुद्बुद द्युति तारकदल तरलित'—अनुप्रास।
(ii) दमयन्ती सी कुमुद-कला—उपमा।
(iii) बुद्बुद द्युति···अविराम—रूपक।
(iv) स्वर्ण हंस-से—उपमा।

दुहरा विद्युद्दाम .... वायु-विहार।

शब्दार्थ—विद्युद्दाम=विजली की डोरी। द्रुत=शीघ्र। पटह—नगाड़ा। निर्घोषित=गरज कर। विशिखों=वाणों। आसार=प्रसार। वज्रायुध=वज्रसा शस्त्र। भूधर=पर्वत। भीमाकार=डरावने शरीर वाला। मदोन्मत्त=मद में मस्त। वासव=इन्द्र।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में वादलों के वीर-स्वरूप का चित्रण किया गया है। बादलों और पर्वतों में संघर्ष का चित्रण करते हुए कवि ने बादलों का योद्धा रूप प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि—

व्याख्या—बादल अपने योद्धा रूप का चित्रण करते हुए कहते है, कि जब हम बिजली की दुहरी डोरी चढ़ाकर बड़े लाघव से इन्द्र धनुष को टंकारते है, एक बहुत बड़े नगाड़े के समान गरजते हुए मूसलाधार वर्षा रूपी बाणों से वातावरण को आच्छादित कर देते हैं, तो हमारी चोट वज्र जैसे कठोर शस्त्र-सी होती है जिससे बड़े-बड़े भीमकार्य पर्वत चूर-चूर हो जाते है, उनकी पराजय हो जाती है और हम विजयोन्माद में भरकर इन्द्र की सेना के समान वायु विहार करते हुए आनन्द प्राप्त करते है।

विशेष—(१) जब आकाश में बादल छाये हुए हों तो बिजली का चमकना, बादलों की गड़गड़ाहट, इन्द्रधनुष का दिखाई देना और मूसलाधार वर्षा का होना स्वाभाविक है और यह भी सत्य है कि जब आकाश में वादल छाये हुए हों तो पर्वत उसमें ढक जाते हैं। इस सहज स्वाभाविक रूप को युद्ध के उपकरणों का रूप देकर कवि ने दृश्य-निर्माण के अतिरिक्त बादल और पर्वत के पौराणिक आख्यान को भी सजीवता प्रदान की है।

(२) अलंकार—(i) दुहरा विद्युद्दाम...सा आसार—उपमा और रूपक।
(ii) 'चूर्ण चूर्ण'—वीप्सा।
(iii) भूधर को अति भीमाकार—अनुप्रास।

व्योम-विपिन में .... मारुत से बात।

शब्दार्थ—विपिन=जंगल। पल्लवित=खिला हुआ; फूलों और पत्तों से युक्त। स्रोत=झरना; प्रवाह। तमाल=श्याम पत्तों वाला वृक्ष; आबनूस। उदयाचल=जिस पर्वत से सूर्योदय होता है। बाल-हंस=वाल सूर्य; अरुण। अवदात=सुन्दर। मारुत=वायु।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में बादलों की समता ऋतुराज वसन्त से करते हुए कवि ने बादलों के सौंदर्य और गतिशीलता का चित्रण किया है।

व्याख्या—जिस प्रकार वसंत ऋतु के आगमन पर वृक्षों पर नये फूल, पत्ते आदि खिल जाते है और जीर्ण-शीर्ण पत्ते वायु से इधर-उधर बिखर जाते है, उसी प्रकार बादल कहते है कि जब आकाश रूपी कानन में वसन्त जैसी सुन्दरता-सुषमा आदि को लेकर प्रभात आता है, चारों ओर स्वर्णिम आभा का प्रसार होता है, उस समय हम तमाल वृक्ष के पत्तों के समान वायु प्रवाह में उड़ते हैं रहते और जब उदयाचल से बाल सूर्य अपने सौन्दर्य, तेजस्विता से परिपूर्ण होकर आकाश मार्ग में यात्रा प्रारम्भ करता है तो हम भी स्वर्णिम पंखों के समान फैलाकर हवा से बातें करते है। प्रभात काल में बादलों के टुकड़े श्यामल होने के कारण तमाल वृक्ष के श्यामल पत्तों के समान प्रतीत होते है किंतु बालारुण की किरणों का स्पर्श उन्हें स्वर्णिम हंस का स्वरूप प्रदान करता है और इस प्रकार वायु द्वारा प्रेरित होकर बादल आकाश में विचरण करते है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में वसन्तागमन और सूर्योदय के दृश्यों के साथ बादलों के रूप-साम्य का प्रतिपादन स्वाभाविक और रोचक है।

(२) भारतीय जीवन और साहित्य में उदयाचल का विशेष महत्त्व माना गया है। वस्तुतः यहीं से सूर्य अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। प्रभातकालीन सूर्य की किरणें प्रकृति के कण-कण को स्वर्णिम आभा से भर देती हैं। उस समय आकाश के बादल भी सुनहले दिखाई देते हैं, जिन्हे कवि ने हंस का स्वरूप देकर आकर्षक बना दिया है।

अलंकार—(i) 'व्योम-विपिन', 'अनिल-स्रोत'—रूपक।
(ii) 'करते द्रुत····· से बात'—मानवीकरण।
(iii) गिर तमाल तमके से पात—उपमा।

धीरे-धीरे संशय ······························द्रुत चारों ओर।

शब्दार्थ—संशय=भ्रम; शक। अपयश=अपकीर्ति। अछोर=किनारों के बिना। भृकुटि=भौंह। विप्लव=क्रान्ति।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों को मानव की भावनाओं का सादृश्य देकर चित्रित किया है। एक ओर बादलों में कोमल भावना है तो दूसरी ओर उनमें संहार और क्रान्ति की कठोरता का भी समावेश है।

व्याख्या—जिस प्रकार किसी व्यक्ति में शंका की भावना का उदय हो तो वह धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है। बादल भी आकाश में धीरे-धीरे एकत्र होकर बढ़ते जाते है। अपकीर्ति बहुत शीघ्र फैलती है, उसी प्रकार कभी-कभी बादल भी अचानक उमड़कर अनन्त आकाश में व्याप्त हो जाते हैं। यदि किसी के हृदय में मोह जाग उठे तो वह रातदिन तरह-तरह की लालसाओं के रूप में बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि और कुछ भी अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार आकाश के हृदय में मोह रूप से अंकुरित होकर बादल अहोरात्र विकसित होते जाते है। मनुष्य चिंतित हो तो उसकी पलकें झुक जाती है, बादल भी चिन्ता की गम्भीरता के समान आकाश में मौन भाव से झुके रहते है। इन्द्रधनुष बादलों की चिन्ताग्रस्त भौहों का ही रूप है। तभी मन से भय जागता है तो भावी-क्रांति अथवा संहार से डरकर बादल घनघोर ध्वनि करके चारों ओर फैल जाते हैं।

विशेष—(१) प्रकृति का मानवीकरण तथा अमूर्त का मूर्त विधान छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। प्रस्तुत पद्यांश में इन दोनों का सफल निर्वाह किया गया है। संशय, अपयश, मोह, लालसा आदि अमूर्त्त भावों को प्रकृति के माध्यम से मूर्तिकरण करने में यह पद्यांश पंतजी की प्रतिभा का परिचायक है। आकाश पर चेतना का आरोप मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण है।

(२) बादलों का वर्णन करते हुए मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति जीवन की व्यावहारिकता तथा मनोविज्ञान के सर्वथा अनुकूल है। कवि पंत केवल जड़ प्रकृति के चितेरे ही नहीं, मानव-प्रकृति के भी अद्भुत पारखी हैं।

अलंकार—(i) धीरे-धीरे—वीप्सा।
(ii) फैल लालसा-से—अनुप्रास।
(iii) व्योम भृकुटि—रूपक।

पर्वत से लघु...............................ही-से निस्सार।

शब्दार्थ—लघु=छोटा। काल चक्र=समय की गति। जलधर=बादल। सेतु=पुल। विलीन=लुप्त होना। विभव-भूति=सांसारिक ऐश्वर्य। निस्सार=निरर्थक।

प्रसंग—प्रस्तुत प्रसंग मे बादलों के विविध रूपों की अवतारणा करते हुए कवि ने जीवन की परिवर्तनशीलता और निस्सारता का संकेत किया है।

व्याख्या—जीवन की परिवर्तनशीलता, क्षणिकता और निस्सारता का परिचय देते हुए बादल कहते है कि कभी तो वे महान् पर्वत से धूलि के छोटे कण

हो जाते है और कभी एक लघु और अस्पष्ट से धूलिकण से पर्वत के रूप में प्रकट हो जाते हैं। समय की गति विधाता की शक्ति है, उसी के आधीन बादल चढ़ते और गिरते हुए कभी बादल और कभी जलधारा के रूप में परिणत होते रहते हैं। कभी तो हवा में महलों के आकार में दिखाई देते हैं तो कभी उस नीले सागर से पार जाने के पुल के समान हो जाते है। इस प्रकार विविध रूपों में बनते और बिगड़ते हुए समाप्त हो जाते है जैसे सांसारिक धन-सम्पदा, ऐश्वर्य आदि एक दिन केवल नाम-शेष रह जाते है।

विशेष—(१) छायावादी कवि आस्तिक-दार्शनिक होने के कारण भौतिक जगत् को नाशवान् मानता है। उसके मत में तो वह अदृश्य शक्ति ही विश्व के कण-कण का संचालन करती है। बादल छोटा है या बड़ा, कोमल-आकर्षक है अथवा भयंकर-कठोरता से परिपूर्ण—उसकी संचालिका शक्ति कोई और ही है। पंतजी ने जीवन की परिवर्तनशीलता अथवा निस्सारता का वर्णन स्वाभाविक सरलता से किया है।

(२) इस पद्यांश में प्रकृति चित्रण उपदेशात्मक-प्रवृत्ति के अनुसार किया गया है।

नग्न गगन की.......................... ....हिमजल डाल।

शब्दार्थ—नग्न=नंगा, निर्मल। अम्बर=आकाश। पतंग=सूर्य; पतंगा। त्वरित=शीघ्रता से। द्रवित=पिघलकर। उत्ताल=ऊँचा; तीक्षण। आतप=धूप। हिमजल=ओसकण।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में आकाश को वृक्ष, सूर्य को पतंगा तथा बादल को मकड़ी का जाल मानकर कवि ने बादलों के सौन्दर्य का चित्रण किया है।

व्याख्या—जिस प्रकार किसी शून्य वृक्ष की डालियों पर मकड़ी अपना जाल बुनकर कीट-पतंगों को उलझा लेती है, उनकी गति-विधि को अवरुद्ध कर देती है, उसी प्रकार बादल आकाश रूपी वृक्ष, जिस पर कोई टहनी अथवा पत्ता नही, पर उड़ते हुए सूर्य को घेर लेते हैं। बादलों की शक्ति सूर्य जैसे तेजस्वी, पराक्रमी को भी उलझा सकती है किन्तु बादल इतने कठोर ही नहीं। समय आने पर वे सूर्य को घेर लेते हैं और जब देखते हैं कि धरती पर ग्रीष्म की भयंकरता के परिणाम स्वरूप कोमल सुगन्धित कलियाँ धूप में मुरझा रही हैं तो करुणा

से द्रवित होकर बादल अत्यन्त शीघ्रता से धरती पर शीतल जल बरसा कर उन मूर्छित कलियों को जाग्रत करते हैं।

विशेष—(१) 'नग्न गगन' कहने से स्वच्छ निर्मल आकाश तथा फूल-पत्तों से रहित वृक्ष का सादृश्य भावपूर्ण तथा अर्थबोधक हो गया है। वस्तुतः ऐसे वृक्ष पर ही मकड़ी का जाल बुना जाता है जिसमें कीट-पतंग आदि पकड़ने सरल होते है।

(२) पहले छन्द में बादलों की तेजस्विता व्यंजित हुई है तो दूसरे छन्द में उनकी अपार करुणा की अभिव्यक्ति हुई है। पृथ्वी पर ग्रीष्म के आधिक्य से कलियाँ मुरझाती हैं तो बादलों का करुणा जल ही उन्हें नवजीवन देता है। वैसे भी धरती जितनी तपती है वर्षा भी उतनी शीघ्र आती है। इस प्रकार प्रकृति के सहज व्यापार में—जीवन की भावात्मकता का वर्णन करने में कवि को सफलता मिली है।

अलंकार—(i) पतंग (सूर्य और पतंगा)—श्लेष।
(ii) 'त्वरित, द्रवित होकर उत्ताल'—अनुप्रास।

हम सागर के..............................**पावक के तूल।**

शब्दार्थ—धवल=श्वेत। वारि=जल। वसुधा=पृथ्वी। सलिल=जल।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बादलों की व्यापकता, शक्तिमत्ता का वर्णन किया है। बादल प्रकृति के कण-कण में अपनी ही सत्ता का बखान करते हुए कहते है।

व्याख्या—हम समुद्र की मधुर और उन्मुक्त हंसी है। जल का धुँआ, आकाश में उड़ने वाली धूलि, वायु से बनने वाली जल की फेन, प्रभातकालीन पल्लवों की लालिमा, जल को ढकने वाले वस्त्र और पृथ्वी के मूलाधार हैं। हम ही आकाश में पृथ्वी और पृथ्वी पर आकाश रूप मे अवतरित होते है। बादल अपने को जल की भस्म, वायु का पुष्प, जल में थल, थल में जल का आभास दिलाने वाले मानते है। दिन में अधकार फैलाने वाले और अग्नि की रूई से प्रतीत होने वाले बादल ही है।

विशेष—प्रस्तुत पद्यांश में सर्वत्र परस्पर विरोधी वस्तुओं का साथ दिखाई देता है। वास्तव में अपने लाक्षणिक प्रयोगों से यह छन्द अर्थ गाम्भीर्य और चित्रमयता से बहुत उत्तम है। बादलों का जन्म सागर से होता है, इसलिए

सागर पर उड़ने वाले बादल हँसते हुए दिखाई देते है। जल ही वाष्प होकर बादल बनता है, इसलिए जल को धुंआ कहा गया है। आकाश में आंधी की धूल के समान वाष्प-कण बिखरे रहते हैं। वायु की गति के अनुसार ही जल में फेन उठती है, बादल भी उसी का प्रतिरूप हैं। प्रभातकाल मे बादल भी वैसे ही लालिमा युक्त होते है जैसे प्रभातकाल की लाल कोंपलें होती है। जल को अपने में ढक लेने वाले बादल उसके वस्त्र ही है और बादलों के बिना पृथ्वी पर कुछ उत्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए बादलों को पृथ्वी का आधार बताया गया है। बादलों के कारण आकाश में पृथ्वी पर आकाश का आभास होने लगता है। जल भस्म होकर बादल बनता है और वायु बादलों को फूलों के समान बिखेर देती है। इस प्रकार दिन में भी घोर अंधकार फैलाने वाले बादल लाल होने पर ऐसे लगते है जैसे अग्नि की रूई का ढेर हो। इस प्रकार कवि ने बादलों के सभी स्वरूपों और कार्य-व्यापारों का प्रस्तुत पद्यांश में जो प्रतिपादन किया है, उसमें कवि की सूक्ष्म दृष्टि और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य का परिचय मिलता है।

व्योम बेलि·····································की कल्पना महान्।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश। अचल=पर्वत। ज्योत्सना=चांदनी। पांशुल=धूलिभरा।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में बादलों के विविध रूपों और व्यापकता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या—बादल आकाश की वेल के समान उसी में पनपकर उसे ही ढक लेते हैं। बादलों की गतिशीलता के साथ ही वे अचल और स्थिर तारे चलते हुए प्रतीत होते है। आकाश-मण्डल में गीत की मादकता के समान व्याप्त होने वाले बादल ही है। चन्द्रिका-स्नात रात्रि में मेघ-खण्ड उड़ते हुए हिमखण्ड प्रतीत होते है। यही तो चन्द्रमा की सवारी है। जिस प्रकार एक ग्वाला अपनी गायों को इधर-उधर हाँकता फिरता है, उसी प्रकार बादल भी वायु रूपी ग्वाले की गाय है। थका-हारा सूर्य भी दिनभर के परिश्रम की धूल बादलों की छाया में झाड़ता है। बादल जल और अग्नि दोनों पर छाकर उन्हें सहारा देते हैं। बिजली में जल और अग्नि दोनों का मिश्रण रहता है। आकाश रूपी आँख की पलक बादल ही है और एक अनन्त सागर के समान इस व्यापक

आकाश में बहते हुए बादल पृथ्वी के छोटे-छोटे खण्ड अथवा जलपक्षी से दिखाई देते हैं।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा अपनी काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। इस प्रसंग में प्रयुक्त शब्दों का सामान्य अर्थ न लेकर लाक्षणिक अर्थ अथवा भाव-सकेत को ग्रहण करने से ही इसका वास्तविक रसास्वादन हो सकता है।

(२) समास-शैली के कारण भावों में दुर्बोधता आ गई है।

(३) भाषा का सहज प्रवाह द्रष्टव्य है।

(४) प्रकृति का मानवीकरण किया गया है।

(५) अलंकार—(i) 'चलते अचल', 'बहते थल'—विरोधाभास।

(ii) सम्पूर्ण पद में उल्लेख।

....

मुसकान

कविता परिचय—'मुसकान' कविता का रचना-काल सन् १६२२ है। यह कविता रहस्यभावना परक है। इसमें कवि ने स्वयं पर मुग्धा नायिका का आरोपण किया है। उसका प्रियतम है व्यापक ब्रह्म। उसके साथ स्थापित माधुर्य सम्बन्ध उसकी मुसकान का कारण बनता है। यही प्रतिपाद्य रहस्य-भावना का विषय है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी रहस्यवाद की परिभाषा में इसी माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति की है। वह लिखते हैं—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नही रह जाता।"

कहेंगे क्या..यह मुसकान

शब्दार्थ—ध्यान=सोच; विचार; स्मरण।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने स्वयं पर मुग्धा नायिका का आरोपण किया है। उसका प्रियतम है व्यापक ब्रह्म! उसके साथ स्थापित माधुर्य सम्बन्ध उसकी मुसकान का कारण बनता है। यही मुसकान उसका प्रतिपाद्य विषय है।

व्याख्या—कवि मुग्धा नायिका के रूप में अपनी सखी से कहता है कि प्रियतम का तनिक-सा संकेत पाकर मैं अनायास खिल उठती हूँ। प्रेम के नये भाव मेरे मुख पर झलकने लगते हैं। मै अनायास ही मुस्करा पड़ती हूँ। परन्तु कभी-कभी इस बात का ध्यान आता है कि लोग मुझे इस अवस्था में देख लेंगे तो क्या कहेंगे। यह विचार आते ही मैं अपनी स्मित पर अधिकार करने का प्रयत्न करती हूँ। किन्तु सखि, यह मुस्कान तो मेरे लाख रोकने पर भी नहीं रुकती।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियाँ रहस्यवादी हैं। प्रियतम ब्रह्म है जिसमें पुरुष-भाव का आरोपण और कवि द्वारा स्वयं में स्त्री-भाव का आरोपण किया गया है।

विपिन में पावस..............................हैं मुझे निदान

शब्दार्थ—विपिन=वन; जंगल। दुराव=छिपाव; छल। नादान=छल रहित। निदान=अन्ततः।

प्रसंग—सखि प्रियतम-संकेत पाते ही मुसकरा उठने की बात कहती है। जग की भी चिन्ता है, किन्तु प्रियतम और उसके प्रेम के समक्ष विवश स्वयं को रोक नहीं पाती। प्रस्तुत पंक्तियों में इसी भाव की व्यंजना की गयी है।

व्याख्या—प्रियतम को देखते ही मेरे हृदय में नित ही सौ-सौ कोमल भाव उदित हो जाते है, वैसे ही जैसे वन में वर्षा ऋतु में दीपकों के समान असंख्य जुगनु प्रकाशित होते है। वे खद्योत छिपाये नही छिप सकते, इसी प्रकार मेरे हृदय में उदित हुए भाव भी छिपाये नहीं छिपते। मै तनिक भी अपने इन भावों से दुराव-छिपाव नहीं रख पाती। ये मुझे आखिर कल्पना के छल विहीन बच्चों की भांति हँसा ही देते है।

विशेष—(१) कल्पना के रंग मोहक होते हैं। नायिका के मन के भाव भी उसकी कल्पना के शिशु हैं। शिशु इसलिए कि प्रियतम को देखते ही उनका जन्म होता है। ये शिशु नायिका को प्रसन्न करने वाले है।

(२) भाव और कल्पना के ये शिशु एक अद्‌भुत तारतम्य प्रस्तुत करते हैं।

(३) अलंकार—(i) 'पावस के-से दीप'—उपमा।
(ii) 'सौ-सौ—वीप्सा।
(iii) 'सौ-सौ...निदान'—मानवीकरण।

ध्वनि-सौन्दर्य का बोध हुआ, जिसके माध्यम से कवि की कल्पना शब्दों में साकार होकर सभी को मन्त्र-मुग्ध करने लगी।

'मौन निमन्त्रण' को कुछ विद्वान् रहस्यवादी कविता मानते हैं। वस्तुतः प्रकृति के अपार सौन्दर्य और मोहकता से कवि विस्मित होता है। वह जड़ प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उसके पीछे अज्ञात शक्ति की कल्पना कर लेता है। जिज्ञासा-वृत्ति में प्राकृतिक रहस्य को जानने की आकुलता ही तो रहस्यवाद की प्रथम कड़ी है। प्रस्तुत कविता में भी कवि किसी अज्ञात ध्वनि, संगीत अथवा सौन्दर्य की कल्पना करते हुए विविध चित्रों की सृष्टि करता है। सम्पूर्ण कविता में सौन्दर्य सुषमा की व्यापकता और शब्द-चयन की अनुकूलता के साथ ध्वन्यात्मकता का अपूर्व समन्वय हुआ है। इसे छायावादी काव्यधारा की एक प्रमुख कविता माना जाता है।

स्तब्ध ज्योत्स्ना में..............................मुझको मौन।

शब्दार्थ—स्तब्ध=स्थिर; शान्त। ज्योत्स्ना=चांदनी। चकित=हैरान। निमन्त्रण=बुलावा।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने चन्द्रिका-स्नात रात्रि के सौन्दर्य से अभिभूत अपने मन की जिज्ञासा को व्यक्त किया है।

व्याख्या—जिस समय सम्पूर्ण संसार चन्द्रिका की नीरवता तथा स्निग्धता को देख-देखकर इस प्रकार चकित हो रहा था, जैसे कोई नादान शिशु किसी भी सुन्दर तथा नवीन वस्तु को देखकर आश्चर्य कर रहा हो। जब विश्व अपनी पलकें बंद कर सो रहा था और निद्राकाल में उसकी पलकों में अनेक प्रकार के मधुर और सुकुमार स्वप्न घूम रहे थे, जब सारा संसार मधुर स्वप्नों में खोया हुआ था, उस शांत वेला में न जाने कौन-सी शक्ति मुझे नक्षत्रों की चमक के सकेत से चुपचाप अपने पास पहुँचने का निमन्त्रण दे रही थी।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में चाँदनी रात की नीरवता तथा सुन्दरता का चित्रण करते हुए कवि ने संसार को उसके सौन्दर्य में सम्मोहित नादान बालक माना है। 'स्वप्न अजान' शब्द में सोये हुए संसार पर प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रभाव अंकित किया गया है। व्यक्ति के जीवन में निद्रा अवस्था ही सुखद होती है, क्योंकि उस काल में ही वह अपने मन के स्वप्नों को समझ सकता है। वातावरण के आकर्षण से जिज्ञासा की उत्पत्ति स्वाभाविक रूप में ही यहां अभिव्यक्त हुई है।

(४) अलंकार—(i) स्तब्ध ज्योत्स्ना······नादान—विशेषण विपर्यय।
(ii) शिशु-सा नादान—उपमा।
(iii) विश्व के पलकों ·····अनजान-विरोधाभास।

सघन मेघों का ·······························करता तब मौन।

शब्दार्थ—सघन=घना। भीमाकाश=बहुत बड़े शरीर वाला। तमसाकार=अंधकार के रूप वाला। समीर=वायु। प्रखर=तीक्ष्ण। तपक=चमक। तड़ित=विद्युत। इंगित=संकेत।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने वर्षाकालीन रात्रि का चित्रण करते हुए उसमें बिजली के आकर्षण का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है।

व्याख्या—जब घनघोर काले बादल अपने भीमाकार में गर्जना करते हुए संसार पर छा जाते हैं, विश्व अंधकार की गहराइयों में निमज्जित हो जाता है। उस घनघोर अंधकार और गम्भीर गर्जना के भयावने वातावरण में तीव्र गति से चलती हुई वायु भी संघर्ष करती हुई गहरे श्वांस छोड़ती है और जब बादलों से मूसलाधार वर्षा होने लगती है, ऐसे भयावने समय में भी न जाने कौन-सी अज्ञात शक्ति बिजली की चमक के रूप में संकेत करती हुई पथ-प्रदर्शित करती है। जब चारों ओर अंधकार, गर्जना, वायुवेग तथा वर्षा की विभीषिका व्याप्त होती है, उस समय भी कोई शक्ति अपने सौन्दर्य और आकर्षण की मोहकता दिखाकर बरबस अपनी ओर खींचती है। वह शक्ति कौन है—इसे जानने के लिए कवि की आत्मा आकुलता से भर जाती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में अंधकारपूर्ण बरसाती रात और उसकी विभीषिका का चित्रण करते हुए कवि की शब्द-योजना पूर्णतया सफल है। भीमाकाश, तमसाकार, पावस-धार आदि शब्दों में बादलों की गम्भीरता ध्वनित होती है, तो तपक तड़ित में बिजली की गति और ध्वनि को साकार किया गया है।

(२) अलंकार—(i) 'मेघों की भीमाकाश गरजता है—मानवीकरण।
(ii) 'दीर्घ भरता समीर निश्वास'—मानवीकरण।
(iii) 'सघन मेघों', 'तपक तड़ित'—अनुप्रास।
(iv) 'तमसाकार'-सभंग श्लेष।

देख वसुधा का·······························भेजता मौन।

शब्दार्थ—वसुधा=पृथ्वी। मधुमास=वसन्त। विधुर=अकेला, उदास। मृदु=कोमल। उद्गार=भाव। सोच्छ्वास=उच्छ्वास भरते हुए। सौरभ=सुगन्धि।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रकृति और प्रेम का सजीव चित्र अंकित करते हुए उसके प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट की है।

व्याख्या—जिस समय धरती अपने यौवन में भर जाती है—नारी में यौवनोन्मेष होने पर उसके प्रत्येक अंग में नवीनता उभर आती है। यौवन भार से उसका किशोरी रूप अथवा चांचल्य दब जाता है, एक अद्भुत शालीनता उसके शरीर को घेर लेती है, इससे उसके सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है और उसके रूप-सौन्दर्य से आकृष्ट होकर नायक उसके चारों ओर मंडराने लगता है। उसी प्रकार पृथ्वी पर लता, पुष्प, कलि और कोंपलों का विकास होता है तो धरती का सौन्दर्य निखर उठता है। नायिका में यौवन का विकास देखकर नायक मधुमास भी अपनी भावनाओं की मधुर गुंजार करने लगता है। ऐसे मिलन के समय सभी पुष्प अपनी सुगन्धि बिखेरते हुए खिल पड़ते हैं। जिस प्रकार किसी का दुखी मन वाह्य वातावरण के सौन्दर्य को देखकर अपने मनोद्गारों को आहों में व्यक्त करता है उसी प्रकार नायक वसन्त और नायिका पृथ्वी के संयोग के समय फूल भी सुगन्धि विकीर्ण करने लगते हैं। ऐसे समय में न जाने कौन-सी अज्ञात शक्ति सुगन्धि के बहाने मेरे पास अपना मधुर संदेश भेजती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने नायक और नायिका के प्रकृति की प्रेम भावना को व्यक्त किया है। यह प्रेमभावना अपनी मोहकता अतीन्द्रियता और भावुकता की दृष्टि से रीतिकालीन विलासी जीवन से सर्वथा भिन्न है। प्राकृतिक उपकरणों में प्रेमाभिव्यक्ति अपने आप में अत्यन्त प्रांजल रूप में प्रतिपादित हुई है।

(२) इस पद्याश में प्रकृति का चित्रण ऐसे रूप में चित्रित हुआ है, जहाँ किसी प्रकार की कृत्रिमता का लेश नहीं है।

अलंकार—(i) 'विधुर उर के-से मृदु उद्गार'—उपमा।

(ii) 'वसुधा', 'मधुमास', 'कुसुम', 'सौरभ'—मानवीकरण।

क्षुब्ध जलशिखरों के ....बुलाता मौन।

शब्दार्थ—क्षुब्ध = क्रुद्ध। जलशिखरों = लहरो। वात = वायु। बिथुरा = बिखेरना।

प्रसंग—प्राकृतिक सौन्दर्य से मिलने वाले मौन-निमन्त्रण के विभिन्न रूपों

का चित्रण करते हुए कवि ने प्रस्तुत पद्यांश में समुद्र का दृश्य प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—जब वायु जल की उत्ताल तरंगों से समुद्र को फेन से भरपूर बना देती है, तो उस समय संख्यातीत बुलबुलों का एक व्याकुल संसार बन जाता है। वायु ही बुलबुलों की सृष्टि करती है और फिर उन्हें बिखेर देती है। इस प्रकार जब चारो ओर नाश और निर्माण का क्रम चलता हुआ कण-कण में अस्थिरता और बेचैनी का संचार करता है, उस समय कोई अनजानी शक्ति अपनी लहरों के हाथ उठाकर अपनी ओर आकृष्ट करती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में वायु पर चेतना का आरोप करके कवि ने पारिवारिक कार्यकलाप की 'अति' स्वाभाविक कल्पना की है। जिस प्रकार कोई गृहिणी मथानी से दही मथती है तो वहाँ झाग उत्पन्न होते है। झाग में बुलबुलों का संसार बनता-मिटता रहता है। वायु को नायिका, जलशिखरों को मथानी और समुद्र को मथने का रूपक अपने आप में स्वाभाविक सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

(२) सागर की लहरें क्षुब्ध हों तो उसे देखकर जीवन में निराशा, भय, अस्थिरता की आशंका का उठना स्वाभाविक है, किंतु उस अगाध और गहन नीलिमा में यदा-कदा ऊपर उठकर लहर बरबस ही किसी को आकृष्ट कर लेती है, इसी भावना को प्रस्तुत पद्यांश में चित्रित किया है।

(३) अलंकार—(i) 'वायु' और 'लहर' में चेतना का आरोप होने से मानवीकरण।
(ii) बना-बिथुरा देती अज्ञात—विरोधाभास।
(iii) 'बना बिथुरा', 'कौन···मौन'—अनुप्रास।

स्वर्ण सुख श्री..................................तब मेरे मौन।

शब्दार्थ—स्वर्ण=सुनहला। श्री=शोभा। भार=प्रभात। विहग=पक्षी। अलस=आलस्य भरी।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में प्रातःकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। अपने आनन्द और मस्ती के आलस्य में बंद पलकें खुलने पर कवि आश्चर्यचकित होकर पूछने लगता है।

व्याख्या—जब प्रभातकालीन स्वर्णिम आभा विश्व-जीवन को सभी प्रकार के सुख-आनन्द, उल्लास, शोभा, सम्पत्ति आदि में निमग्न कर देती है, उस मादक वातावरण में पक्षियों के मधुर संगीत की ध्वनि धरती और आकाश के

अंतर को मिटा देती है। उस समय न जाने कौन आकर आलस्य और मस्ती में बंद पलकों को चुपचाप खोल देता है। प्रभात की किरणों के साथ ही अंधकार, अकर्मण्यता और निष्क्रियता की कालिमा समाप्त हो जाती है। नवजीवन की प्रेरणा देने वाला अनुराग-उल्लास विश्व-जीवन को गतिशीलता-चेतना प्रदान करता है। सौरभ सनी वायु के साथ ही पक्षियों का कलरव प्रारम्भ हो जाता है, जो सम्पूर्ण आकाश को आच्छादित कर लेता है। ऐसे समय में पुष्प और कलियाँ अपनी आँखों को खोलती है, मानव भी निद्रा त्याग करता है, जिसे देखकर कवि चकित होकर उसके कर्त्ता को जानने की जिज्ञासा प्रकट करता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में छायावादी काव्य की प्रमुख विशेपता—लाक्षणिक प्रयोग का उत्तम स्वरूप मिलता है। प्रभातकालीन वातावरण का चित्रण करते हुए स्वर्ण, श्री, सौरभ तथा विहगकुल एक ओर तो दृश्य की स्वाभाविकता प्रतिपादित करते है तो दूसरी ओर इनमें आशा, विश्वास, उल्लास, और चेतना आदि लाक्षणिक अर्थों की अभिव्यक्ति होती है, जिनसे दृश्य के वाह्य रूप के साथ उसके भाव सौन्दर्य में भी अभिवृद्धि हुई है।

(२) अलंकार—(i) 'स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ—अनुप्रास।

(ii) 'भोर' और 'विहगकुल के कल कण्ठ'—मानवीकरण।

तुमुल तम··· ·····························**दिखलाता तब मौन।**

शब्दार्थ—तुमुल=घनघोर। भीरु=डरपोक। तन्द्रा=निन्द्रा। खद्योतों=जुगनुओं।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने अंधकारपूर्ण रात्रि की विभीषिका में जुगनुओं की चमक और सौन्दर्य के आकर्षण को देखकर जिज्ञासा प्रकट की है।

व्याख्या—जब रात्रि के घोर अंधकार में सम्पूर्ण संसार के नाना रूप, गुण, नाम आदि की विविधता लुप्त हो जाती है। कहीं कोई वस्तु अपने वास्तविक रूप में दिखाई नही देती, केवल कालिमा और अंधकार का ही अस्तित्व रहता है। लगता है जैसे सम्पूर्ण संसार अंधेरे की चादर ओढ़कर निद्रा-निमग्न हो गया हो। ऐसे नीरव वातावरण में केवल झींगुर की झंकार अपनी तीखी आवाज से निद्रा के तारों को भी हिला देती है। वातावरण में सन्नाटा वढ़कर भय का का संचार कर रहा होता है, उस समय न जाने जुगनुओं के प्रकाश और सौन्दर्य से कौन सी शक्ति आकर चुपचाप अपनी ओर आकृष्ट करने लगती है।

विशेष—(१) अंधकारपूर्ण रात्रि का चित्रण करते हुए कवि ने नीरवता

और भयातुरता के संकेत से उसे और भी प्रभावोत्पादक बना दिया है। अंधकार में किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व दिखाई नहीं देता। झींगुर की झंकार प्रायः नीरव और निर्जन स्थानों पर सुनाई देती है, उसे सुनकर मन में जो कम्पन-सा होता है, उसे कवि ने बड़ी कुशलता से 'कंपा देती तन्द्रा के तार' में व्यक्त किया है। खद्योतों का प्रकाश केवल सौन्दर्य का आकर्षण प्रस्तुत नहीं करता, अपितु अंधकार की गहनता को ही प्रकट करता है जबकि आंखों से समक्ष प्रकाश की रेखा आकर अंधकार को और भी गहरा कर देती है।

अलंकार—(i) 'तुमुल तम', 'झींगुर कुल की झंकार', 'तन्द्रा के तार' अनुप्रास।

(ii) ऊंघता एक साथ संसार—विशेषण विपर्यय।

कनक छाया में..दृग मौन।

शब्दार्थ—कनक=स्वर्ण। सकाल—प्रभात। सुरभि—सुगन्धि। दृग=नेत्र।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रभातकालीन सौन्दर्य और सरसता के साथ-साथ करुणा का अत्यन्त मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—रात्रि व्यतीत होने के साथ ही चारों ओर स्वर्णिम आभा व्याप्त हो जाती है। अरुणोदय के साथ ही किरणें कण-कण को सुनहलेपन से प्लावित कर देती है। उसका स्पर्श पाकर कलियाँ अपने हृदय द्वार खोलती है, पुष्प खिलते है, और बीती रात में जो भ्रमर रसपान करते हुए पुष्पों में बंदी हो गये थे, वे बाहर आकर गुंजार करने लगते हैं। अपने बंदी जीवन की करुण-गाथा कहने के लिए उनमें जो तड़प उठती है, वही गीत का गुंजार बन जाती है। वैसे भी कलियों के चटकने और फूलों के खिलने-से वातावरण सौरभमय हो जाता है और उसका रसास्वादन करने के लिए व्याकुल भ्रमर उन पर गूंजने लगते हैं। वातावरण में करुणा, सौन्दर्य और आनन्द का अदभुत समन्वय हो जाता है। उस समय पत्तों पर पड़ी ओस की बूंद आंसू के समान ढुलक कर न जाने कौन अपनी ओर ध्यान खीच लेता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में प्रभातकालीन सौन्दर्य तथा उसकी रागात्मकता की वृद्धि [illegible] ले सभी तत्वों का चित्रण करने में पंत जी की सूक्ष्म-**दर्शिता** तथा दृ[illegible] की क्षमता दर्शनीय है। कलि को नायिका और भ्रमर **को** नायक का[illegible] वि ने उनके प्रेम-व्यापार का चित्रण स्वाभाविक और **सरसता** के सा[illegible]

अलंकार—(i) 'प्रभात', 'कलि'—मानवीकरण।
(ii) कनक छाया में जबकि सकाल—अनुप्रास।

बिछा कार्यों का ································जग में कौन।

शब्दार्थ—गुरुतर=भारी। सुवर्ण=सुन्दर। अवसान=समाप्ति। श्रमित=थका हुआ। जुड़ाता=शान्त करना। आकुल=बेचैन। छाया-युग=स्वप्नों की दुनिया।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने संध्याकाल का चित्रण करते हुए मानव-जीवन के कार्य कलापों का संकेत और भावनाओं का सौन्दर्य दिखाया है।

व्याख्या—जब दिन भर तपने के पश्चात् अनेक प्रकार के संघर्ष करते हुए दिन का अन्त हो जाता है, सूर्य, संध्या-सुन्दरी की क्रोड़ में जाकर मानसिक शाँति का अनुभव करता है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति दिनभर तरह-तरह के कार्य करता हुआ, थका-हारा, श्रमित एवं संतप्त होने पर संध्याकाल घर लौटता है। जिस प्रकार सूर्य आकाश रूपी शैय्या पर विश्राम करता है, वैसे ही मानव अपनी शून्य शांत शैय्या पर लेटकर अपने मन को शांत करने का प्रयास करता है। ऐसी थकी-हारी अवस्था में वह कौन-सी शक्ति है जो मुझे स्वप्नों में आकर उस लोक में फिराती रहती है, जहाँ दिन के यथार्थ संघर्षों को भुला देने वाले मोहक और आकर्षक दृश्यों की भरमार रहती है। ऐहिक संघर्षों, संतापों तथा अभावों को भुला देने वाले जगत का सृष्टा कौन है ?

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में प्रकृति-सौन्दर्य के साथ-साथ मानव-जीवन की वास्तविकता का संकेत भी अत्यन्त स्वाभाविक है। 'पल्लव' काल में कवि प्रकृति सौन्दर्य और प्रेम सौन्दर्य से आगे बढकर मानव-जीवन की सत्यता को जानने के लिए भी प्रयत्नशील हुआ था। प्रस्तुत पद्यांश में जीवन के यथार्थ संघर्ष और उन्हें भुला सकने वाले स्वप्न लोक का संकेत कवि की जीवन दृष्टि को भी प्रकट करता है।

(२) स्वप्न आकर्षक होते हैं, मन को आनन्दातिरेक प्रदान करते हैं किन्तु जीवन की कठोर व्यावहारिकता मे उनकी विषमता का पूर्ण परिचय मिल जाता है।

अलंकार—(i) 'शून्य शय्या', 'दिवस को दे'—अनुप्रास।
(ii) शून्य—श्लेष।
(iii) बिछा कार्यों···प्राण—रूपक।

न जाने कौन.............. ....**तुम हो कौन ?**

शब्दार्थ—द्युतिमान=प्रकाशवान। अबोध=अनजान। छिद्रों=रोम-रोम। सहचर=साथी।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि उस अज्ञात, ईश्वरीय सत्ता के प्रकाशमान स्वरूप को जानने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है। सुख-दुःख में सदा साथ रहने वाले को अनिर्वचनीय मानते हुए कवि कहता है।

व्याख्या—हे प्रकाश स्वरूप ! तुम अनन्त शक्ति सम्पन्न हो, कोई भी तुम्हारे रूप-गुण का वर्णन नहीं कर सकता। वस्तुतः वही परम शक्ति जीव को सर्वथा अज्ञानी और अनजान समझकर मार्ग दर्शन करती है। जिस प्रकार अबोध बालक का हाथ पकड़कर उसे मार्ग दिखाया जाता है, ठीक वैसे ही वह करुणामय सभी का ध्यान रखता है। वही मूल प्रेरक शक्ति है जो मानव के रोम-रोम में जीवन के गान भर देती है। वही सुख-दुःख में जीव का एकमात्र साथी है जो चुपचाप रहकर भी सभी कार्य करता है। वह कौन है ? क्या है ? उसे कह सकना कवि के लिए सम्भव नहीं। परमशक्तिवान प्रभु संसार के कण-कण में व्याप्त है, प्रकृति के प्रत्येक अंग का संचालक है, मानव-जीवन की सम्पूर्ण गतिविधि का नियामक है, फिर भी अनिर्वचनीय है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में छायावादी कविता की एक मुख्य विशेषता किसी अज्ञात शक्ति के प्रति जिज्ञासा की अभिव्यक्ति हुई है। प्रत्येक छायावादी कवि प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण करते हुए, उस पर चेतना का आरोप करके मानवीय अनुभूतियों को व्यक्त करते हुए उसके पीछे व्याप्त सत्ता को जानने के लिए आकुल हो उठता है। कवि पंत ने भी प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों का चित्रण करने के पश्चात उस मूल सत्ता को जानने अथवा कह सकने की असमर्थता प्रकट कर दी है। वैसे भी वह तो केवल अनुभूति का विषय है, उसकी अभिव्यक्ति करने में तो सभी असमर्थ ही रहे है।

(२) 'फूंक देते छिद्रों में गान' लाक्षणिक वैचित्र्य के कारण अर्थ-गाम्भीर्य की वृद्धि हुई है। कवि की जिज्ञासा वृति इस कविता की रहस्यवादी धारा की ओर उन्मुख करती है। प्रकृति के पीछे व्याप्त शक्ति को जानने की इच्छा को ही रहस्यवाद का प्रथम सोपान माना जाता है। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत गीत विशेष महत्त्व रखता है।

अनित्य जग

कविता परिचय—'अनित्य जग' कविता कवि पंत के काव्य-संकलन 'पल्लव' में संकलित 'परिवर्तन' नामक कविता का एक अंश है। इसमें कवि क्षणिकवाद एवं संसार की अनित्यता का करुण चित्र प्रस्तुत करता है। 'उसे हास में रुदन, वसन्त में पतझर, जन्म में मृत्यु, भावरों के समय के यज्ञ-कुण्ड में चिता और चाँदनी रात में अन्धकार का भान होता है।'

आज तो सौरभ·············· ·······फिर हा हाकार!

शब्दार्थ—मधुमास=वसन्त। शिशिर=जाड़ा। अकिंचनता=निर्धनता। सिहर=कम्पन। पावस=वर्षा ऋतु। कराल=भयंकर। कंकाल=हड्डियों का ढांचा। कचों=काले बालों। व्याल=सर्प। सिवार=काई।

प्रसंग—विगत गौरव, गरिमा की स्मृति और वर्तमान दुःख, दैन्य की अनुभूति करते हुए कवि का चिन्तन जीवन की वास्तविकता की ओर उन्मुख होता है। चारों ओर अनेक प्रकार के अभावों और अत्याचारों में पिसते हुए समाज की व्यथा को देखकर भावुक कवि का चिन्तन प्रस्तुत पद्यांश में मुखरित हुआ है।

व्याख्या—देश में विनाश, शोषण तथा अभावजन्य पीड़ा और अत्याचारों का ताण्डव देखकर कवि का व्यथित मन प्राचीन वैभव, सम्पन्नता और गुण-गरिमा को मिथ्या कहने लगता है। विगत युग का वैभव दरिद्रता में बदल चुका था, सम्पन्नता अभावों में तड़पती थी, ज्ञान-विज्ञान अज्ञान और अकर्मण्यता में परिणत हो चुका था; इसीलिए कवि कह उठता है कि कल जिस मधुमास की सरसता, वसन्त की शोभा तथा कमनीयता सभी को विमोहित करती थी, आज वह शिखर की सूनी साँसों में बदल गयी है। मधुमास की मादकता में संगीत ध्वनियाँ गुंजित होकर आनन्द प्रदान करती थी, किन्तु शिशिर की ठिठुरती रातों की शून्यता, नीरवता में चलने वाले श्वासों की ध्वनियाँ पीड़ा की वृद्धि ही करती है। वसन्त ऋतु में फल-फूलों से भरी डालियों पर भ्रमर गुंजार करते रहते थे; वृक्ष की डालियाँ अपने ही बोझ से झुक रही थी, सरसता का आस्वादन करने वाले भ्रमरों की गुंजार गीतों की सृष्टि करती थीं, तो वृक्षों की

डालियां यह ध्वनित करती हैं कि जीवन, दुःख और अभावग्रस्त जीवन, एक बोझ मात्र है। सम्पूर्ण प्रकृति अपनी परिवर्तनशीलता के द्वारा जीवन की नश्वरता को ही प्रकट करती है। वर्षाकाल में वेगवती नदी, जो अपनी कल-कल ध्वनि में चलती हुई संसार को जीवन को उद्दाम गति प्रदान करती है, एक दिन सूख जाती है। केवल उसके चिह्न शेष रह जाते हैं। इस नश्वरता में केवल मृत्यु की विभीषिका शेष रह जाती है। जिस प्रकार प्रभात आता है तो एक स्वर्णिम संसार की सृष्टि हो जाती है। चारों ओर अरुणिमा अपनी सरसता का संचार करती है। आनन्द, उल्लास और गतिशीलता से युक्त जीवन अपने में मग्न हो जाता है; किन्तु यह सब क्षणिक ही रहते हैं। संध्याकालीन लालिमा उस सब को जैसे जला देती है। परिणामस्वरूप अंधकार की कालिमा के अतिरिक्त कुछ भी तो शेष नहीं रहता। दृश्यमान जगत के अनेक रूप, नाम आदि मौत की अग्नि में जल कर राख हो जाते हैं।

प्रकृति ही नहीं, मानव-जीवन भी तो नश्वर है। स्त्री और पुरुष के जीवन मे यौवन का उभार आता है, माँशपेशियां अपनी मधुरता से—सुघरता से किसी को भी सम्मोहित करने में समर्थ हो जाती हैं। स्वस्थ-सुन्दर शरीर का शृंगार करते हुए स्त्री अथवा पुरुष उसी के उपभोग अथवा अनुराग में निमग्न हो जाते हैं किन्तु वह भी स्थायी नहीं रहता। कालान्तर में वही शरीर जरा जर्जरित होकर हड्डियों का कंकाल मात्र रह जाता हैं। उसमें शक्तिहीनता के कारण केवल कम्पन होता रहता है। जिन काले-घुंघराले बालों को संवारने-सुलझाने और सजाने में यौवन का वहुत-सा समय व्यतीत हो जाता था, जिनके कालेपन और लम्बाई के कारण प्रेमी जन सर्पो से उसकी तुलना करते थे और करते है; जो बाल यौवन का शृंगार होते हैं वही बुढ़ापे में कांस के ससान श्वेत-रूखे होने के कारण उलझे हुए और काई के समान प्रतीत होते हैं। इन सब से यही ध्वनित होता है कि प्रत्येक वस्तु अथवा व्यक्ति के जीवन में कुछ दिन उल्लास, आनन्द और उन्माद के होते है। अन्त में सभी वीते युग की स्मृतियों में केवल हा-हाकार ही करते रहते हैं। जीवन की परिवर्तनशीलता सभी तत्त्वों प्रभावित करती है। संसार का कोई भी तत्व शाश्वत, स्थायी और चिरन्तन न होने के कारण उदास, दुःखी अथवा व्यथित होता रहता है।

विशेष—(१) पश्चिम के सुप्रसिद्ध दार्शनिक डार्विन ने विकासवाद की

बीता युग अज्ञान, अभाव और अकर्मण्यता का युग था, जिसे मानव अपनी बुद्धि तथा शरीर की शक्ति से पूरी तरह से आगे ले जा रहा है। भारतीय दर्शन के अनुसार, मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा है। कवि पत ने भारतीय दर्शन के अनुसार परिवर्तनशीलता, नश्वरता तथा क्रमिक ह्रास की ही अभिव्यक्ति की है। मृत्यु अथवा परिवर्तन के आघात से संसार का कण-कण, जड़ और चेतन पीड़ित होकर रोता है, दुखी होता है।

(२) अलंकार—(i) 'सौरभ का···सूनी सांस'—अनुप्रास और मानवीकरण।
(ii) 'सन्ध्या की ज्वाल'—विशेषण विपर्यय।
(iii) 'आज पावस···ज्वाल'—दृष्टान्त।

आज बचपन···को भूल।

शब्दार्थ—गात=शरीर। जरा=वृद्धावस्था। नीर=जल। प्रणय=प्रेम। अधीर=व्याकुल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने जीवन की नश्वरता तथा प्रकृति की परिवर्तनशीलता का चित्रण किया है। मानव शरीर की विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से कवि ने जीवन की अनित्यता को सरलता से समझाने का प्रयास किया है।

व्याख्या—शरीर की सुन्दरता सदा नहीं रहती। बचपन का शरीर अत्यन्त कोमल, सुन्दर और मोहक होता है, किन्तु वही शरीर वृद्धावस्था में अनेक प्रकार की व्याधियों को झेलते-झेलते अपने आकर्षण से हीन हो जाता है। बाल्यजीवन का शरीर यदि सरस कोंपल के समान होता है तो बुढ़ापे में वही पतझड़ के पीले पत्ते के समान होता है। बचपन अथवा यौवन का सुख तो चांदनी रात के समान अल्पकालीन होता है और उसके पश्चात् तो निराशा, दुःख तथा अन्धकारपूर्ण बुढ़ापा होता है जिसकी अवधि भी अज्ञात रहती है। बाल्यावस्था अथवा यौवनावस्था में मनुष्य का चेहरा फूल की तरह कोमल और आकर्षक होता है कि नाना प्रकार के संघर्षों, अभावों और व्यथाओं के कारण आंखों से बहने वाले आंसू उनका सौन्दर्य माधुर्य उसी प्रकार समाप्त कर देते है जिस प्रकार शिशिर ऋतु पत्तों और पल्लवों को झुलसकर पीला बना देती है और शरीर की विकृति के कारण वही शरीर अथवा अधर जो रूप-सौन्दर्य की मोह-

ता के कारण कपोलों का चुम्बन करने को आतुर रहते थे, वे ही उसे भूल जाते हैं। रूप-सौन्दर्य का ह्रास होने के साथ जैसे प्रेम-भावना की मादकता-उत्सुकता सब कुछ समाप्त हो जाती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में दार्शनिक गाम्भीर्य को शरीर के सहज व्यापारों के माध्यम से कवि ने अत्यन्त सरलता से प्रतिपादित किया है। मानव और प्रकृति के रूप-सादृश्य के कारण यह वर्णन अत्यन्त सजीव और आकर्षक हो गया है।

(२) 'चार दिन सुखद चाँदनी रात, और फिर अन्धकार अज्ञात' मुहावरे का सार्थक प्रयोग हुआ है।

(३) अलंकार—(i) 'अधर जाते अधरों को भूल'—अनुप्रास, विशेषण-विपर्यय।

(ii) 'शिशिर-सा झर नयनों का नीर'—उपमा।

मृदुल होठों का ······················ ··· · कल्प अपार।

शब्दार्थ—मृदुल=कोमल। हिमजल-हास=शुभ-निर्मल हसी। समीर=वायु। शरदाकाश=बादलों से रहित आकाश; आँखें। कल्प=युग।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में सुख-सौन्दर्य, उल्लास, मिलन आदि की अनित्यता और दु.ख अथवा वियोग की अनन्तता का प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या—बाल्यजीवन की सरलता निश्चितता तथा यौवन के उद्दाम वेग की मोहकता के फलस्वरूप कोमल-मधुर रागारुण अधरों पर इस प्रकार की पवित्र हंसी खेला करती थी जैसे प्रभातकालीन वातावरण में ओसबिन्दु नवीन पल्लवों पर मुस्कराती है। किन्तु जिस प्रकार वायु आकर ओस-बिन्दुओं को गिरा या उड़ा देता है, उसी प्रकार अभाव और वियोग जन्य आहें होठो की मुसकान को समाप्त कर देती है शेष रह जाती है। निराशा जन्य उदासी जिसमें कोई आकर्षण नही होता। जिन आंखों की नीलिमा में कभी सरलता, स्वच्छन्दता एवं अनुराग झलकता था, उन्ही आँखों को वियोग जन्य आँसू घेर लेते हैं। जिस प्रकार शरद्कालान आकाश बादलों से रहित होने के कारण स्वच्छ और मोहक लगता है किंतु उसी में घनघोर बादल उमड़ आने से संपूर्ण मोहकता व्यथा में परिणत हो जाती है। संयोगकालीन मिलन अधरों के माधुर्य का रसास्वादन करता हुआ अघाता नहीं, अधरों के स्पर्श से जैसे अमृतपान होता है किन्तु वियोग के उदास क्षणों में उन अधरों का स्पर्श दूभर हो जाता

है। इस प्रकार जीवन में मिलन, संयोग का सुख तो केवल दो-चार क्षण ही रहता है किंतु वियोग का समय अनन्त और अपार होता है। मिलन घड़ियाँ व्यतीत होने में पता नहीं चलती, किन्तु वियोग के क्षण काटे नहीं कटते।

विशेष—(१) कवि पंत प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य के अनुपम कवि हैं। प्रस्तुत अवतरण मे प्रकृति और मानव का सादृश्य स्थापित करते हुए उन्होंने मिलन, प्रेम और सुख आदि की क्षणिकता को सजीव और साकार कर दिया है। हंसी-हिमजल, भौंहों का शरदाकाश आंखें आदि कहने मे कवि ने रूप और क्रिया का पूर्णरूप प्रस्तुत किया है। यह माना जाता है कि प्रेम में पल युगों में और युग पलों में परिणत हो जाते हैं। इस तथ्य को कवि ने दार्शनिक धरातल देकर और भी सार्थक बना दिया है।

(२) प्रस्तुत अवतरण में लाक्षणिक प्रयोगों से कवि ने भावाभिव्यक्ति की है। हिमजल-हास भौंहों का शारदाकाश, घन आदि शब्द अपने लाक्षणिक अर्थों में अधिक मार्मिक हो गए हैं। 'मिलन के पल केवल दो-चार, विरह के कल्प अपार' में विरह की चिरन्तनता साकार हो उठी है।

(३) ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता के कारण पत जी की भाषा सरल किंतु गूढ़ार्थ बोधक हो गयी है, जिसे समझने के लिए पाठक को कोई कठिनाई नहीं होता।

(४) **अलंकार**—(i) 'हिमजल हास', 'शरदाकाश'— उपमा।
(ii) 'घेर लेते घन घिर गंभीर'— अनुप्रास।

अरे वे अपलक..................चुपचाप बयार।

शब्दार्थ—अपलक=एकटक ; स्थिर। निरुपाय=विवश। ऋण=कर्ज। विपुल=अत्यधिक। छवि=सौन्दर्य। विशाल-विभव=अत्यधिक सम्पदा। विद्युत=बिजली। बयार=वायु।

प्रसंग—परिवर्तन के क्रूर और कठोर हाथों की करुणा-रहित क्रियाओं और उनके परिणाम से क्षुब्ध होकर पंत के भावुक कवि ने जीवन के विविध पक्षों का प्रतिपादन करते हुए प्रस्तुत पद्यांश में जीवन की नश्वरता, सुख-सौन्दर्य तथा वैभव की क्षणिकता का वर्णन किया है।

व्याख्या—मिलन के पश्चात् चिरन्तन वियोग का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि आकर्षण, अनुराग तथा उत्सुकता से आपूर्ण वे आंखें जो किसी से

मिली थी, आँखें चार होने पर प्रेमी और प्रेमिका परस्पर देखते ही रह गये थे। जन्म-जन्मान्तर की खोई सम्पदा को पाकर जैसे उनकी आँखें पलक झपना भूल गयीं थी; किन्तु आज वही आँखें विरह-व्यथा के कारण आठ-आठ आँसू रोती हैं। प्रिय मिलन का कोई साधन न पाकर वे बेबस हो गयी है। सामाजिक बधन अथवा रूढियों में आवद्ध होकर वे परस्पर मिल नहीं पाते, अतः केवल आँसू ही बहाते हैं। मिलन के समय शरीर का रोम-रोम आलिंगन-पाश में बंधकर जीवन का चरम सुख प्राप्त करता था, वियोगावस्था में उसकी स्मृति रोम-रोम में कांटे चुभने की कसक उत्पन्न करती थी। मिलन के क्षणों की प्रत्येक अनुभूति, स्मृति वियोग में केवल वेदना की तीव्रता का कारण बनती है।

यदि सौभाग्य से किसी को सांसारिक वैभव, धन-सम्पत्ति और उससे प्राप्त सुख प्राप्त हो भी जाये तो वह सदा स्थिर नहीं रहता। यह तो ऋण है जो प्रत्येक व्यक्ति को नहीं मिल पाता। कोई भी व्यक्ति दूसरे से ऋण तभी प्राप्त कर सकता है जब देने वाले को यह विश्वास हो जाये कि दिया हुआ धन वापिस मिल जायेगा। इसके लिए भी सजगता आवश्यक है। ऋण में प्राप्त धन अथवा सुख को अपना अधिकार मानकर स्वेच्छाचारिता प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस काल रूपी साहूकार से बच नहीं सकता। कर्जा देकर ब्याज खाने वाला साहूकार सर्वथा निर्मम होता है, उसे किसी प्रकार का संकोच नही होता। वह सभी सुख-साधन ब्याज सहित वापिस लेकर केवल दुःख ही शेष छोड़ जाता है।

भौतिक सम्पत्ति, वैभव और ऐश्वर्य बाह्य रूप से बहुत आकर्षक होता है। नाना प्रकार के मणि-रत्नों का विपुल भण्डार अपनी चमक-दमक में इन्द्रधनुष के समान आकर्षक होता है, किन्तु वैभव की व्यापकता दामिनी की चमक के समान क्षणिक है, जो चमकती है तो चारों ओर प्रकाश विकीर्ण हो जाता है और क्षणभर के पश्चात् वह चमक विलुप्त हो जाती है। शेष रह जाता है घना अंधकार। पुष्पों, पल्लवों, लताओं पर चमकती ओस-विन्दु मोतियों के समान चमकती है किन्तु प्रभातकालीन वायु चुपचाप आकर उन्हें समाप्त कर जाती है। इसी प्रकार काल की गति को कोई जान नहीं पाता। अकस्मात् उसका आक्रमण होता है और सब प्रकार की सुख-सामग्री मिट्टी में मिल जाती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में संयोग-सुख की क्षणिकता और वियोग-दुःख की चिरन्तनता का चित्रण करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है। 'आँखों का चार होना' आदि अनुराग की तन्मयता को साकार करता है तो 'आठ आँसू रोते निरुपाय' में विरह-वेदना को प्रकट किया गया है। संयोग-सुख की स्मृति कांटे जैसी कसक पैदा करती है और मिलन का सुख रोम-रोम को आह्लाद से परिपूर्ण कर देता है। मानवीय भावनाओं की सरस और सहज अभिव्यक्ति करने में यह पक्तियां आकर्षक एवं कलापूर्ण हैं।

(२) काल को निर्मम साहूकार का रूप देकर पंत जी ने सम्पत्ति की मार्मिकता को और मार्मिक बना दिया है। उस काल में पूंजीपतियों, साहूकारों के शोषण से सम्पूर्ण समाज सत्रस्त था। पंत जी ने प्रस्तुत अवतरण मे उसी स्थिति को अपनी भावुकता और दर्शनिकता का पुट देकर चित्रित किया है। भारतीय दर्शन में कर्मवाद और भाग्यवाद दोनों की प्रतिष्ठा रही है। यहाँ स्वीकार किया गया है कि धन, सम्पत्ति आदि पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है किंतु धन पाकर व्यक्ति को अहकार में नहीं आना चाहिए। धन की अस्थिरता को इन्द्र धनुष की तरह आकर्षक, बिजली की चमक के समान मोहक मानते हुए कवि ने उसकी अस्थिरता अथवा क्षणिकता को परम्परागत रूप से प्रतिपादित किया है। कवि प्रसाद ने भी 'सुख चपला से दुख घन में' कहकर इसकी अस्थिरता को व्यक्त किया था। पंत जी ने प्रकृति का सादृश्य देकर अपने कथन को और भी मार्मिक बना दिया है।

(३) अलंकार—(i) 'आठ आँसू", 'सोने के सुख साज'—अनुप्रास।
(ii) 'इन्द्रधनु की छटा'—उपमा।
(iii) 'काल को नही किसी की लाज'—श्लेष।

खोलता इधर जन्म .... उठते उडुगन।

शब्दार्थ—लोचन=नेत्र। मूँदती=बंद करती। हुलास=उल्लास। अवसाद=दुःख। उच्छ्वास=लम्बी सास। अचिरता=क्षणिकता। उडुगन=नक्षत्र।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने जीवन की गतिशीलता का चित्रण करते हुए जन्म और मृत्यु को उस काल-चक्र के दो भाग माना है। सुख-दुःख, आशा-निराशा, अवसाद-उल्लास को जीवन के अंग मानकर कवि ने सम्पूर्ण प्रकृति का करुणासिक्त रूप प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—संसार में जन्म और मरण का खेल साथ-साथ ही चलता रहता है। इसकी गतिविधि बड़ी विचित्र है। यदि एक गृह में कोई जन्म लेता है तो उस घर में सभी प्रकार के आनन्द और उल्लास का वातावरण छा जाता है। नवजात शिशु की आंखें खुलते ही उस परिवार में मस्ती और आनन्द की क्रीड़ाएं प्रारम्भ हो जाती है किन्तु उसी समय किसी अन्य स्थान पर मृत्यु किसी के जीवन को अपने में ढक लेती है। जन्म और मृत्यु की यह क्रीड़ा क्षण-प्रतिक्षण चलती रहती है। किस समय क्या होगा, इसका तो किसी को ज्ञान नहीं होता। यदि पहले क्षण कहीं पर आनंदोत्सव की हंसी और उल्लास व्याप्त होता है तो दूसरे ही क्षण मृत्यु की विभीपिका के परिणामस्वरूप दुःख, आंसू और आहों का विस्तार वातावरण को व्यथापूर्ण बना देता है। जड़-चेतन में व्याप्त इस नश्वरता-क्षणिकता को देखकर प्रकृति का कण-कण भी दुःखी होता है। संसार की नश्वरता से व्यथित होकर शून्याकाश समीर के रूप में ठण्डी आहें भरता है, आकाश अपनी करुणा को अश्रु-बिन्दुओं के रूप में पत्तों पर विकीर्ण कर देता है। इसी सवेदना के कारण सागर भी सदा सिसकता रहता है, आकाश के नक्षत्र भी करुणा से द्रवित होकर सदा कांपते रहते है। ऐसा माना जाता है कि सुख तो केवल वैयक्तिक सीमाओ तक सिमटा रहता है जबकि दु.ख की एक बूंद आंसू समस्त विश्व के साथ अपनत्व स्थापित कर लेता है। इसी की पुष्टि उपरोक्त पंक्तियों में हुई है। जबकि मानव-जीवन की क्षणिकता एवं वेदना के कारण प्रकृति का कण-कण संवेदनशील हो गया है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने मृत्यु और जीवन के चक्र को केवल मानव-जीवन तक सीमित न रखकर सम्पूर्ण जड़-चेतन में इसकी व्याप्ति दिखाई है। ससार में नाश, निर्माण, सृष्टि और विध्वंस का चक्र तो निरन्तर चलता रहता है। उसकी कठोरता-निर्ममता के कारण प्रकृति का प्रत्येक अंग करुणा मे भरकर रोता है—आहें भरता है।

(२) अलंकार—(i) 'अभी उत्सव······उच्छ्वास'—अनुप्रास और यथासख्य।

(ii) 'क्षण-क्षण'—पुनरुक्ति।

(iii) 'समीर, समुद्र, उडुगन—मानवीकरण।

निष्ठुर परिवर्तन

कविता परिचय—सुमित्रानन्दन पंत के काव्य विकास की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति करने वाली कविता 'परिवर्तन' की रचना सन् १९२४ में हुई। 'पल्लव' काव्य-संग्रह की इस प्रतिनिधि रचना का अध्ययन करने के लिए स्वयं कवि के शब्दों का आधार उचित हो सकता है। पंत जी लिखते हैं—"परिवर्तन" शीर्षक कविता मेरे उस काल के हृदय-मन्थन तथा बौद्धिक संघर्ष की विशाल दर्पण सी बन गई है, जिसमें 'पल्लव' युग का मेरा मानसिक विकास तथा जीवन की संग्रहणीय अनुभूतियों के प्रति मेरा दृष्टिकोण प्रतिबिंबित है। इसका अनित्य जगत से नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में परिवर्तन के रचना-काल से ही प्रारम्भ हो गया। 'परिवर्तन' उस अनुसंधान का केवल एक प्रारम्भिक भावोच्छ्वास मात्र है।"

वास्तव में प्रेम, सौन्दर्य और प्रकृति के कोमल और भावुक कवि के काव्य में विकास में 'परिवर्तन' कवि की दिशा-परिवर्तन की सूचक है। कल्पना और भावुकता के साथ जीवन की वास्तविकता का योगदान इसी कविता में सर्वप्रथम मुखरित हुआ। कवि के शब्दों में, "पल्लव की प्रतिनिधि रचना 'परिवर्तन' में विगत वास्तविकता के प्रति असन्तोष तथा परिवर्तन के प्रति आग्रह की भावना विद्यमान है। साथ ही जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर नित्य सत्य को खोजने का भी प्रयत्न है जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण किया जा सके।" इस प्रकार जीवन के दुःख, दैन्य और आर्थिक-भौतिक अभावों से पीड़ित मानवता का चित्रण-विश्लेषण करते हुए कवि ने परिवर्तन को सर्वशक्तिमान, एकमात्र सत्ता के रूप में इस कविता में चित्रित किया है। ऐसा मान लिया गया है कि जीवन की वास्तविकता के प्रति ऐहिक विपत्तियों की ठोकर खाकर कवि का ध्यान सर्वप्रथम उसी समय गया था। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में, "कल्पना लोक की विहारिणी कवि-प्रतिभा का मर्त्यलोक की कठोरताओं से परिचय होते ही वह एक साथ उद्दीप्त एवं उद्बुद्ध हो उठी और विश्व में व्याप्त परिवर्तन की मार्मिक अनुभूति से तड़प उठी।"

परिवर्तन को एकमात्र शक्ति मानकर कवि ने उसे विविध रूपों में प्रस्तुत किया है। जीवन में व्याप्त सुख-सौन्दर्य सुषमा की कोमलता परिवर्तन के झोंके से समाप्त हो जाती है; सत्ता, शक्ति, भयंकरता तथा उदण्डता इसके सामने टिक नहीं पाती। परिवर्तन शासक-सर्प अथवा आक्रमणकारी के रूप में अपनी

भयंकरता को प्रकट करता है और दूसरी ओर जीवन को सर्वथा निरुपाय बना देने वाले शोषक के समान कठोर भी है। कवि ने परिवर्तन को व्यापकता देते हुए दार्शनिकता की पुट से और भी प्रभावी बना दिया है। एक ही कविता में महाकाव्य के समान सर्वांगीण जीवप की अभिव्यक्ति के कारण 'परिवर्तन' का महत्त्व और भी बढ़ गया है। इस प्रकार भाव, विचार, भाषा, छन्द आदि सभी दृष्टियों से 'परिवर्तन' हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। इसमें कहीं शृंगार रस का अरुण राग है, तो कही वीभत्स का नीला रंग है। निराला के शब्दों में, "परिवर्तन किसी भी बड़े कवि की कविता से निःसंकोच मैत्री कर सकता है।"

अहे निष्ठुर परिवर्तन.................. दिङ्मंडल।

शब्दार्थ—निष्ठुर=कठोर। ताण्डव नर्तन=प्रलय का नृत्य। विवर्तन=परिवर्तन। नयनोन्मीलन=आंखों का खोलना। निखिल=सम्पूर्ण। उत्थान=उन्नति। पतन=गिरावट। वासुकि=सर्पराज वासुकि। अलक्षित=अदृश्य। निरन्तर=लगातार। विक्षत=घायल। वक्षस्थल=हृदय। शत=सैकड़ों। फेनोच्छ्वासित=फेन उगलते हुए। स्फीत=तीव्र। फूत्कार=फुंकार। घनाकार=बहुत बड़ा। कल्पान्तर=युग परिवर्तन। विवर=बिल। वक्र कुण्डल=टेढ़ा मेढ़ा। दिङ्मण्डल=आकाश।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने परिवर्तन के कठोर-भयंकर रूप को प्रस्तुत किया है। परिवर्तन को सर्पराज वासुकि के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके ध्वंसात्मक और विश्व व्यापी रूप का चित्रण किया गया है।

व्याख्या—कवि परिवर्तन को निष्ठुर मानते हुए कहता है कि हजार फनों वाले वासुकि ! तुम्हारे विध्वसंक कार्यकलाप मे प्रलय लाने वाले ताण्डव नृत्य का रूप साकार हो जाता है जिसके कारण सम्पूर्ण सृष्टि का रूप परिवर्तित हो जाता है। मृत्यु की विभीपिका चारों ओर करुणा को व्याप्त कर देती है। संसार की गतिविधि, जन्म-मृत्यु, नाश और निर्माण तुम्हारी आँखों के संकेत से ही परिचालित होते हैं। तुम्हारी कृपा-दृष्टि से संसार का उत्कर्ष होता है और तुम्हारी ही कठोर दृष्टि से उसकी समाप्ति हो जाती है। वास्तव में ईश्वर को सृष्टि का नियामक माना जाता है, ईश्वर की क्रियाशीलता को परिवर्तन मानकर कवि ने उसे सर्पराज का रूप प्रदान किया है। परिवर्तन कठोर होने के कारण अत्यन्त व्यापक शक्ति से सम्पन्न है। परिवर्तन रूपी वासुकि के लाखों

चरण निरन्तर गतिशील हैं जिन्हें देखा नही जा सकता ; किन्तु उसके परिणाम के चिह्न संसार के घायल हृदय पर प्रतिपल अपनी छाप छोड़ते जाते हैं। परिवर्तन अथवा मृत्यु का आना तो दिखाई नहीं देता परन्तु उसके ताण्डव से संसार के प्रत्येक व्यक्ति का हृदय प्रभावित है। वासुकि के सैकड़ों फेन उगलती हुई फुंकार अपनी भयकरता से जैसे अपने बहुत बड़े आकार से संसार को परिचलित कर रहा है। मृत्यु ही तो इस सर्पराज का जहरीला दांत है, जब यह अपनी कैंचुली का परित्याग करता है तभी तो संसार मे युगपरिवर्तन हो जाता है। यह सर्पराज संसार के कण-कण मे परिव्याप्त है। विश्व ही इसका निवास स्थान है। आकाश मण्डल ही इसकी कुण्डली है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में परिवर्तन के व्यापक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन रूप का प्रतिपादन किया गया है। परिवर्तन बहुमुखी होता रहता है। उसकी गति में कभी व्यतिक्रम नही होता और न ही उसके कार्यकलाप चलते हुए दिखाई देते हैं। केवल उसके परिणाम अपनी विभीषिका के चिह्न छोड़ जाते हैं। इन सभी तथ्यों को सहज और स्वाभाविक बनाने के लिए ही कवि ने उसे वासुकि के रूप में प्रस्तुत किया है। 'अखिल विश्व ही विवर' कहकर उसकी सर्वव्यापकता को प्रकट किया है और 'फेनोच्छ्वासित फूत्कार' में उसकी विनाशक शक्ति ध्वनित होती है। सर्प की गति भी दिखाई नहीं देती, उसके जहरीले दाँत का परिणाम अवश्य दिखाई दे जाता है। उत्थान और पतन के नियामक परिवर्तन के प्रभावी रूप का प्रतिपादन करने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है।

(२) भाषा की दृष्टि से पंत की यह रचना अद्वितीय है। कोमलकान्त पदावली में प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य आदि का चित्रण करने वाले कवि ने सर्वप्रथम इसी कविता में कठोर शब्दावली का प्रयोग किया है। मृत्यु की विभीषिका, परिवर्तन की कठोरता को ध्वनित करने वाले शब्दों का नाद-सौन्दर्य पाठक के मन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ने में पूर्णतया सफल है। ध्वनि, गति, भाव, प्रवाह तथा नाद को व्यक्त कर सकने वाले शब्दों के चयन और विन्यास के कारण ही इस कविता को संसार की किसी भी महान् रचना की मैत्री कर सकने में समर्थ माना गया है।

अलंकार—(i) 'लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे'—यमक और विरोधाभास।

(ii) 'शतशत'—पुनरुक्ति।
(iii) विक्षत वक्षस्थल—अनुप्रास।
(iv) सम्पूर्ण अवतरण में सांगरूपक।

अहे दुर्जेय विश्वजित........................... दलित धरा तल।

शब्दार्थ—दुर्जेय=जिसे जीतना कठिन हो। विश्वजित=विश्व विजयी। नवाते=झुकाते। सुखद=देवता। नरनाथ=सम्राट। इन्द्रासन=सिंहासन। सतत=निरन्तर। चक्रों=पहियों। नृशंस=कठोर। अनियंत्रित=बाधा रहित। संसृति=संसार। उत्पीड़ित=दुःखी। पदमर्दित=पैरों से कुचला हुआ। भग्द=टूटा हुआ। प्रतिमायें=मूर्तियाँ। खण्डित=टूटा हुआ। विभव=भौतिक सम्पत्ति। चिर सचित=चिरकाल से इकट्ठा किया हुआ। आधि-व्याधि=दैविक और भौतिक दुःख। बहुवृष्टि=अति वर्षा। वह्नि=आग। विपुल=अत्यधिक। निरंकुश=तानाशाह; कठोर। पदाघात=पैरों की ठोकर। विह्वल=व्याकुल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने परिवर्तन को एक कठोर अत्याचारा तानाशाह के रूप में प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार एक तानाशाह दूसरों के दुःख और वेदना की उपेक्षा करके उन पर अत्याचार करना ही अपना अधिकार मान लेता है, तानाशाह समाज की सम्पूर्ण शक्तियों का अधिपति बनकर कठोरता और निर्ममता से अत्याचार करता हुआ संसार को आतंक, भय, अभाव एवं दु.ख से भर देता है उसी प्रकार परिवर्तन अपनी कठोरता से संसार पर आतंक का साम्राज्य स्थापित कर लेता है।

व्याख्या—परिवर्तन को दुर्जेय विश्व विजेता मानते हुए कवि सम्बोधन करता है कि हे विश्व विजेता! तुम्हारा आतंक सर्वत्र व्याप्त है। तुम्हारी तेजस्विता, कठोरता और शक्तिमत्ता के कारण बड़े-बड़े देवता और सम्राट भी तुम्हारे सम्मुख नतमस्तक होते हैं। न जाने कितने वीर, पराक्रमी राजाओं ने तेरे सिंहासन के आगे सिर झुकाया है, तेरी आधीनता स्वीकार की है; जिस प्रकार एक चक्रवर्ती सम्राट दिग्विजय के लिए निकलता था तो उसके रथ के पहियों के साथ दूसरों का भाग्य बंधा रहता था। जहाँ-जहाँ कोई विरोध करता अथवा सिर उठाता, सम्राट की शक्ति उसे दबा देती थी, इस प्रकार परिवर्तन रूपी सम्राट के रथ-चक्रों के साथ संसार का भाग्य बंधा रहता है। वह क्रूर और अत्याचारी राजा के समान जगत् पर आक्रमण कर देता है। यह आक्रमण

अप्रत्याशित होता है और संसार को अपने पैरों से कुचलते हुए उसे दुःख, पीड़ा और अभावों में भर देता है। देखते-देखते बड़े-बड़े नगर जन-शून्य और वीरान हो जाते है, उनका वैभव मिट जाता है, भव्य मदिर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, मदिरों में प्रतिष्ठित प्रतिमाएँ खण्डित कर दी जाती हैं और इस प्रकार वैभव, कला-कौशल तथा संस्कृति के प्राचीनतम प्रतीक, जिनमें मानव की चिरसंचित अभिलाषायें, आदर्श और मान्यताएं प्रतिबिंबित होती हैं, परिवर्तन की ठोकर खाकर सभी मिट्टी में मिल जाते हैं। संसार को दु.ख और पीड़ाओं से भर देने वाले इस शासक के पास भी अपरिसीम और बलशाली सेना है। दैहिक, दैविक और भौतिक संताप, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आँधी और तूफान, विविध प्रकार के उत्पात्, अमंगलकारी घटनाएं, अग्नि; बाढ़ और भूकम्प आदि इस आक्रमण-कारी सेना के विविध अंग हैं। वस्तुतः ये सभी ऐसे तत्त्व है जिनका सामना मानवीय अथवा सांसारिक शक्तियों से नही हो सकता। कठोर और स्वेच्छा-चारी शासक को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि उसके आक्रमण और पैरों की चोट से बड़े-बड़े पर्वत ही नहीं, सम्पूर्ण धरती का हृदय भी डगमगाते हुए थर्राने लगता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने परिवर्तन और निरंकुश शासक का सादृश्य स्थापित करते हुए उसकी कठोरता और संसार की विवशता का चित्रण किया है। परिवर्तन की ठोकर खाकर बड़े-बड़े साम्राज्य मिट्टी में मिल जाते हैं—इसका वर्णन करने मे कवि को पूर्ण सफलता मिली है। इस अवतरण को पढ़ते हुए विश्व की अनेक घटनाओ एवं स्थलों की स्मृति जागृति हो जाती है,जहाँ परिवर्तन की क्रूरता को आज भी साकार रूप मे देखा जा सकता है।

(२) प्रस्तुत अवतरण में शब्द चयन युद्ध, उत्पात और दुःख की विभीपिका को ध्वनित करने में अनुपम है। आधि, व्याधि, बहुवृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल, वह्नि, बाढ़, भूकम्प आदि शब्दों में परिवर्तन का विध्वसक स्वरूप स्वतः साकार हो जाता है।

(३) अलंकार—(i) 'नग्न नगर'—विशेषण विपर्यय।
(ii) सैन्य, दल—पुनरुक्तवदाभास।
(iii) शत-शत, हिल हिल—पुनरुक्ति।
(iv) समस्त पद में सांगरूपक।

जगत का अविरत..............................ही समाधि स्थल।

शब्दार्थ—अविरत=निरन्तर। हृतकम्पन=धड़कन। सूचन=सूचना देने वाला। निखिल=सम्पूर्ण। विपुल=अत्यधिक। विकच=खिला हुआ। मानस=मन। शतदल=कमल। कुटिल=दुष्ट। काल=समय; मृत्यु। कृमि=कीड़ा। स्वेद सिंचित=पसीने से सींचा हुआ। संसृति=संसार। शस्य=अन्न। दलमल=कुचलना। वर्षोत्पल=ओले। वांछित=चाहा हुआ। कृषिफल=खेती का लाभ। ध्वनि स्पंदित=आवाज से गूंजता हुआ। दिङ्मण्डल=आकाश।

प्रसंग–प्रस्तुत अवतरण में परिवर्तन की व्यापकता और शक्तिमत्ता का चित्रण किया गया है। परिवर्तन को समय और काल की गति मानते हुए कवि ने उसके प्रभाव को जड़-चेतन तक व्यापक बताते हुए मानवीय भावनाओं के माध्यम से अपनी विचारधारा की पुष्टि की है।

व्याख्या—परिवर्तन निष्ठुर है, उसकी अलक्षित संसार की संचालिका शक्ति है; नाश और निर्माण का खेल खेलता हुआ परिवर्तन विश्व की बड़ी-से-बड़ी शक्ति को नतमस्तक करने में समर्थ है, इतना ही नहीं, उसकी गति मानव-मन की अतल गहराइयों तक है। कवि यह स्पष्ट करता है कि संसार के प्रत्येक चेतन प्राणी में निरन्तर होने वाली धड़कन वस्तुतः परिवर्तन की निष्ठुरता, नृशंसताजन्य भय की ही सूचना देती है। जिस प्रकार भयभीत मनुष्य की धड़कने तेज हो जाती है, वह आँखें बंद करके उस भयानकता से बचने का प्रयास करता है, वैसे ही प्राणियों की पलकें चुपचाप जब बंद होती है तो इसमें उस परिवर्तन का आमंत्रण स्पष्ट झलकता है।

परिवर्तन का प्रभाव अत्यन्त गहरा है। संसार का मन रूपी कमल अनेक प्रकार की इच्छाओं अथवा वासनाओं से परिपूर्ण, आनन्द और उल्लास में खिला रहता है। शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध आदि की लालसा में मानव न जाने कितने सुख और सौन्दर्य के स्वप्न देखता है, किन्तु परिवर्तन समय अथवा मृत्यु रूपी कीड़े की तरह उस कमल की पत्तियों को धीरे-धीरे खाता रहता है। पुष्प में लगा हुआ कीड़ा अन्दर ही अन्दर से फूल को छलनी बना देता है, इसी प्रकार कालगति अपने कार्य को करती रहती है।

किसान अपने खून और पसीने से सीचकर खेतों में स्वर्णिम अन्न उत्पन्न करता है। उसके मन मे भावी उपलब्धि से आनन्द होता है। अपने परिश्रम के

परिणाम को स्वर्णिम धान के रूप में लहलहाते देखकर किसान का मन-मयूर नाच उठता है किन्तु परिवर्तन वर्षा और ओले के रूप में बरसकर उस स्वर्णिम खेत तथा उससे इच्छित फल को कुचल कर नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। परिवर्तन के व्यापक आकार का संकेत करते हुए कवि कहता है कि संसार का यह फैला हुआ आकाश जो विश्व की विभिन्न ध्वनियों से निरन्तर गूंजता रहता है, यह निशाकाल का सम्पूर्ण आकाश ही तुम्हारा समाधि स्थल है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने विविध कल्पनाओं का सहज किन्तु प्रभावी चित्रण किया है। भावातुर की धड़कनें तेज होती हैं, आँखें प्राय: बन्द हो जाती हैं और अपने भय के मूल कारण के चिन्तन में ही लीन हो जाता है। इस भावना के अतिरिक्त मन-कमल को काल-कृमि द्वारा जर्जरित करने, किसान के परिश्रम का ओलों से विनष्ट हो जाने का चित्रण अपनी चित्रमयता और चिन्तन की दृष्टि से अनुपम है। योगी एकान्त में अपने हृदयाकाश में समाधिस्थ हो जाता है, उसी प्रकार परिवर्तन भी बाह्य गतिविधियों की ओर ध्यान न देता हुआ अपने कार्य में लीन रहता है। इस प्रकार कवि द्वारा परिवर्तन की शक्ति, व्यापकता, कठोरता एवं अपने विचारों में ही लीन रहने की प्रवृत्ति का सफल चित्रण प्रस्तुत अवतरण में हो सका है।

(२) अलंकार—(i) 'विपुल वासा विकच विश्व'—अनुप्रास।
(ii) 'कुटिल काल कृमि से'—अनुप्रास।
(iii) 'काल कृमि-से; नैश गगन-सा'—उपमा।
(iv) 'काल'—श्लेष।

काल का अकरुण..........................करता गुरु गर्जन।

शब्दार्थ—अकरुण=करुणा रहित। भृकुटि विलास=क्रोधयुक्त आँखों से देखना। परिहास=हँसी। अश्रुपूर्ण=आँसुओं से भरा हुआ। कटाक्ष=दृष्टि-निक्षेप। प्रलयंकर=नाशक। समर=युद्ध। निसर्ग=प्रकृति। संसृति=सृष्टि। निर्भर=आधारित। अभ्रध्वज=आकाश को चूमने वाले ध्वज। सौध=महल। शृंगवर=शिखर। भूति=सांसारिक ऐश्वर्य। मेघाडम्बर=बादलों का आडम्बर। रोमांच=कम्पन। दिग्भूकम्पन=दिशाओं और धरती का कम्पन। भीत=डरे हुए। पोत=जहाज। आलोड़ित=उमड़ा हुआ। अम्बुधि=सागर। भुजंगम=सर्प। इंगित=संकेत। दिक् पिंजर=दिशाओं का पिंजड़ा। गजाधिप=सिंह। वनितानन=विनीत मुख। आर्त=आकुल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने परिवर्तन की शक्तिमत्ता का चित्रण किया है। परिवर्तन को सृष्टि का शाश्वत सिद्धान्त मानते हुए कवि ने यह स्पष्ट करने का यत्न किया है कि इसी के परिणामस्वरूप ही संसार गतिशील रहता है। पुराना मिटाकर नवीन की सृष्टि करता हुआ परिवर्तन ससार के सुख-सौन्दर्य और वैभव का हरण कर लेता है। सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न जीव भी इसके सामने नतमस्तक हो जाते है।

व्याख्या—कवि कहता है कि परिवर्तन के संकेत से सम्पूर्ण जड़ और चेतन सृष्टि का परिचालन होता है। यह जब भी किसी की ओर टेढ़ी नजर से देखता है, कठोर करुणा-शून्य दृष्टि निक्षेप करता है। संसार का जीवन दुःख और आँसुओं का इतिहास मात्र रह जाता है। परिवर्तन का साधारण परिहास विश्व जीवन को दु.ख, वेदना, अभाव तथा अश्रुओं से परिपूर्ण बना देता है। काल की एक भौंह को टेढ़ा करने मात्र से समस्त संसार विध्वंस की विभीषिका में घिर जाता है। प्रकृति और संसार भर में युद्ध अथवा सघर्ष छिड़ जाता है। परिवर्तन की शक्ति इतनी अधिक है कि उसकी भयंकरता के सम्मुख कोई भी टिक नहीं पाता। परिवर्तन के कटाक्ष मात्र से संसार में प्रलय का ताण्डव प्रारम्भ हो जाता है। प्रकृति और सृष्टि के प्रत्येक कण में संघर्ष फैलने लगता है। संसार में ऐश्वर्य, सत्ता, शक्ति और कठोरता के प्रति बड़े-बड़े महलों की आकाशचुम्बी अट्टालिकाएँ नष्ट-भ्रष्ट होकर धूलि-धूसरित हो जाती हैं। पर्वतों के ऊँचे और दृढ़ शिखर उसके सामने टिक नही पाते। परिवर्तन की चोट खा-कर वे धरती चूमने लगते हैं। बड़े-बड़े साम्राज्य, जो अपनी शक्ति, अधिकार और भौतिक सम्पदाओं के अतुल भण्डार होने के कारण विश्व को अतंकित करने की क्षमता रखते है, भी परिवर्तन के सकेत मात्र से ऐसे विनष्ट हो जाते हैं जैसे वायु वेग से मेघाडम्बर आकाश में बिखर जाते हैं। परिवर्तन का एक रोमांच कितना प्रभावी और शक्तिशाली होता है—इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उससे दिशाएँ काँपने लगती हैं, धरती थर्राने लग जाती है। जिस प्रकार तूफान अथवा भूकम्प आने पर प्रकृति में हलचल मच जाती है उसी प्रकार दिशाओं के कम्पन से आकाश के नक्षत्र इस प्रकार टूटकर नष्ट होते हैं जैसे पानी मे बुलबुले क्षणिक आभा दिखाकर समाप्त हो जाते हैं अथवा तूफान आने पर जल-पोतों से पक्षियों के झुण्ड निरुपाय होकर गिर पड़ते हैं। तूफान में उमड़ा हुआ समुद्र अपनी झागभरी लहरों को इस प्रकार उछालता और गिराता है जैसे कोई मन्त्र-मुग्ध सर्प किसी के संकेत से नृत्य करते-करते

अपने फनों को पटकता हुआ जहर उगलता है। सागर की गर्जना इस प्रकार प्रतीत होती है जैसे दिशाओं के पिंजड़ में बंधा हुआ शेर दहाड़ता है और अन्त में विवश होकर अपनी पराजय मानकर मस्तक झुका देता है। नाश, प्रलय और तूफान की ध्वनि से आहत होकर आकाश में भी उसकी आतुरता प्रतिध्वनित होती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में पंतजी की वर्णन-शैली को चरमावस्था में देखा जा सकता है। प्रारम्भ से अन्त तक कवि ने शब्दों का चयन और विन्यास इस प्रकार किया है जिस से प्रलय और विनाश की कठोरता और भयंकरता पूर्णतया ध्वनित होती है। परिवर्तन पर चेतना का आरोप कर कवि ने उसके विविध स्वरूपों को बडी सफलता से चित्रित किया है। परिवर्तन शाश्वत सिद्धान्त है। विकासवाद इसे उन्नति का मूल कारण स्वीकार करता है। ह्रासवाद इसमें जीवन की नश्वरता देखता है। पंतजी ने प्रस्तुत अवतरण में परिवर्तन को भयकर और संसार की करुणा एवं वेदना के इतिहास का निर्माता स्वीकार किया है।

(२) कवि पंत ने प्रकृति को अत्यन्त निकट से देखा है, यही कारण है कि वे उसके कठोर रूप का भी स्वाभाविक चित्रण कर सके हैं। प्रलयकाल में सांसारिक वैभव भूमिसात होने का वर्णन तो दार्शनिक दृष्टिकोण को व्यंजित करता है किन्तु तूफान आने पर सागर और आकाश की हल-चल का वर्णन कवि के प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान का ही परिचायक है। सागर की उमड़ती हुई लहरों की झाग का सादृश्य सर्प के फनों से उठने वाले झाग से देकर कवि ने उसकी स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता को साकार कर दिया हैं।

(३) अलकार—(i) 'काल का अकरुण भृकुटि विलास'—अनुप्रास।
(ii) 'गिर-गिर', 'शत-शत'—पुनरुक्ति।
(iii) 'भुजंगम-सा', 'गजाधिप-सा'—उपमा।
(iv) 'दिक्-पिंजर'—रूपक।
(v) समस्त पद में मानवीकरण और अतिशयोक्ति।

जगत की शत कातर.................करती सुख शांति।

शब्दार्थ—कातर=दुखी। चीत्कार=हाहाकार। बधिर=बहरे। पाषण=पत्थर। चतुर्दिक=चारों दिशाओं में। घहर-घहर=उमड़ घुमड़ कर। आक्रांति=अशांति।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने संसार के दुःख, हाहाकार, अशांति आदि का वर्णन करते हुए परिवर्तन के कठोर और निर्मम रूप का चित्रण किया है। कवि यह मानता है कि संसार के दुःखों का मूल कारण परिवर्तन है, उसी के दिए हुए दुःखों को संसार भोगता है किंतु परिवर्तन के बहरे कानों पर इन सब का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

व्याख्या—कठोर, करुणारहित और विध्वंसक परिवर्तन को सम्बोधित करते हुए कवि उससे पूछता है कि संसार के प्राणियों की दैहिक, दैविक तथा भौतिक वेदनाओं के कारण जो हा-हाकार हर समय गूंजता रहता है, संसार की दुःखपूर्ण आहों और चीत्कारों का परिचर्तन के बहरे कानों पर क्या असर होता है। मृत्यु की विभीषिका के कारण प्रत्येक व्यक्ति की आँखों से अविरत बहने वाले अश्रु स्रोत क्या परिवर्तन के पत्थर दिल को द्रवित कर पाये हैं। जिस प्रकार कोई नृशंस शासक प्रजा के दुःख, चीत्कार अथवा अश्रुओं पर ध्यान नहीं देता, उसी प्रकार परिवर्तन भी सांसारिक प्राणियों की व्यथा को सुनना अथवा अनुभव करना नहीं चाहता। जगत के आकाश में तो प्रतिक्षण सैकड़ों आहें निकलकर वतावरण को आच्छादित करती रहती हैं। जीवन में संताप, वेदना तथा अभाव से जो अशांति व्याप्त है, प्रतिपल जो बढ़ती ही जाती है क्या कभी उस सबसे परिवतन की सुख-शांति में वाधा पड़ी है। वास्तव में परिवर्तन इतना कठोर और निर्मम है कि उस पर दूसरों के दुःखों का प्रभाव नही होता। अपने ही स्वार्थ में लीन, अहंकार तथा शक्तिमत्ता में मदान्ध परिवर्तन को दूसरों की करुण कहानी सुनने, उनके आँसुओं को देखने अथवा व्यथा के अनुभव करने की इच्छा नही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में परिवर्तन को कठोर, अत्याचारी व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि ने शोषक और शोषित वर्ग की काव्यमय तुलना की है। परिवर्तन तो ससार के सुख, वैभव और आनन्द को मिटाकर संसार के दुःख, दारिद्रय तथा अभावों को वढाता रहता है। जो स्वयं सुखी हो और साथ में सत्ताधारी भी हो तो वह दूसरों के दुखों की अनुभूति पा नहीं सकता। सुखी और समृद्ध लोग दुःखी, दरिद्र अथवा अभावग्रस्त की दुर्दशा को देखना ही नही चाहते, इस भाव का प्रतिपादन प्रस्तुत अवतरण में स्वाभाविक रूप में हुआ है।

(२) अलंकार—(i) 'कातर चीत्कार'—अनुप्रास।
(ii) 'क्षण-क्षण', 'सौ-सौ', 'घहर-घहर'—पुनरुक्ति-प्रकाश।
(iii) 'अश्रु-स्रोतों', 'उर पाषाण'—रूपक।
(iv) समस्त पद में मानवीकरण।

हाय री दुर्बल ....का माया जाल।

शब्दार्थ—दुर्बल=कमजोर। भ्रान्ति=भ्रम। नश्वर=नाशवान। तात्पर्य=कारण; अर्थ। अविरत=निरन्तर। संग्राम=युद्ध। विराम=विश्राम। उपवन=बाग। विजन=जनरहित। असार=नश्वर। सृजन=निर्माण। सिंचन=सींचना। संहार=मृत्यु। गर्वोन्नत=अभिमान से भरपूर। हर्म्य=महल। मन्त्रोच्चार=मन्त्रों का उच्चारण। उलूक=उल्लुओं। भग्न=नष्ट-भ्रष्ट। मायाजाल=खिलवाड।

प्रसग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने संसार की नश्वरता और मानव के अज्ञान का वर्णन किया है। सृष्टि के आदिकाल से आज तक अनेक प्रकार से परिवर्तन की क्रीड़ा होती आ रही है। भौतिक सम्पदा, दार्शनिक चिन्तन अथवा ऐतिहासिक घटना क्रम में उलझा हुआ मानव शांति पाने के लिए आतुर है किंतु शांति का अस्तित्व भ्रम के अतिरिक्त कुछ नही। इसी दार्शनिक चिन्तन को कवि ने प्रस्तुत अवतरण में स्पष्ट किया है।

व्याख्या—इस नाशवान् जगत में कभी भी शांति उपलब्ध नहीं होती। निरन्तर संघर्षों में उलझा हुआ मानव जिस शांति की खोज में रत है, वह मृगमारीचिका के अतिरिक्त कुछ नहीं। अपने अज्ञान तथा भ्रम में मानव शांति की कल्पना भले ही करले, वस्तुतः यह संसार अशांति का दूसरा नाम है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु जीवन के अस्तित्व अथवा स्थिरता के लिए संघर्षशील है, उसे कही भी विश्राम नही मिलता। जिस प्रकार वास्तविक जीवन में संघर्ष रत रहने वाला मानव स्वप्न में मादक दृश्य देखकर थोड़े समय के लिए आनन्दमग्न हो जाता है और आंखें खुलने पर फिर वही जीवन- संघर्षो और समस्याओं की विभीषिका उसे उलझा लेती है, उसी प्रकार विश्राम अथवा सुख की कल्पना और कामना स्वप्न के समान अवास्तविक और निरर्थक है। संसार में नाश और निर्माण का चक्र सदा ही चलता रहता है। यदि सौ वर्ष तक कोई नगर अथवा उपवन अपनी समृद्धि, गरिमा, वैभव तथा सौंदर्य के प्रतीक बन जाते हैं।

सभी प्रकार के सुख, आमोद-प्रमोद, हास-विलास के साधन पुंजीभूत होकर उस नगर के गौरव को कई गुणा बढ़ा देते हैं वही समयान्तर पर उजड़ जाते हैं। नगर ध्वस्त हो जाते है। वहाँ का वैभव और समृद्धि मिट्टी में मिल जाते हैं। राग-रंग भरा कोलाहल शून्यता में परिणत हो जाता है। उपवनों का सौंदर्य काल गति के सम्मुख निःशेष हो जाता है। इस नाशवान संसार की तीन ही स्थितियाँ है—जन्म, विकास और मृत्यु। संसार का सृजन होता है, उसकी वृद्धि होती है, वहुमुखी विकास होने के कारण फिर सब कुछ नष्ट हो जाता है। इस प्रकार नाश-निर्माण, उत्थान-पतन का क्रम चलता रहता है। यहाँ पर कोई भी वस्तु स्थायी नहीं। आज जो महल राग-रंग, हास-विलास, वैभव और ऐश्वर्य से भरपूर हैं! जहाँ दुःख की छाया तक नहीं, अभाव का जहाँ अस्तित्व भी नहीं, मणि-भण्डार की चमक ही जहाँ दीपावली करती है; हर समय नाना प्रकार को राग-रागनियों की स्वर-लहरी जहाँ प्रतिध्वनित होती रहती है, कल वही महल नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगे। केवल उनके अवशेष बिखरे हुए पत्थरों में अतीत की करुणा-गाथा कहते रहते है। जहाँ हास-विलास की रगीनियाँ बिखरती थीं, वहीं उल्लुओं का निवास होगा, संगीत के स्थान पर झिल्ली की झंकार नीरवता को बढ़ाने का कारण बन जाती है। इस प्रकार दृश्यमान जगत का प्रत्येक कण परिवर्तनशील, अस्थिर और अज्ञान उत्पन्न करने वाला है। कवि ने इस विशाल विश्व को रात और दिन अथवा बादल और आंधी के समान स्वीकार किया है। प्रत्येक दिन के पश्चात् रात आती है, हर सुख के वाद दुःख का मिलना स्वाभाविक है। बादल घिरते हैं, उनकी सजल सुन्दरता मोहक होती है किन्तु वायु उस जादू नगरी को बिखेर देती है। उसी प्रकार सांसारिक धन, सम्पदा, शक्ति और सत्ता को परिवर्तन की शक्ति समाप्त कर देती है। अतः इस माया जाल में उलझना उचित नहीं।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में संसार की नश्वरता का प्रतिपादन सहज, सरल किन्तु प्रभावी रूप में किया गया है। भारतीय दार्शनिकों ने ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या मानते हुए माया को अज्ञान का कारण बताया है। यह जानते हुए भी, कि दृश्यमान जगत नाशवान है, मानव अपने अज्ञान के कारण इसे सत्य मान लेता है। भौतिक आकर्षण में उलझकर वह उसकी वास्तविकता से अनभिज्ञ रहता है। पंतजी ने वेदांत, बौद्ध सिद्धान्त—दोनों ही दृष्टियों से इसकी नश्वरता का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से किया है।

(२) दार्शनिक चिन्तन में जन्म, विकास और मृत्यु जीवन के तीन सोपान माने गए हैं। कवि पंत ने इसका प्रतिपादन करने के लिए नगर और उपवनों, धन-धान्य पूर्ण महलों के माध्यम से स्पष्ट करने के लिये लाक्षणिक प्रयोगों का आधार चुना है। उल्लुओं, झींगुरों, झिल्लियों तथा दिवस-निशि आदि को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

(३) अलकार—(i) 'एक सौ वर्ष····· सहार'—यथा सख्य :
(ii) 'सृजन सिचन संहार'—अनुप्रास।
(iii) 'आज गर्वोन्नत···झंकार'—मानवीकरण।
(iv) 'दिवस-निशि मायाजाल'—रूपक।
(v) 'विजय वन'—अनुप्रास।
(vi) 'झिल्लियों की झंकार'—अनुप्रास।

नित्य जग

कविता परिचय—'नित्य जग' कविता कवि पंत के काव्य संकलन 'पल्लव' में संकलित 'परिवर्तन' नामक कविता का एक अंश है। इन पंक्तियों के सम्बन्ध में कवि का कथन है—"इस कविता जगत् में नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे परिवर्तन के रचना काल से प्रारम्भ हो गया था, परिवर्तन उस अनुसंधान का केवल प्रतीक मात्र है।" 'अनित्य जग' और 'निष्ठुर परिवर्तन' में कवि ने जगत् की नश्वरता पर अश्रु ढुलकाये हैं। "प्राणियों के करुण दृश्य एवं परिवर्तन का उनके प्रति उदासीनता कवि को खिन्न कर देती है। उस संसार में कहीं भी सुख-शांति नहीं दिखाई पड़ती। संसार उसके लिए सृजन, सिचन, संहार मात्र रह गया पर अनवरत चिन्तन के अनन्तर उसे अनित्यता के पीछे नित्यता के दर्शन होते हैं, अस्थिरता में स्थिरता का मान होता है, नश्वरता अनश्वरको में पर्यवसित दिखाई देती है।"

नित्य का यह·····························गिरा देती अज्ञात।

शब्दार्थ—उद्‌गार=विचार। नित्य=सदा रहने वाला। अनित्य=क्षणिक। विवर्तन=परिवर्तन। व्यावर्तन=बदलती हुई वस्तु का फिर से पूर्व रूप प्रस्तुत करना। चिर=शाश्वत। अन्वेषण=खोज। तत्वपूर्ण=सत्य से भरा हुआ। दर्शन=विचार; सिद्धान्त। अकूल=जिसका कोई किनारा

नहीं। उमंग=लहर। शत-शत=सैकड़ों। बूड़=डूबना। निस्सार=सारहीन। सैकत=रेत। अतिवात=आँधी।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने संसार की नश्वरता, अस्थिरता और परिवर्तनशीलता पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया है। अनन्तकाल से बड़े-बड़े मनीषी संसार और उसके स्रष्टा को जानने का प्रयत्न करते आये है। वे सभी विविध और विभिन्न होकर भी एक बात तो स्वीकार करते हैं कि संसार नश्वर है, इसी में उस शाश्वत तत्व की अनुभूति हो सकती है। इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए पंत जी कहते हैं—

व्याख्या—यह विचार करना मात्र ही कितना मार्मिक अथवा दुःखद है कि नाना, नाम, रूप, रंग आदि से परिपूर्ण यह संसार नाशवान् है। विश्व अपने विविध सौन्दर्य में अनेक प्रकार की क्रीड़ायें दिखाता रहता है। वास्तव में यह तरह-तरह की लीलायें उस परम शक्ति सम्पन्न, नित्य, सत्य, शुद्ध ब्रह्म की ही हैं। उसी के इंगित पर सारा संसार अनेक प्रकार के स्वरूप दिखाता रहता है। वही नित्य और शाश्वत ब्रह्म इस क्षणिक और नाशवान लीला को चलाने वाला है। जगत् क्या है ? केवल ब्रह्म की इच्छा से उसी के किसी अंश का रूपान्तर मात्र, जो उसमें से प्रकट होता है, तरह-तरह के रूप दिखाकर पुनः उसी में लीन हो जाता है। जिस प्रकार जल मेघखण्ड, वर्षा, हिमखण्ड, वाष्प आदि रूपों में बदलकर फिर जल ही रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म अनेक रूपों में बदलकर भी अन्त में केवल ब्रह्म ही रहता है। इस प्रकार आज तक के दार्शनिकों और तत्वदर्शियों ने इस अचिर, क्षणिक, नाशवान् संसार में ही उस चिरन्तन का अन्वेषण किया है। सबके विचारों का सार यही है कि जगत् ब्रह्म का ही परिवर्तित रूप है, जिसे वह अपनी माया के द्वारा बनाता है।

जिस प्रकार सागर की अतल गहराइयों से लहर की उत्पत्ति है, जो अपनी विविध क्रीड़ायें करती हुई किनारे की ओर बढ़ती है, किन्तु किनारे पर पहुंच कर उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार ब्रह्म की इच्छा—एक से अनेक हो जाऊँ—से इस अनन्त संसार के असंख्य रूपों का निर्माण होता है और अन्त में उस ब्रह्म की इच्छा पर ही उन सबका अन्त हो जाता है, वे सभी अपनी मूलशक्ति में लीन हो जाते हैं। जिस प्रकार एक लहर से सैकड़ों बुलबुले उत्पन्न होते हैं और क्षण भर अपनी चमक और सौन्दर्य दिखाकर वे पुनः अदृश्य हो जाते है। उनका नाम निशान भी शेष नहीं रहता। संसार क्या है,

रेत के टीलों के समान एक क्षणिक और आधार रहित पदार्थ, जो अपने अस्तित्व पर अभिमान करता है किन्तु जिसे आँधी का एक झोंका आकर चुपचाप मिटा जाता है। किसी को ज्ञात भी नही होता कि यह नाश और निर्माण का संचालक कौन है और कब वह परिवर्तन कर जाता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि पत के दर्शनिक विचारों का परिचय मिलता है। वेदान्त दर्शन के अनुसार दृश्यमान जगत नाशवान् है। केवल ब्रह्म ही शुद्ध, सात्विक और नित्य तत्व है जो अनन्त, अपार और अनश्वर है। जीवात्मा ब्रह्म का अंश होकर भी माया के आकर्पण में आवद्ध हो जाती है, परिणामस्वरूप उसे तब तक भटकना पड़ता है जब तक आत्म ज्ञान की उपलब्धि नही होती। आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध की अनुभूति होने पर सभी प्रकार के वंधन समाप्त हो जाते हैं, ससीम असीम मे परिणत हो जाता है।

(२) कवि ने दार्शनिक सिद्धान्तों को अपनी प्रतिभा और कल्पना की तूलिका से सरस, आकर्षक, स्वाभाविक और बोधगम्य बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। ससार और ब्रह्म के सम्बन्ध की व्याख्या करने के पश्चात् कवि ने उसे सागर, लहर और बुलबुले के रूप में अत्यन्त मनोहारी बना दिया है। सागर ब्रह्म के समान अतल और अगम है, लहर 'एकोऽहम् बहुस्याम' की क्रियाशीलता को प्रकट करती है और बुलबुलों मे नाना नाम रूपात्मक जगत् के क्षणिक आकर्षण और अस्तित्व का प्रतिपादन है। सैकत' जीव की अहम् वृत्ति का प्रतीक है, जिसके द्वारा वह अपना विशिष्ट रूप मानने लगता है किन्तु परिवर्तन की अज्ञात शक्ति उसके अहम् को समाप्त कर देती है। प्रकृति के माध्यम से चिन्तन का गाम्भीर्य प्रस्तुत करने मे पंत के काव्य-कौशल का परिचय मिलता है।

(३) **अलंकार**—(i) 'अतल से · देती अज्ञात'—सांगरूपक।
(ii) 'जग-जग', 'शत-शत', बुद-बुद'—पुनरुक्ति प्रकाश।
(iii) 'अचिर में चिर का अन्वेषण'—अनुप्रास।

एक छवि के ························ बीज बोती अज्ञात।

शब्दार्थ—छवि=सौंदर्य। उडगण=नक्षत्र। स्पन्दन=धड़कन। विभात=प्रभात। विधि=नियम; विधान। लोला=चंचल। छोर=किनारा। उभय=दोनों। त्रिगुण=सत्, रज और तम गुण। सृजन=निर्माण। वात=हवा; आंधी।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि पंत ने संसार को ब्रह्म की प्रतिच्छवि के रूप में चित्रित किया है। संसार के सभी दृश्यमान पदार्थ, सूर्य, चद्र, नक्षत्र आदि सभी उस ब्रह्म की प्रतिमूर्ति और उसी के आधीन चलने वाले है। जन्म और मृत्यु की क्रीड़ा में संसार का नाश और निर्माण भी उसी महत् शक्ति के इंगित पर होता रहता है।

व्याख्या—आकाश में प्रकाशमान असंख्य नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह-उपग्रह आदि सभी एक ही प्रकाश स्वरूप ब्रह्म की ज्योति से प्रकाशमान् है। जड़ और चेतन सृष्टि के कण-कण में चेतना, गतिशीलता अथवा जीवन-धारा मे उसी की प्राण-शक्ति समायी हुई है। किसी अज्ञात शक्ति से प्रेरित-संचालित एवं प्रकाशित होने वाले ये सभी तत्व अन्ततोगत्वा उस मूल शक्ति में उसी प्रकार विलीन हो जाते है जैसे प्रभात होने पर सभी नक्षत्रों का प्रकाश उसी में समर्पित हो जाता हैं। कोई भी तत्व स्वतन्त्र नही, अपितु एक महाशक्ति के आधीन कार्य करते है।

संसार क्या है ? इस विषय में भी पंत जी उसे निरन्तर चलने वाली एक प्रतिक्रिया मानते है। जीवन मे सुख-दुःख, रात और दिन के समान आते रहते है। जीवन को यदि एक सरिता या एक लहर मान लिया जाय तो सुख-दुःख निशा और प्रभात, हर्ष और विषाद, संयोग और वियोग— सभी जीवन-नदी के दो किनारे मात्र हैं। त्रिगुणात्मक संसार सत्, रज और तम—इन तीन गुणों से विनिर्मित हुआ है। यहाँ निर्माण और विनाश का क्रम चलता ही रहता है। सतोगुण से संसार की उत्पत्ति होती है तो रजोगुण उसकी गतिशीलता और विकास का कारण है। अन्त में तमोगुण से संसार का संहार होता है। सृजन और संहार की यह प्रक्रिया कभी रुकती नहीं, मृत्यु की रात आती है तो जीव आँख बंद कर लेता है किन्तु नवजीवन का प्रभात आकर पुनः उसे जगा देता है। ये दोनों जीवन की गतिशीलता के अभिन्न अंग हैं। जिस प्रकार शिशिर ऋतु की वायु वृक्षों से सभी पत्तों को झाड़कर उन्हें ढूंठ बना देता है किन्तु इस विनाश में भी निर्माण के तत्व निहित होते है। शिशिर की पतझड़ बसन्त की शोभा का आधार बन जाती है। वही पतझड़ जैसे नवजीवन के बीज बोकर भावी सुख-सौन्दर्य का कारण बन जाती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि के दार्शनिक गाम्भीर्य की सरस अभिव्यक्ति हुई है। नश्वरता एवं विनाश के क्रूर ताण्डव का अनुभव करते हुए

कवि की वृत्ति उसके रहस्य को जान लेने को मचल उठी। भारतीय चिन्तन की सूक्ष्मदर्शिता ने उसे दिशा दी और यहाँ आकर कवि का समन्वयवादी व्यक्तित्व साकार हो उठा। अनेकता में एकता का दर्शन करने की भारतीय प्रवृत्ति के कारण ही कवि संसार के कण-कण में एक ही परमसत्ता का दर्शन करता है। सुख-दुःख, सृजन-संहार आदि को जीवन-धारा के दो अभिन्न अंग मान लेता है। कवि के चिन्तन में वेदान्त दर्शन के साथ गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर और कवि प्रसाद की रहस्य भावना का प्रभाव अथवा सादृश्य भी देखा जा सकता है। प्रसाद जी ने भी सृष्टि और ब्रह्म का सम्बन्ध इस रूप में प्रस्तुत किया था।

नीचे जल था ऊपर हिम था, एक तरल था एक सघन।
एक तत्व की ही प्रधानता, कहो उसे जड़ या चेतन॥

(२) अलंकार—(i) 'एक ही लोल···संहार'—रूपक।
(ii) 'मूंदती नयन मृत्यु की रात'—मानवीकरण।
(iii) 'बीज बोती'—अनुप्रास।

म्लान कुसुमों को·····························आदान-प्रदान।

शब्दार्थ—म्लान=मुरझाये हुए। कुसुमों=पुष्पों। महत् = महान्। आदान=लेना। प्रदान=देना।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने समर्पण तथा आत्मबलिदान का महत्व प्रतिपादित किया है। संसार में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कहीं-न-कहीं समर्पित होना ही पड़ता है, इसी से जीवन की शोभा-वृद्धि होती है।

व्याख्या—कवि कहता है कि पुष्प अपनी सुगन्धित, सरसता, कोमलता और सौन्दर्य भरी मुसकान समर्पित करने के पश्चात् मुरझा जाते हैं, किन्तु उससे प्राणों का महत्त्व कम नही होता, अपितु उनका समर्पण भाव फलों के रूप में प्रतिफलित होता है। डालियाँ पुष्पों से रहित होने के पश्चात् फलों से लदकर मुसकराने लगती हैं। संसार में आत्मबलिदान सर्वोपरि है। सामाजिक अथवा आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से जो व्यक्ति अपने एक तक सीमित रहता है, उसकी उन्नति संभव नहीं रहती और न ही उससे समाज अथवा संसार का कल्याण होता है। जगत् तो आदान-प्रदान से विकसित और चालित होता है। अतः अपने स्व की सीमाओं को किसी महत् आदर्श अथवा उद्देश्य के लिए समर्पित कर देने में ही जीवन की सफलता निहित है।

विशेष—दार्शनिक चिन्तन के साथ ही जीवन की सफलता सम्भव नहीं होती, उसके साथ कर्मशक्ति का योगदान भी परमावश्यक है। जीवन के प्रति समन्वयवादी दृष्टिकोण आ जाने के कारण कवि पंत यहाँ पर आशा, विश्वास और आस्था का प्रतिपादन करने में सफल हुये हैं। प्रकृति के स्वरूप का आधार लेकर जीवन के लिए उपयोगी शिक्षा देने के कारण यहाँ प्रकृति का उपदेशात्मक रूप मे चित्रण हुआ है।

एक ही तो..............................मर्म मधुर झंकार।

शब्दार्थ—असीम=सीमा रहित। उल्लास=आनन्द। विविधाभास=अनेकरूपता का अनुभव। तरल=चंचल; द्रवित। जलनिधि=सागर। हरित विलास=आनन्दपूर्ण क्रीड़ा। प्रेमोच्छवास=प्रेम से युक्त श्वाँस। अचल=स्थिर। तारक=नक्षत्र। लास=नृत्य। विविध=अनेक रूपी। मर्म=हृदय।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने ब्रह्म की व्यापकता—अनेक रूपता में अभिन्नता स्थापित की है। एक ही सच्चिदानन्द ब्रह्म सम्पूर्ण प्रकृति के कण-कण में परिव्याप्त है। वह तो एक है, किन्तु स्थान और स्थिति-भेद के कारण उसमें विविधता का आभास होता है। इसी दार्शनिक सत्य का कवि ने प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

व्याख्या—वह ब्रह्म असीम, अनन्त, अनश्वर और आनन्द रूप में एक ही है, जो अपनी अनेकरूपता में विविधता का आभास करवाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने भाव के अनुसार उसे अनुभव करता है। आकाश मण्डल के अनेक नक्षत्रों में उसी का प्रकाश छविमान है। सरोवर, सरिता अथवा सागर के अनन्त विस्तार में वही तरल सौन्दर्यमय होकर स्थित है। धरती की सहनशीलता, पर्वत की उच्चता, पुष्पों की सरस-मधुरता, वैभव-विलास की मादकता जीवन की प्रत्येक गतिविधि में वही आनन्दमय अपनी अनेकता का आभास करवाता है। सागर की लहरों के हास-विलास में उसकी तरलता विद्यमान है, शान्त और नीरव आकाश की नीलिमा में उसी का विकास प्रकट हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति के मन मे उठने वाले अनुराग की मधुर अभिव्यक्ति, काव्य में रस, फूलों में सुगन्धि तथा स्थिर दिखाई देने पर भी जिनकी पलकें हँसती रहती हैं, उन सितारों की चमक तथा सागर की चंचल लहरों का मधुर नृत्य जीवन तथा प्रकृति स्वरूप और अंग में उसी परमसत्ता का रूप झलकता है।

वह विराट् और अनन्त शक्ति सम्पन्न ब्रह्म एक ही है, जो विभिन्न पदार्थों में स्थान और स्थिति-भेद के अनुसार विविध नामों से जाना जा सकता है। वास्तव में सम्पूर्ण सृष्टि के अन्तरतम में उठने वाली मधुर जीवनदायिनी झंकार एक ही है।

विशेष—(१) 'परिवर्तन' के पूर्वार्द्ध में पंत जी ने परिवर्तन के कठोर रूप का चित्रण किया है। निरन्तर विभीषिका, कठोरता अथवा विध्वंस का चित्रण करने से जीवन में निराशा और अनास्था का संचार हो सकता है। परन्तु भारतीय दर्शन का आधार मिल जाने पर कोमल-कठोर, हर्ष-विषाद, उत्थान-पतन आदि में साम्य स्थापित हो जाता है। भारतीय दर्शन की सर्वोत्तम देन है समन्वयवाद, जो वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन ही नहीं राजनीतिक जीवन में भी स्थिरता-समता स्थापित करने में पूर्णतया समर्थ है। इस अवतरण में पंत जी ने वेदान्त दर्शन पर आधारित समन्वयवाद का रोचक वर्णन किया है।

(२) अलंकार—(i) समस्त पद मे उल्लेख।
(ii) 'विश्व मे पाता विविधाभास', 'लोल लहरों में लास'—अनुप्रास।
(iii) 'उर उर'—पुनरुक्तिप्रकाश।

वही प्रज्ञा का..............................बेड़ी का भार।

शब्दार्थ—प्रज्ञा=बुद्धि। सत्य=यथार्थ; शाश्वत। प्रणय=प्रेम। लोचन=नयन। लावण्य=सौन्दर्य। शिव=मंगल। अविकार=विकार रहित। ध्वनित=गूंजता हुआ। दिव्य=अलौकिक। स्वीय=अपने। राखा=रक्षाबंधन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में पंत जी ने ज्ञान, भाव तथा कर्म का समन्वय किया है। जब तक इन तत्त्वों में समन्वय नहीं होता तब तक मानव न तो आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त कर सकता है, और न ही सांसारिक सुखों को उपलब्ध कर सकता है। जीवन में पूर्णता लाने के लिए ज्ञान, कर्म और भाव का समन्वय भारतीय दर्शन का श्रेष्ठतम सिद्धान्त है।

व्याख्या—बुद्धि का शुद्ध, पवित्र स्वरूप ही शाश्वत और चिरन्तन आनन्द का आधार है। शुद्ध बुद्धि द्वारा किया गया चिन्तन मन को शुद्ध करने के साथ उसमें सात्विक एवं शुद्ध प्रेम की अनुभूति जगाता है। मन और बुद्धि की

शुद्धता सौन्दर्य की अनुपमता का कारण बनती है। वास्तव में सौन्दर्य का सम्बन्ध केवल वाह्य शरीर से ही नहीं, अपितु मन और बुद्धि की शुद्धता सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है। आँखों को ऐसा उदात्त सौन्दर्य ही तृप्त कर सकता है। इस प्रकार मन, बुद्धि और सौन्दर्य की अनुपमता जीवन में सत्य, शिव और सौन्दर्य की सृष्टि करती है जो लोक-जीवन में शिवत्व और पावित्र्य भर देती है। शिवत्व और पावित्र्य यदि मधुर और सुकुमार स्वरों में प्रतिध्वनित हो जाये तो उसे सच्ची प्रेमाभिव्यक्ति कहा जायेगा। सौन्दर्य, प्रेम तथा भावनाओं का पवित्र और शुद्ध स्वरूप ही ब्रह्म की दिव्यता का साकार स्वरूप है। संसार तो भावनाओं से प्रेरित और परिचालित होता है। भावनायें जिस प्रकार के कर्मों से प्रकट की जाती हैं, तदनुसार ही उनका फल मिलता है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार एक ही गुण विविध प्रकार से फलीभूत होता है। जैसे धागा तो एक-सा ही होता है, भावना शुद्ध हो तो वही धागा रक्षाबंधन का पवित्र बंधन बनता है और दुष्कर्मों के कारण वही धागा पैरों का बंधन बन जाता है।

विशेष—(१) भारतीय जीवन और दर्शन में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् के रूप में ईश्वर की कल्पना की गयी है। उसे पाने के लिए मन, वचन और कर्म में एकरूपता आवश्यक है। मन की सात्विकता, वचन की गम्भीरता तथा कर्म का नि:स्वार्थ स्वरूप होने पर शिवत्व का साक्षात्कार हो जाता है। जीवन में पूर्णतया आ जाती है। इसी तथ्य को प्रस्तुत अवतरण में रोचकता और सरसता से व्यक्त किया गया है।

(२) **अलंकार**—(i) 'लोचनों में लावण्य'—अनुप्रास।
(ii) समस्त पद में उल्लेख।

कामनाओं के विविध..........................जीवन का मोल।

शब्दार्थ—कामनाओं=इच्छाओं। प्रहार=अघात; स्पर्श। स्फूर्ति=उत्साह। पुलिन=किनारा। ज्ञानामृत=ज्ञान रूपी अमृत। दमक=चमक। हुल्लास=उल्लास। याम=प्रहर। प्रकाम=आकर्षक; सुन्दर। अभिराम=सुन्दर। अलभ=जो प्राप्त न हो। इष्ट=प्रिय।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि पंत ने मानव-जीवन की मूल प्रेरक शक्तियों का वर्णन करते हुए, जीवन में आनन्द प्राप्ति के मार्ग का उल्लेख

किया है। कवि साधना को जीवन की बहुमूल्य सम्पत्ति स्वीकार करता है, क्योंकि अन्य सभी भावनाओं का समाहार साधना में हो जाता है अथवा हो जाना चाहिए।

व्याख्या—मानव-मन में नाना प्रकार को लालसाओं-इच्छाओं का उदय होता है। इच्छाओं का स्पर्श पाकर हृदय-वीणा के तार जाग उठते हैं और उनसे ऐसे संगीत की ध्वनि झंकृत होती है जो मनुष्य को आगे बढने की प्रेरणा देती है। मन को उत्साही बनाकर कर्मपथ पर अग्रसर करती है। जिस व्यक्ति की इच्छायें मर जाती हैं अथवा जो तृप्त हो जाता है उसका विकास-क्रम अवरुद्ध हो जाता है; इसीलिए महत्त्वाकांक्षाएं—जीवन में कुछ कर सकने की इच्छा का आना आवश्यक है। अपनी इच्छापूर्ति के लिए मनुष्य योजना बनाता है, तदनुसार कर्म करता है जिससे फल-प्राप्ति अवश्यम्भावी है। और यदि इच्छा ही नही उठनी तो शेष तत्त्वों का अस्तित्व ही नहीं हो सकता।

जिस प्रकार भावनायें मन के तारों पर जीवन-संगीत सुनाती हैं, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति के लिए जीवन-संघर्ष, उत्थान-पतन के अनुभव आवश्यक हैं। जिस प्रकार सरिता अपने किनारों का स्पर्श करती हुई बहती रहती है तो एक दिन उसे अनन्त सागर को असीमता प्राप्त हो जाती है, इसी प्रकार जिसकी जीवन-धारा सुख-दुःख रूपी किनारों का स्पर्श करती हुई चलती है, उस व्यक्ति को ही ज्ञान का अमृत प्राप्त हो जाता है। जीवन की व्यावहारिकता के अनुभवों से मनुष्य वह प्राप्त कर लेता है जो जीवन-भर पुस्तकें पढ़ने से नही मिलता। वास्तविक जीवन-सघर्षों में जूझते हुए व्यक्ति की सहनशीलता, चिन्तन तथा कार्य-शक्ति का विकास होता है।

अनुराग की मधुरिमा, कोमलता तथा आनन्द से भरपूर अधरों पर मुस्कान खेलती है तो उसे देखकर किसी उदास अथवा निराश को जीवन-शक्ति प्राप्त होती है। किन्तु समयान्तर में जब वही हंसी पिघल जाती है, परिवर्तन की शक्ति के कारण उदासी में बदल जाती है, तो देखने वाली आंखों को अश्रु धारा प्राप्त हो जाती है। सुख और दुःख सदा स्थिर नही रहते, दोनों को जीवन का अभिन्न अंग मानते हुए कवि कहता है कि वेदना, व्यथा और संताप में तपकर व्यक्ति के जीवन मे और व्यक्तित्व का निखार आता है। जिस प्रकार आग में तपकर सोना कुन्दन बन जाता है उसी प्रकार संघर्षों की आग मे तपकर ही मानव-जीवन का उल्लास, चरित्र तथा व्यवहार विकसित होता है।

सुख की आकांक्षा तीव्र क्यों होती है ? उसका आकर्षण इतना शक्तिशाली क्यों होता है ? इस विषय में कवि का विचार है कि मानव-जीवन हर समय अभावों, दुःखों और संतापों में घिरा रहता है। यथार्थ जीवन की दुश्चिन्ताएँ उसको व्यथित करती है। इसलिए सुख की कल्पना में मानव को सरसता दिखाई देती है। कल्पित सुख उसके लिए सुन्दरतम बन जाता है। वैसे भी जो व्यक्ति असीम दुःख झेलता है सुख का रसास्वादन भी वही करता है। रात-दिन जीवन-संघर्षो को झेलते हुए कई बार सैनिक निराश अथवा हतोत्साहित हो सकता है किंतु जो अपने कर्त्तव्य-पथ पर सदा सजगता और तत्परता से चलता है, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो प्राणों की बाजी लगा देते है विजय का उल्लास और आनन्द भी वही भोग पाते है। हर उत्तम वस्तु को पाने के लिए उसके अनुकूल साधना परमावश्यक है। हर व्यक्ति को अपना लक्ष्य, अपना उद्देश्य अथवा ईश्वर अनुपम, अगोचर और अगम लगता है, इसलिए वह उसे प्राप्त करने के लिए लालयित रहता है। वस्तुतः जीवन की सफलता का मूल्य साधना से ही आंका जा सकता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में मानव-जीवन में सुख-दुःख, आशा-निराशा आदि की व्याख्या सहज, सरल किन्तु मनोविज्ञान के आधार पर की गयी है। जीवन में सुख अथवा दुःख में से किसी को भी छोड़ा नहीं जा सकता। कोमल और कठोर, सुन्दर और असुन्दर, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद परस्पर विपरीत होकर भी एक दूसरे के पूरक है। एक के अभाव में दूसरे की अनुभूति नहीं हो सकती।

(२) जीवन में भावनाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है। वस्तुतः भाव अथवा इच्छा हमारे मन में जीवन के मधुर स्वप्नों का आधार है। कोरा स्वप्न तो मिथ्या होता है, उसमें संकल्प की दृढता तथा साधना की सजगता का योगदान होने पर ही सफलता प्राप्त होती है। इसी तथ्य को कवि ने काव्य की भाषा में व्यक्त किया है। कामनाओं का स्पर्श मनवीणा में जीवन-राग जगा देता है। सफलता असफलता की चोट खाकर ज्ञानामृत प्राप्त होता है तो जीवन-लक्ष्य के प्रति संकल्प की दृढता आ जाती है और इस सकल्प के अनुसार साधना की जाती है तो इष्ट लक्ष्य या जीवन का उल्लास प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार जीवन विकास के सूत्रों को मिलाने का कवि ने सफल प्रयास किया है।

(३) अलंकार—(i) 'पिघल होठों का हिलता हास'—विशेषण विपर्यय।
(ii) 'कामनाओं के···करते संचार'—सांगरूपक।
(iii) 'तरसते है हम···अभिराम'—दृष्टान्त।
(iv) 'इसी से सुख अति सरस'—अनुप्रास।

बिना दुख के·································गति क्रम का ह्रास।

शब्दार्थ—निस्सार=सार रहित। आह्लाद=आनन्द। विषाद=दु.ख। समस्या=उलझन। स्वप्न गूढ=स्वप्न के समान रहस्यपूर्ण। विकास=उन्नति। गतिक्रम=गतिशीलता। ह्रास=क्षय; नाश।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि पंत ने जीवन में सुख और दुःख का समन्वय करने का प्रयास किया है। संसार के दुःख, अभाव, संताप और शोषण का प्राधान्य है किन्तु यह सब बदलेगा—इसी निश्चय को व्यक्त करते हुए कवि ने जीवन के स्वरूप अथवा क्रमिक विकास का स्पष्टीकरण किया है। छायावादी कवियों पर दुःखवाद का विशेष प्रभाव था। यही कारण है कि पंत जी ने भी सुख की अपेक्षा दुःख को अधिक महत्त्व दिया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि जब तक जीवन में दुःख न हो तब तक सुख निरर्थक होता है। दुःखों की घनघोर छटाओं से निकलकर जो व्यक्ति सुख के प्रभात को देखता है वही उसका वास्तविक रसास्वादन कर सकता है। जिस जीवन में करुणापूर्ण आँसू नहीं होता, किसी की संवेदन' अथवा सहानुभूति से मन व्यथित नहीं होता, दू:ख की अनुभूति नहीं होती, वह जीवन तो नीरस और भार-रूप हो जाता है। संसार में दया, क्षमा, प्यार, सौंदर्य तथा उत्साह आदि को अधिक महत्त्व इसीलिए दिया जाता है, क्योंकि संसार मे निर्धन, निर्बल, निराश्रय, निराश और निरुपाय व्यक्तियों का बाहुल्य है। उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करने में भी जीवन को सरसता मिल सकती है अन्यथा सुखोपभोग करते हुए मानव जीवन एकरसता के कारण निरुत्साही और निष्क्रिय हो जाता है। सुख-दुःख की आंख-मिचौनी खेलता हुआ जीवन ही जीवन होता है।

सुख अथवा दुःख भी जीवन और जगत् के समान परिवर्तनशील है। आज यदि किसी को दुःख प्राप्त है, आने वाला कल उसके आह्लाद का कारण बन जाता है और कल जिसको सुखोपभोग की सभी सुविधायें उपलब्ध थीं, जिसके जीवन में अभाव और वेदना का लेश भी नहीं था, आज वही विषाद से परिपूर्ण

का सजीव स्वरूप प्रस्तुत करने में केवल प्राकृतिक दृश्य ही नहीं, अपितु भावना और चिन्तन के लिए आवश्यक एकाग्रता का वर्णन भी अत्यन्त आकर्षक और प्रेरक बन पाया है। पद्यांश के शेष भाग में गंगा का मानवीकरण करके उसे एक तपस्विनी बाला का रूप दिया गया है। कवि की यह विशेषता रही है कि इस कविता में गंगा की पावनता और पवित्रता को अक्षुण किन्तु सहज आकर्षक बनाने के लिए तापस बाला के सात्विक स्वरूप मे प्रस्तुत किया गया है। जहाँ तक प्रकृति निरीक्षण और उसका मानवी सौन्दर्य से सादृश्य स्थापित करने की बात है कवि पंत को उसमें अपूर्व सफलता मिली है। गगा की शुभ्रता, पवित्रता, चन्द्रमा की रश्मियों का किनारों पर प्रभाव, लहरों का मुक्त कुन्तला रमणी के बालों के समान क्रीडा करना अथवा आकाश की नीलिमा का गोरे-गोरे अंगों पर लहराना सभी मिला कर एक ऐसा शब्दचित्र उपस्थित करता है जो अपनी व्यापकता, सहजता के कारण पूर्णतया साकार बन गया है।

(२) **अलंकार**—(i) 'सैकत शय्या पर, दुग्ध धवल', 'श्रान्त वनान्त निश्चल' में—अनुप्रास।
(ii) गंगा का—मानवीकरण।
(iii) 'सैकत शय्या···मृदुल लहर'—साँगरूपक।
(iv) 'अनन्त'—श्लेष।
(v) 'सिहर-सिहर'—पुनरुक्ति।

चाँदनी रात का··································स्वप्न सघन।

शब्दार्थ—सत्वर=शीघ्र। सस्मित=मुस्कराती हुई। ज्योत्स्ना=चाँदनी। लंगर=नौका बाँधने वाली रस्सी। मंथर=धीरे। तरणि=नौका। शुचि=पवित्र। दर्पण=शीशा। रजत पुलिन=रूपहले किनारे। प्रमन=प्रसन्न।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने नौका विहार करते हुए आस-पास के दृश्य का चित्र उपस्थित किया है। इसमें नाव खोलने से लेकर मध्यधारा तक पहुंचने, नाव, नदी, किनारे और किनारे पर बसे हुए राजमहल का दृश्य अंकित किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि चाँदनी रात के उस प्रथम प्रहर में, जबकि निस्तब्धता और शान्ति की कमनीयता चन्द्रिका के कारण बहुत बढ़ चुकी थी, वह अपने मित्रों के साथ शीघ्रता से नौका लेकर चल पड़े। उस समय दूर-दूर तक फैली हुई रेत भी चाँदनी के रंग में रंगी हुई थी, उसी में प्रवाहित होती

हुई गंगा इस प्रकार प्रतीत होती थी जैसे मुस्कराती, अधखिली सीप में मोती की आभा चमक रही हो। सम्पूर्ण वातावरण ज्योत्स्ना की शुभ्रता में मुस्करा रहा था। आनन्द और उल्लास के इस दृश्य मे नौका के लंगर खोल दिये गये, धीरे-धीरे पाल वायु वेग में लहराने लगे और वह छोटी-सी नौका धीरे-धीरे अपनी मस्त चाल से इठलाती हुई गगा की शुभ्र धारा मे आगे बढने लगी, ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे कोई हंसिनी अपने श्वेत पंखों को फैलाकर जल विहार करने में संलग्न हो। ज्यों-ज्यों नौका आगे बढी, दूर होते हुए किनारे का जल स्थिर दिखायी देने लगा। उस स्थिर प्रतीत होने वाले शुभ्र जल में प्रतिविम्बित होते हुए ऊँचे-ऊँचे रूपहले किनारे क्षण भर के लिए दुहरे ऊँचे दिखाई देने लगे। गंगा के किनारे पर स्थित कालाकाँकर का राजभवन भी गंगा में प्रतिबिम्बित हो रहा था, उसकी छाया ऐसी दिखाई देती थी जैसे यह राजभवन किन्हीं स्वर्णिम स्वप्नों में खोया हुआ, वैभव और सुख का आनन्दोपभोग करता हुआ निश्चिन्त और प्रसन्न होकर सो रहा हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश इस तथ्य का प्रमाण है कि पंत जी में प्रकृति के रूप, रंग, आकार, गति, ध्वनि आदि को शब्दों मे साकार करने की अपूर्व क्षमता है। प्रारम्भ में नौका के रंग का सादृश्य मोती की ज्योत्स्ना में हंसिनी कह कर प्रकट किया और फिर तदनुसार ही उसकी गत्यात्मकता को 'मन्द-मन्द मथर-मंथर' हंसिनी ही कहकर सादृश्य के आधार पर सजीव बना दिया है। प्रत्येक जलविहार करने वाला जानता है कि ज्यों-ज्यों किनारा पीछे रह जाता है उसके जल में स्थिरता का आभास बढ़ता जाता है। स्थिर जल में किनारों की परछाईं को दुहरे ऊँचे कहकर कवि ने एक चित्र-सा प्रस्तुत कर दिया है। राजमहलों का सुख स्वप्नो में मग्न होकर सोना एक मनोवैज्ञानिक तथ्य की पुष्टि करता है। मन मे जैसा भाव हो चेहरे पर उसी की छाया पड़ती है। जिनके पास सभी प्रकार के सुख-साधन होते हैं वे सदा प्रसन्न ही रहते है।

(२) अलंकार—(i) 'सिकता की सस्मित सीपी पर', 'मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर'— अनुप्रास।

(ii) 'मृदु मद मंद, मथर-मंथर'— पुनरुक्ति।

(iii) 'हंसिनी-सो'—उपमा।

(iv) नौका पर हंसिनी का आरोप होने के कारण— रूपक।

(v) 'कालाकाँकर······ सघन'— मानवीकरण

नौका से उठती...............................मुग्धा-सा रुक रुक ।

शब्दार्थ—हिलोर=लहर। ओर-छोर=दोनों किनारे। विस्फारित=फैलाये हुए। चल=चंचल। तारक=नक्षत्र। ज्योतित=प्रकाशित। अन्त-स्तल=गहराई। लघु=छोटे। पैरती=तैरती। कल=सुन्दर। रूपहले=श्वेत। कचों=केशों। तिर्यक=टेढा। मुग्धा=अपने यौवन में मग्न नायिका।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने गंगा में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा और नक्षत्रों के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है। प्राकृतिक उपकरणों के सौन्दर्य के अति-रिक्त इसमें प्रेमभावना का भी उत्कृष्ट चित्रण हुआ है।

व्याख्या—नौका गंगा के प्रवाह में बढ़ती जाती है, उसके चलने से जल में लहरें उठती और बढ़ती हैं, जिनके कारण नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक एक हलचल मच जाती है। आकाश का प्रतिबिम्ब गंगा में पड़ रहा था, किन्तु लहर की गति से वह सम्पूर्ण आकाश हिलता हुआ प्रतिभासित होता है। चन्द्रमा और तारों की छाया जल में भी काफी दिखाई देनी स्वाभाविक है किन्तु जब वह 'आकाश' हिलता हुआ दिखायी देता, उस समय ऐसा अनुभव होता है जैसे चंचल तारों के झुण्ड के झुण्ड जल की अतल गहराईयों में अपने छोटे-छोटे दीपकों को प्रकाशित कर और अपने नेत्रों को फैला कर स्थिरता से कुछ खोज रहे हों। उन्हीं नक्षत्रों के छोटे-छोटे दीपकों को अपने चंचल अंचल की ओट में लेकर लहरें भी लुक-छुप कर संकोच और उत्साह के कारण कभी छिपती और कभी प्रकट होती हुई प्रतिपल चल रही हैं। अभिसार की उत्सुकता लेकर लहरें भी किसी परमप्रियतम को मिलने के लिए आतुर हैं। सामने की दिशा में शुक्र की उज्ज्वल और शुभ छाया जल में पड़ने लगी, जल में तैरती हुई वह छाया ऐसी थी जैसे कोई परी अपने शुभ्र बालों में कभी प्रकट होती हुई कभी छुपती हुई तैर रही हो। ऐसे आकर्षक दृश्य में दशमी का चन्द्रमा, जो आकार मे कुछ टेढ़ा दिखाई देता है, उसकी छाया भी लहरों में लुका-छिपी करती हुई इस प्रकार प्रतीत होती है जैसे कोई मुग्धा नायिका घूँघट में से आधा मुख प्रकट करती और आधा छिपाती हुई, लज्जा और संकोच से दूसरों को देख रही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इस में कवि का बिम्बग्रहण उल्लेखनीय है। लहरों की गतिशीलता को व्यक्त करने के लिए 'चंचल अंचल', 'लुक-छिप पल-पल, 'रुक-रुक' आदि शब्दों से सहज और प्रभावी चित्रण हो सका है।

(२) कवि की मान्यता है कि संसार का प्रत्येक तत्त्व किसी परमसत्ता, इष्ट अथवा अपने लक्ष्य के सदा प्रयत्नशील रहता है। यहाँ प्रकृति के माध्यम से कवि ने उस चिरन्तन तत्त्व की खोज का ही चित्रण किया है। तारक दल जल की अतल गहराइयों से अपने इष्ट को पाने के लिए आकुल हैं, लहरें भी किसी परम प्रियतम को ढूंढने में संलग्न है और चन्द्रमा भी मानों अभिसार के लिए आतुर है। इस प्रकार विश्व के प्रत्येक कण में पूर्णता की कामना को अभिव्यक्ति किया गया है।

(३) प्रेम, मिलनोत्कण्ठा और अभिसार का चित्रण करते हुए कवि ने भारतीय जन-जीवन का ही आधार लिया है। भारतीय साहित्य में आँचल की ओट में दीपक लेकर अभिसारोन्मुख नायिका के अनेक चित्र मिलते है। दीपक अपने शाब्दिक अर्थ के अतिरिक्त उस प्रेमभावना का प्रतीक भी है जो जीवन में आशा, उल्लास और कर्त्तव्य का दीपक जला देती है। नायिका का संकोच-वश छुपना और दर्शन की उत्सुकता से सामने आना आदि विविध भावनाओं और क्रियाओं का वर्णन करने मे कवि को पूर्णतया सफलता मिली है।

(४) **अलंकार**—(i) 'कुछ खोज रहे चल तारक दल', फिरती लहरें 'लुक-छिप पल पल'—अनुप्रास।

(ii) तारक, लहरों,—दशमी का शशि आदि का मानवीकरण।

(iii) 'पल-पल,' 'झुक-झुक', 'रुक-रुक'—पुनरुक्ति।

(iv) 'परी-सी', 'मुग्धा-सा'—उपमा।

(v) 'विस्फरित···पल पल'—उत्प्रेक्षा।

अब पहुँची चपला························कोकी को विलोक।

शब्दार्थ—चपला=तेज चलने वाली ; नाव। कगार=किनारा। दूरस्थ=दूर रहने वाले। कृश=दुर्बल। विटप=वृक्ष। भ्रूरेखा=भौंहों की रेखा। अराल=टेढ़ा। उर्मिल=लहरों से युक्त। प्रतीप=विपरीत। कोक=चकवा। विलोक=देखकर।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में 'नौका विहार' के अन्तर्गत देखे हुए प्रकृति सुन्दरी के रूप का चित्रण किया गया है। सम्पूर्ण प्रकृति पर चेतना का आरोप करते हुए कवि ने रूप-सौन्दर्य के अतिरिक्त प्रेम के अतीन्द्रिय और व्यापक भाव की अभिव्यक्ति करते हुए अपनी काव्य-प्रतिभा का गौरव प्रकट किया है।

व्याख्या—विहार करते हुए वह छोटी-सी नौका अपनी चपल गति से जब मध्यधारा में पहुंची तो उस समय चारों ओर असीम और अनन्त चन्द्रिका का विस्तार ही दिखायी देता था। रुपहले प्रकाश में किनारों का अस्तित्व भी जैसे लीन हो गया, उस समय जहाँ तक दृष्टि जा सकती थी केवल शुभ्र चन्द्रिका का प्रसार ही दिखायी देता था। उस समय यही प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण प्रकृति किसी परम सत्ता से मिलने को आतुर है। कवि गंगा की धारा को नायिका का कोमल और दुर्बल शरीर मान कर शेष प्रकृति को उसके ही अंग-प्रत्यंग मानते हुए कहता है कि नदी के दो किनारे, सदा दूर रहने वाले किनारे, ऐसे हैं जैसे किसी को आलिंगनपाश में लेने को आतुर होकर फैले हुए हों, वहुत दूर वृक्षों की लम्बी और घनी पंक्तियाँ उस प्रकृति नायिका की लम्बी और टेढी भौहों के समान देखने के लिए आतुरता के कारण फैली हुई हैं। आकाश भी अपने निष्पलक नीले नेत्रों से धरती की ओर निहार रहा है। पृथ्वी हो या आकाश, प्रेम की उत्सुकता सभी में है, किन्तु इस संसार में प्रेम की उत्सुकता ही बनी रहती है, मिलन तो इस संसार में सम्भव नहीं हो पाता। गंगा की धारा में एक द्वीप देखकर कवि कहता है कि यह द्वीप से टकराकर लहरें लौट जाती है—कवि उस मातृभाव को ही मन में उठने वाली विभिन्न भावलहरियों को लौटाने वाला मानता है। संसार में मातृत्व भाव के समक्ष अन्य भावनाएं गौण पड़ जाती हैं, यही कारण है कि लहरें उस द्वीप से टकरा कर लौट जाती हैं। अचानक चकवे की आवाज सुनकर कवि विचार करता है क्या यह विरह व्यथा से पीड़ित चकवा है जो अपनी छाया को ही चकवी मान कर अपने शोक को हल्का करने के लिए बोल रहा है। भ्रम के कारण ही चकवा अपने वियोग दुःख को समझता है तो कवि उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो उठता है, क्योंकि वास्तविकता का ज्ञान होने पर उसकी व्यथा कई गुणा अधिक हो जायेगी।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में सम्पूर्ण प्रकृति को सजीव व्यक्तित्व देकर साकार करने का सफल प्रयास हुआ है। छायावादी कवि प्रेम और सौन्दर्य के कवि होने पर भी करुणा और वेदना के कवि माने जाते हैं। इस पद्यांश में एक ओर तो प्रकृति सभी प्रकार के सौन्दर्य से सम्पन्न है किन्तु दूसरी ओर प्रेम की अनन्त पिपासा से भी मुक्त है। जिस प्रकार नदी के किनारे पास होकर भी मिल नहीं पाते वैसे ही प्रेम की प्राप्ति सम्भव नहीं हो पाती। धरती की

आकांक्षा के समान आकाश भी तो विवश है, केवल धरती के सौन्दर्य को देख सकता है, परस्पर मिलन तो दूर क्षितिज रेखाओं के समान केवल काल्पनिक है।

(२) विरह व्यथा का चित्रण अधिक स्वाभाविक और प्रभावी बनाने के लिए कवि सुप्रसिद्ध 'कवि समय' चकवा-चकवी को प्रयुक्त किया है। जो निकट रह कर भी परस्पर मिल नही पाते। यही पर कवि की भावुकता और करुणा भी ध्वनित होती है। चकवा छाया को निहार कर ही अपने व्यथित मन को शान्ति देने का प्रयास करता है किन्तु वास्तविकता जान लेने पर यही भ्रम उसके दु:ख को बढ़ाने का कारण हो जायेगा, इसीलिए कवि उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है।

(३) अलंकार—(i) 'दो बाँहों से दूरस्थ तीर', 'भू रेखा-सी', 'शिशु-सा'—उपमा।
(ii) 'धारा का कृश कोमल शरीर,' 'क्या विकल कोक ···शोक'—अनुप्रास।
(iii) 'दो बाँहों से···कर प्रतीप'—मानवीकरण।
(iv) 'वह कौन विहग···विलोक'—भ्रान्तिमान।

पतवार घुमा ······························घाट को सहोत्साह।

शब्दार्थ—प्रत्तनु=हल्का। विपरीत=उल्टा। प्रसार=फैला कर। मुक्ताफल=मोतियो के फल। स्फार=चमकीला। रलमल=हिलमिल। तरल=चंचल। लतिका=बेल, टहनी। उडु=नक्षत्र। फेनिल=झाग भरा। उथला=कम गहरा। सरिता=नदी। लग्गी=लम्बा बाँस।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश मे कवि ने विपरीत धारा की ओर चलती हुई नाव का चित्रण किया है। नौका के पतवार चलने से लहरों के विभिन्न रूपों का अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रण करते हुए कवि ने उनके शब्दचित्र इसमें प्रस्तुत किये है।

व्याख्या—अभी तक नदी धारा के प्रवाह के साथ-साथ सहज गति से चल रही थी। वापस लौटने के लिए हल्की-सी नौका को विपरीत दिशा में मोड़ने के लिए पतवारो को घुमाया गया। धारा की दिशा के अनुकूल चलते हुए विशेष परिश्रम नही करना पड़ता किन्तु धारा के प्रतिकूल चलने के लिए विशेष प्रयास अपेक्षित रहता है। उस समय नौका ऐसी दिखायी देती थी जैसे वह

चप्पुओं के रूप में अपने हाथ फैला-फैला कर, चमकीली फेन रूपी मोतियों के गुच्छे भर-भर कर लुटा रही हो। जल में चन्द्ररश्मियों से प्रकाशित होती छोटी-छोटी लहरें तारों जड़े हारों के समान जैसे बिखर रही थी। पतवारों से उठती-गिरती लहरें चाँदनी मे चमकती हुई ऐसी प्रतीत हो रही थी जैसे उस चंचल जल मे चांदी के साँप हिलमिल कर क्रीड़ा कर रहे हों। लहरें भिन्न-भिन्न प्रकार की टेढ़ी-सीधी रेखाओं के समान अपना सौन्दर्य प्रकट करती हैं। चन्द्र का प्रतिबिम्ब अथवा चन्द्र किरणें उन अनेकानेक लहरों में प्रतिबिम्बित होते हुए ऐसे दिखायी देती है जैसे बसन्तागमन के समय प्रत्येक लता पर सैकड़ों चन्द्रमा अथवा नक्षत्र रूपी फूल विकसित हो गये हों। वसन्त ऋतु में चारों ओर फूलों की सुरभि और सरसता वातावरण में व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार नदी में पतवारों के चलने से जो झाग उठती है उसके प्रत्येक बुदबुद में चन्द्रमा अथवा नक्षत्र का प्रकाश व्याप्त होकर सौन्दर्य की वृद्धि करता है। तभी नौका किनारे की ओर बढ़ी, धीरे-धीरे सरिता का प्रवाह कम होता गया, उस समय एक लम्बे बाँस से जल की गहराई का अनुमान करते हुए सभी मित्र बड़े उत्साह से घाट की ओर बढ़े।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में नौका नयन का चित्रण स्वानुभूति परक होने के कारण स्वाभाविक और आकर्षक बन गया है। धारा के विपरीत चलते हुए डाँडों की क्रिया-प्रक्रिया तथा उससे उत्पन्न दृश्य को कवि ने अत्यन्त सूक्ष्मता से देखा और चित्रित किया है। 'मुक्ताफल फेन स्फार' में जल की चमक व्यंजित होती है तो 'चाँदी के सांपों' के रूप में लहरों की विविध आकृतियों और क्रीड़ाओं को साकार किया गया है।

(२) अन्तिम दो पंक्तियों में कवि ने मानवीय भावना की भी झलक प्रस्तुत की है। अपनी किसी भी यात्रा से लौटते हुए मन मे आनन्द और उत्साह का होना स्वाभाविक है। प्रकृति-सौन्दर्य का सहज साक्षात्कार अथवा उपभोग करने से मानव को जो सहज सुख मिलता है वही उसके चिन्तन का प्रेरक होता है। कवि पत जी ने भी इस उत्साह का कथन साभिप्राय किया है, जिसका परिपाक कविता के अन्तिम चरण में हुआ है।

(३) अलंकार—(i) 'लहरों और लतिकाओं में खिल'—अनुप्रास।
(ii) 'भर-भर', 'सौ-सौ'—पुनरुक्ति।
(iii) 'साँपों सी,' 'रेखाओं सी'—उपमा।
(iv) 'डांडों के चल ˙ तार तार'—मानवीकरण।
(v) 'लहरों की···फेनिल'—रूपक।

ज्यों-ज्यों·· लगती ·······························अमरत्व दान।

शब्दार्थ—आलोकित = प्रकाशित। क्रम = प्रक्रिया। शाश्वत = चिरन्तन, अमर। उद्‌गम = प्रारम्भ, उत्पत्ति। संगम = मिलन। रजत हास = शुभ्र हँसी। विलास = क्रीडा। कर्णधार = चलाने वाले। अस्तित्व ज्ञान = आत्म ज्ञान। प्रमाण = उदाहरण। अमरत्व = अमरता।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में प्रकृति और सौन्दर्य के कोमल, सुकुमार और भावुक कवि पंत का जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है। नौका-विहार करते हुए कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य की व्यापकता एवं मोहकता का आस्वादन किया, वापस लौटते हुए उसका मन विभिन्न प्रकार के विचारों से घिर जाता है। यहाँ आकर कवि ने प्रकृति की सुन्दरता मे जीवन की चिरन्तनता का दर्शन प्राप्त किया है।

व्याख्या—मानवीय स्वभाव है कि कही भ्रमण अथवा मनोरंजन के लिए उसके मन में सदा उत्साह और उमग रहती है, किन्तु जब वहाँ से लौटता होता है तो विश्रान्ति क्लान्ति के कारण वह तो या खिन्न होता है या फिर विचारमग्न हो जाता है। कवि पत पर भारतीय दर्शन का विशेष प्रभाव है, अतः वह नौका-विहार के समाप्त होने के साथ ही जीवन, जगत तथा परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ चिन्तन करता है। कवि कहता है कि ज्यों ज्यों नौका किनारे की ओर बढती है, त्यो-त्यों मन मे शतशः प्रश्न उभरते है। गंगा के प्रवाह को अबाध गति से, अनादि काल से वहता समझ कर कवि का विचार पुष्ट हो जाता है। वह यह मानता है कि जिस प्रकार यह धारा है, संसार की प्रक्रिया भी उसी प्रकार है। धारा का उद्‌गम होता है, तदन्तर वह विकास-पथ की ओर बढ़ती है और अन्त में असीम आनन्दसागर मे लीन हो जाती है। ये तीनों स्थितियाँ भी वास्तविक नहीं हैं। उद्‌गम से पूर्व भी उसकी स्थिति है, इसी प्रकार संगम के पश्चात् भी उसका अस्तित्व नही मिटता। उक्त तीनों स्थितियों में चलने वाला यह चक्र अनादिकाल से गतिशील है अतः चिरन्तन है। गंगा की धारा के समान ही जीव की उत्पत्ति होती है, उसके जीवन का विकास होता है और अन्त में उसका संगम किसी परमसत्ता में हो जाता है। जीव का भी जन्म से पूर्व तथा मृत्यु के पश्चात् अस्तित्व रहता है।

सर्वात्मवाद के अनुसार प्रत्येक कण में परमात्म तत्त्व निहित रहता है। इसी सर्वात्मवादी प्रकृति के प्रत्येक अंग को भी शाश्वत मानता है। पंत जी

कहते हैं कि आकाश की नीलिमा का विस्तार, चन्द्रमा की रूपहली किरणों का आनन्दमय आलोक, नदी अथवा सागर की छोटी-छोटी लहरों की क्रीड़ा सभी चिरन्तन हैं। प्रत्येक का अस्तित्व शाश्वत है। इसी प्रकार ससार मे सत्य, शिव और सौन्दर्य भी चिरन्तन है। किन्तु ससार के जीवन की गतिविधि के नियामक, तुम चिरन्तन और आवागमन से मुक्त हो, जन्म और मृत्यु की सीमा से पार हो; यह जीवन रूपी नौका की क्रीड़ा शाश्वत है, शुद्ध-प्रवुद्ध, सत्य, नित्य परमात्म तत्त्व का अंश होने के कारण इसमें कोई व्यतिक्रम अथवा व्यवधान नहीं आता। किंतु मैं संसार में आकर, यहाँ के मोहजाल, अपने अज्ञान के कारण अपने अस्तित्व को भूल गया था। मैं कौन हूँ ? मेरा उद्देश्य क्या है ? यह सब मुझे विस्मृत हो चुका था, किन्तु आज गंगा में नौका विहार करते हुए मुझे जीवन की सत्यता का प्रमाण मिल गया है जिसे पाकर मुझे अमरता का ज्ञान प्राप्त हो गया है।

विशेष—(१) 'पल्लव' काल में कवि जीवन के सत्य को जानने के लिए उत्सुक हो उठा था। 'परिवर्तन' में जिस नित्य सत्य को ढूँढने का प्रयास प्रारम्भ हुआ था, प्रस्तुत कविता उसकी पूर्ति का प्रमाण है। यहाँ आकर कवि को जीवन की अमरता का साक्षात प्रमाण मिला है। प्रस्तुत पद्यांश में जिस विचार की अभिव्यक्ति हुई है उसमें उपनिषदों के तत्त्व ज्ञान की स्पष्ट झलक है। जगत का सम्पूर्ण जीवन उस सर्वशक्तिमान के संकेत पर ही चलता है। उसी का अंश होने की अनुभूति आने पर ही सांसारिक मोहपाश से मुक्ति मिल पाती है। कविता की अन्तिम चार पंक्तियों में कवि आत्मपरक शैली पर भावाभिव्यक्ति करते हुए यही ध्वनित करना चाहता है कि इसमें उनका अन्वेक्षित जीवन दर्शन है। स्वानुभूतिपरक होने के कारण इसकी वोधगम्यता और सरसता में वृद्धि हो गयी है।

(२) **अलंकार**—(i) 'धारा-सा ही जग का क्रम'—उपमा।
(ii) 'शाश्वत नभ···विलास'—अनुप्रास।
(iii) 'जीवन-नौका'—रूपक।

....

अप्सरा

कविता परिचय—'अप्सरा' कविता का रचनाकाल सन् १९३२ है। इसमें कवि एक सविशेष कल्पना के सहारे शिव की ओर उन्मुख हुआ है—"जग के उर्वर आंगन में···चिर नूतन। इसी सविशेष की कल्पना के सहारे, जिसने 'ज्योत्सना' को और गुंजन की 'अप्सरा' को जन्म दिया है। मैं पल्लव से गुंजन मे अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करता हुआ पाता हूँ।" इस कविता के सम्बन्ध में एक समीक्षक ने लिखा है—"पंतजी की 'अप्सरा' शीर्षक रचना को भी हम उनके शृंगार और सौन्दर्यपरक प्रगीतों के अन्तर्गत परिगणित कर सकते है। इसमें पंतजी ने उसे सौन्दर्यचेतना के रूप में चित्रित किया है, जो नारी के शैशव से लेकर यौवन तथा जरा-मरण तक उसके अंग-प्रत्यंग मे एक रहस्यमयी दीप्ति बनकर लिपटी रहती है। उसकी इस रचना पर रवीन्द्र की 'उर्वशी' की गहरी छाया है। महाकवि की भी यह रचना स्विनबर्न के प्रसिद्ध प्रगीत 'एट लैण्टा इन कैलीडोन' से प्रभावित है। पंतजी की अप्सरा जहाँ सौन्दर्य के आदर्श की विशुद्ध प्रतिमा है वहाँ रवीन्द्र की उर्वशी कामना की देवी 'एफ्रोडाइट का भारतीय संस्करण' कही गयी है। उसमे वेदना और करुणा का संयोग है। पंतजी की अप्सरा मे 'उत्फुल्लता और तरलता है। वह प्रकृति तथा जीवन में व्याप्त केवल सौन्दर्य की निसर्ग प्रतिमा है। इस प्रकार रवीन्द्र से प्रभावित होते हुए भी पतजी ने इस रचना को एक स्वतन्त्र आकार दिया है। वह उनकी कल्पना के उद्दाम स्वरूप को प्रस्तुत करती है। कल्पनाधिक्य के कारण यत्र-तत्र उसकी प्रेषणीयता भी शिथिल हो गयी है।"

निखिल कल्पनामयि······························**विचित्र अपार।**

शब्दार्थ—निखिल=अनादि। अखिल=सम्पूर्ण विश्व। अस्फुट=अनुद्घाटित। कुहुकिनी=सगीतमयी। विभ्रममयी=भ्रम उत्पन्न करने वाली; रहस्यमयी।

प्रसंग—कवि कल्पना के आधार पर अप्सरा के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन करता है।

व्याख्या—अप्सरा को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है—हे अनादि कल्पनामयि! तुम समस्त जगत् को विस्मित कर देने वाली हो। (तुम्हारा निर्माण कल्पना के पखों पर होता है, इसलिए) तुम इस ससार के जाने कितने अकथ रह गये, अलौकिक, अमर और सामान्य दृष्टि से ओझल भावों की

निर्मिति का आधारो ! तुम्हारा सौन्दर्य उन भावों के समक्ष कितना अप्रतिम होगा। तुम वायवी होने के कारण न जाने कितने-कितने गूढ, निरर्थ, असम्भव और अस्फुट भेद अपने में छिपाये हो। वस्तुतः तुम उन भेदों का शृंगार हो। तुम्हारे ही कारण तो उन भेदों का भी अस्तित्व है। तुम मन को मोहने वाली सगीतमयी, मधुर स्वर से पूर्ण, छल और भ्रम का मायाजाल फैलाने वाली, अनेकानेक चित्रों को बनाने वाली विचित्र और अपार रचना हो।

विशेष—(१) कवि ने अप्सरा के सौन्दर्य को प्रारम्भ से ही एक वायवी और देशकाल-जयी धरातल और स्वरूप प्रदान किया है ताकि उसका अप्रतिम सौन्दर्य-भाव 'सम्भाव्य' की सीमाओं मे रहे।

(२) अलंकार—(i) अकथ, अलौकिक, अमर, अगोर—अनुप्रास।
(ii) 'असंभव अस्फुट'—अनुप्रास।
(iii) 'चित्र विचित्र'—अनुप्रास।

शैशव की तुम .... रचते रूपाभास।

शब्दार्थ—सहचरि=सखी। तन्द्रा=अचेतनावस्था; बेहोशी। मुकुल= मुस्कानमयी कलियाँ; रूपाभास।

प्रसंग—कवि कल्पना के आधार पर अप्सरा के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन करता है।

व्याख्या—हे सौन्दर्यमयी अप्सरा ! इस जगती की प्रत्येक माँ यही अनुमान लगाती है कि तुम प्रत्येक शिशु की शैशव की परिचित सहचरी हो, सखी हो और शिशु के साथ छिप-छिप कर रहती हो, लेकिन इस जग के लिए सर्वदा अनजान रही हो। इतना ही नही, तुम मानो शिशु के अंगूठे के रूप में अपने स्तनों का मधु उसे पान कराती हो अर्थात् शिशु अंगूठा नहीं चूसता मानो तुम्हारे स्तन का पय पान करता है और तुम उसे मौन गीत गा-गाकर थपकी देती हुई उसे सुलाती हो।

हे अप्सरि ! तुम निद्रा के किसी अंधकारमय पथ से उतर कर शिशु के हृदय में, उसके अधरों की अस्फुट मुस्कान में मधुर स्वप्नो की सृष्टि करती हो अर्थात् अप्सरा नीरव गीत गा-गाकर बच्चे को थपकी देकर सुलाती है तो मानो वह उसे किन्ही निद्रा छाया-पथो से उतर कर उसे विलास करने के लिए किसी स्वप्न-लोक मे ले जाती है। अबोध शिशु अनेक दन्तकथायें सुन-सुनकर तुम्हारे

विचित्र इतिहास से अपने कल्पनामय नेत्रों में तुम्हारे न जाने कितने-कितने रूपों की कल्पना किया करते है।

विशेष—(१) 'तन्द्रा के छायापथ' छायावादी प्रयोग है, जिसके माध्यम से कवि एक रहस्यमय संसार की रचना कर रहा है। वायवी सौन्दर्य अप्सरा के उपादान भी वायवी 'छायापथ' है। लगता है 'अबोध शिशु' स्वय कवि है।

(२) अलंकार—(i) 'छिप छिप', 'गा गा'—पुनरुक्तिप्रकाश।
(ii) 'अधरों के अस्फुट', 'नव नयनों में नित्य'—अनुप्रास।

प्रथम रूप मदिरा.................................द्युति स्फार।

शब्दार्थ—उद्दाम=परिपूर्ण। प्रतियाम=प्रत्येक क्षण। मृदुल=कोमल। द्युतिस्फार=ज्योतिर्मय।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा मे प्रेयसी की छाया पाता है और दूसरे अर्थो में अपनी रूपसि-प्रेयसी का अप्सरा रूप देखता और उसके उद्दाम यौवन की आकर्षण शक्ति का वर्णन करता है।

व्याख्या—हे अप्सरा! तुम्हारा यौवन इतना मादक है जैसे प्रथम-प्रथम प्राप्त रूप की मदिरा होती है। प्रेयसी के अंग-प्रत्यंग से तुम्हारा यह उद्दाम यौवन ही लिपटा दिखाई देता है। उसके सौन्दर्य का प्रतिमान भी तुम्हारा यह मदिर सौन्दर्य है। तुम्हीं किसी भी युवती के हृदय में सौन्दर्य का रहस्य बनकर पुरुष का मन क्षण-प्रतिक्षण आकर्षित करती हो। तुम्ही कोमल पुलक देने वाली कवियों से अपनी देह रूपी लता को लादकर अत्यन्त मनमोहक छवि उपस्थित करती हो।

तुम्ही इन्द्रलोक में अपने छोटे चरणों मे लय और गति भरके पुलक-पुलक कर, उछल-उछल कर नृत्य करती हुई, बिजली के समान उठने-गिरने वाली चितवन से सम्पूर्ण देव-सभा को चंचल बना देती हो। तुम्हारे लास्य और चितवन के समक्ष गंध-प्रेमी देवता भी आकर्षित हो जाते हैं। तुम अपनी इस निर्वस्त्र देह पर नव-रंगों वाले इन्द्रधनुष रूपी आवरण धारण कर और नीलाकाश रूपी वेणी में चन्द्रमा के रूप में पुष्प खोंस कर अत्यन्त मोहक ज्योति को धारण करती हो।

विशेष—(१) कवि वायवी सौन्दर्य में भी मांसल-सौन्दर्य की सृष्टि करने

में सफल रहा है। वह क्रमशः मांसलता से अपार्थिव सौन्दर्य की ओर अग्रसर हुआ है।

(२) 'नग्न देह···द्युतिस्फार'—इस पंक्ति में सौन्दर्य का नग्न-वर्णन अश्लील न होकर पवित्र है। तभी उस 'नग्न देह' पर 'नवरंग सुरधनु' का आवरण भी है।

(३) 'नीलनभ की वेणी' से कवि का रहस्य-चिन्तन की ओर संकेत है।

(४) अलंकार—(i) 'मृदुल पुलक···छविधाम'—रूपक।
(ii) 'चकित चितवन से चंचल'—अनुप्रास।
(iii) 'नील नभ की वेणी'—रूपक।

स्वर्गंगा में जल··································सरसिज माल।

शब्दार्थ—स्वर्गंगा=आकाश-गंगा। मृणाल=कमल। इन्दु=चन्द्र। मराल=हंस। शुभ्र=श्वेत। उडु-बाल=नक्षत्र। सरसिज=कमल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अप्सरा को स्वर्गंगा में स्नान करने वाली मृणालिनी से उपमित किया है। कवि का कहना है :

व्याख्या—हे अप्सरा! तुम अपनी कमल-नाल सदृश बाहुओं से आकाश गंगा में जल-विहार करती हो। उस जल में तुम्हारे चंद्र-मुख का प्रतिबिंब पड़ता है और शत-शत हंस तुम्हें कमल समझकर पकड़कर रख लेना चाहते हैं। तुम्हारे जल-विहार के समय स्वर्ग-गंगा से जो श्वेत फेन के रूप मे जल-कण छितरा जाते हैं, वे ही नक्षत्र-बल बन जाते है। इस रूप में तुम्हारी सम्पूर्ण देह उन चचल लहरों में प्रतिबिंबित होती हुई कमलों की माला सदृश जान पड़ती है।

विशेष—(१) शृंगार-वर्णन परम्परागत है किन्तु कवि ने उसमें संगीतात्मकता भरकर उसका सौन्दर्य अक्षुण्ण बनाए रखा है।

(२) अलंकार—(i) 'बाहु-मृणाल'—रूपक।
(ii) 'इन्दु बिम्ब'—मालोपमा।
(iii) 'शत शत', 'उड़ उड़'—पुनरुक्ति प्रकाश।
(iv) 'देह द्युति'—अनुप्रास।

रवि छवि चुम्बित························हो नित पार।

शब्दार्थ—जलद=मेघ। उड़गन=तारागण। नागदन्त=नाग का दांत।

प्रसंग—कवि अप्सरा के सौन्दर्य का वर्णन विभिन्न उपादानों से उसका

साम्य प्रदर्शित करके कर रहा है। प्रस्तुत पद में वह अप्सरा के अलौकिक कार्य व्यापार का वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे अप्सरा ! तुम आकाश में उस पार सूर्य की तेजोमय छवि से चुम्बित बादलों पर तैरते हुए, तड़ित की चमक एवं गर्जना से भयभीत बाल चन्द्र को अपने हृदय से लगा लेती हो—उस चन्द्रदेव को भी भयमुक्त करती हो, तुम्हारा अंक इतनी शीतलता प्रदान करने वाला है। गगन के ये नक्षत्र ही तुम्हारे चरणों के अवशेष हैं, तुम नित्य ही नाग के अग्र-दन्तों की भाँति दोनो ओर को झुके हुए इन्द्रधनुष रूपी पुल को पार करती हो और गगन में इस ओर से उस ओर, उस ओर से इस ओर यात्रा करती रहती हो।

विशेष—(१) 'उस पार' विशेष अर्थ की प्रतीति कराता है और ईश्वरीय सत्ता से निकटता का द्योतक है।

(२) अप्सरा का वायव्य रूप इतना सूक्ष्म है कि मात्र दृश्य इन्द्रधनुष को भी पार कर जाती है। यहाँ कवि का कल्पना-वैभव असीम है।

(३) अलंकार—(i) 'मृग-शिशु'—रूपक।
(ii) 'छोड गगन···लघुमार'—उत्प्रेक्षा।
(iii) 'इन्द्रधनुष-पुल'—रूपक।

कभी स्वर्ग की······················ चितवन कला अराल।

शब्दार्थ—बाल=बालिका ; शोभा। प्रवाल=निवास। मनोज्ञ=मन को हरने वाला।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा के अलौकिक कार्य व्यापार का वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे अप्सरा ! कभी तुम स्वर्ग की अप्सरा थी, देवलोक की शोभा थी किन्तु अब तो तुम पृथ्वी की शोभा हो। तुम इस जग में उपस्थित बालकों के रूप मे साक्षात् पवित्र एवं निष्पाप शैशव की अपलक पलकों में तो निवास करती ही हो, साथ ही बालकों और युवतियों (वय-संधि पार करती हुई) के हृदय रूपी कमल में भी मधुर प्रेममय भाव रूपी हर्षों का प्रवेश कराती हो और उन्हें कोमल हास-भाव दिखलाकर उनके रोम-रोम में चंचलता-सी उत्पन्न कर देती हो। अर्थात् तुम सौन्दर्य और शृंगार की उत्पत्ति करने वाली हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि आकाश से सूक्ष्म से पृथ्वी के स्थूल में लौट आया है किन्तु उसका बिम्ब-विधान सूक्ष्मता के धरातल से नहीं

उतरता। वस्तुतः पंतजी ने मानव-मन की सूक्ष्म गहराइयों को सूक्ष्म भावों के माध्यम से पकड़ने का यत्न किया है। बाल-हृदय की कल्पना ही मानो अप्सरा की कल्पना है, युवती का प्रेयसी-चंचल रूप ही तो उसका अप्सरा रूप है; उनके रूप में अप्सरा ही मानों स्वर्ग से उतर पृथ्वी पर आ गयी है।

(२) अलंकार—(i) 'जग के शैशव'—मानवीकरण।
(ii) 'अपलक पलक'—विरोधाभास और अनुप्रास।
(iii) 'मनोज्ञ मराल'—उपमा।

तुम्हें खोजते·························· ········कवि भ्रात।

शब्दार्थ—तपक=चमक। तड़ित=बिजली। इंगित=संकेत।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा के अलौकिक कार्य-व्यापार का वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—जब रात्रि के पहरेदार जुगनू सारी रात जाग-जागकर प्रातःकाल थककर सो जाते हैं, तब विख्यात कवि तुम्हें छाया-वन-वासिनी मानकर अब भी खोजते रहते है। यह परम्परा अक्षुण्य बनी रही है। अब भी लहरें सिहर-सिहर कर, वृक्ष पवन से परिचालित हो अपनी मर्मर ध्वनि से, भौरे गूंज-गूंजकर और आकाश में बिजली अज्ञात-भाव से चमक कर मानो कवियों को तुम्हारे अनुसंधान के संकेत देते रहते है।

विशेष—(१) 'छायावन' शब्द द्रष्टव्य है। छायावाद की विशेषता है कि जब कवि को जीवन से जीवन के प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते तो वह इस जग से पलायन कर अंधकार—वीथिकाओं में उनके उत्तर खोजने का प्रयत्न करता है। यहाँ भी अप्सरा भाव का उत्तर वह 'छायावन' में ढूंढने का प्रयत्न करता है।

(२) अलंकार—(i) 'जब जग जग', 'सिहर सिहर', 'तपक तड़ित'—अनुप्रास।
(ii) 'जग-जग', 'सिहर-सिहर'—पुनरुक्ति प्रकाश।

गौर-श्याम तन·····························करती मौनालाप।

शब्दार्थ—भगिनी-भ्रात=बहन-भाई। सजात=सजातीय; एक साथ। मसृण=कोमल। तन्वि=कोमलांगी; पतली। रजत=चाँदी। सुरंग=सुन्दर रंगों वाली। गात=शरीर। तुहिन=ओस। जलज=कमल।

प्रसंग—अप्सरा का सौन्दर्य अप्रतिम है; इतना अप्रतिम कि एक-दूसरे के

कट्टर अश्रु अंधकार और प्रकाश भी अपनी शत्रुता भुलाकर उसके सौन्दर्य से अभिभूत होकर एक साथ ही उसके शृंगार के लिए उपस्थित हो जाते हैं। अन्य प्राकृतिक निर्माण भी उसमें अपना योगदान देते हैं। प्रस्तुत अवतरण में इसी अर्थ की प्रतीति कराई गई है।

व्याख्या—हे अप्सरे ! तुम्हारा गौर और श्यामल तन मानो प्रकाश और अंधकार का निर्माण है। (चन्द्रमुख पर निशा के समान केशावलि ऐसे ही अप्रतिम सौन्दर्य का निर्माण करती है।) ऐसा लगता है कि वे अपना शत्रु-धर्म छोड़कर (सूर्य उदित होने पर अंधकार का नाश हो जाता है और निशा आने पर भास्कर अस्ताचल को चला जाता है) बहिन और भाई के समान एक साथ तुम्हारे क्षीण-कोमल शरीर के लिए मृदुल-रेशम के समान मुलायम और मसृण छायांचल बुनते हैं। मुख तुम्हारा मानो दिन है और केश मानो निशा। दिन के समय चाँदी के समान श्वेत किरणें अपने स्वर्ण सूत्रों से तुम्हारे लिए कंचुकी काढ़ती रहती है, सुन्दर रंगों वाली तितलियाँ अपने पंख डुला-डुलाकर तुम्हारे शरीर को शीतलता पहुँचाती है।

निशा में तुम ओस की बूंदों में रजत-रश्मियों के समान चुपचाप सोई हुई, कलियों की सेज में पड़ी अपने ही मधुर सौन्दर्य के स्वप्न लेती रहती हो। कोमल मलय पवन मन्द-मन्द गति से, जब तुम्हारे समीप कोमल पदों से चलकर आता है, तो तुम मानो कमलों मे बंद सोये भौरों से मौन सम्भाषण करती हो। अर्थात् मलय पवन की वह मधुर मंद ध्वनि मानो तुम्हारा ही निद्रित मधुपों से मौन-आलाप का रूप है।

विशेष—(१) कवि निरन्तर कल्पना की गहराइयों में उतरता जा रहा है। अप्सरा के माध्यम से वह एक रहस्य को पहचानने का प्रयास कर रहा है। प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक वस्तु में उसे अप्सरा का ही वास दिखाई देने लगा है।

(२) अलंकार—(i) 'गौर···तम'—विरोधाभास।
(ii) 'भगिनी-भ्रात', 'मृदुल मसृण' 'निज निरुपम'—अनुप्रास।
(iii) 'इन्दु रश्मि-सी'—उपमा।
(iv) 'स्वर्ण सूत्र···सिराती गात'—मानवीकरण।
(v) 'मृदुल···चाप'—मानवीकरण।

नील रेशमी तम...................... ....सी सुकुमार।

शब्दार्थ—कचभार=केशराशि। शशि कर=चंद्र-किरणें। ज्योत्सना=चाँदनी।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे अप्सरा! तुम चन्द्रमा की किरणों में चमकती हुई दुग्ध फेन की ज्योत्सना के समान स्वच्छ, श्वेत, कोमल और सुन्दर हो; तुम्हारी विपुल केश-राशि नीले रेशमी अंधकार का निर्माण है; तुम्हारा लहर के समान लहराता हुआ कोमल और झीना आँचल नक्षत्रों से जड़ित आँचल है और तुम्हारे वक्ष पर पड़ा यह हार मन के सुन्दर, कोमल और मधुर स्वप्नों का प्रतिरूप है। तुम चन्द्र किरणों के समान कमलों के साथ अभिसार करती रहती हो।

विशेष—(१) कवि ने उपमेय की प्रकृति के अनुसार ही उपमान का प्रयोग किया है। उसका मुख-चन्द्र प्रभा के समान ही धवल है; इतना ही नहीं चंद्र-प्रभा में चमकते हुए दुग्ध-फेन की सफेदी के समान उसका सौन्दर्य है। उसकी केशराशि साक्षात् अंधकार का प्रतीक बन जाती है और आँचल-झीना आँचल, झीने आकाश की भाँति है जिस पर नक्षत्र कढ़े है। यह उसके उल्लास का प्रतीक है। हृदय के सूक्ष्म भाव ही मानो हृदय-हार पर उभर कर अंकित हो गये हैं।

(२) 'नील रेशमी तम' से कवि रहस्य-भावना की ओर संकेत करता है।

(३) अलकार—(i) 'तार तरल', 'लहरा लहरांचल'—अनुप्रास।
(ii) 'लहरांचल'—रूपक।
(iii) 'शशिकर-सी', 'ज्योत्स्ना-सी'—उपमा।

मेंहदी युत मृदु....................... ....अध दिशि वात।

शब्दार्थ—मेहदी युत=मेंहदी से रचे हुए। कुसुमित=खिले हुए। द्युति=प्रकाश; ज्योत्स्ना। वीचि=बिजली। पद्म=कमल। जगज्जलधि=जगत् रूपी समुद्र। विलोड़ित=मथा हुआ।

प्रसंग—प्रस्तुन अवतरण में कवि का भाव यह है कि अप्सरा का सौन्दर्य ही मानो सम्पूर्ण जगत् में बिखरा पड़ा है।

व्याख्या—हे अप्सरि ! कितना अप्रतिम है सौन्दर्य तुम्हारा ! मेंहदी लगे तुम्हारे हाथों की छवि पुष्पों का सुन्दर शृंगार कर रही है। तुम्हारी देह के गौर-वर्ण की ज्योति ही श्वेत हिमशिखरों पर आभार प्रदर्शित करती हुई बिखर रही है; तुम्हारे चरणों की लालिमा ही तो ऊषा की रक्तिमा है; तुम्हारी मुस्कान ही चन्द्रमा की मुस्कान है; तुम्हारी ही अनुकम्पा है उसकी ज्योत्स्ना पर; ये जो नक्षत्र झिलमिला रहे हैं, यह स्पन्दन उनका अपना स्पन्दन नहीं है, वह तुम्हारे हृदयस्थ भावों का ही कम्पन है; आकाश में चमकती चपला तुम्हारी गति का ही निरूपण करती है; इस अवनि पर छाया प्रभात मानो तुम्हारे ही शत-शत भावों से परिपूर्ण दल ही है, अन्यथा उसका क्या अस्तित्व। हे अप्सरी ! तुम इस जग में, नित नवीन सौंदर्य शालिनी, प्रथम सौन्दर्य-कमल के समान खिली थीं; ये आकाश-मार्ग में उपस्थित असंख्य रवि, चंद्रमा, गृह तुम्हारी कटाक्षपूर्ण भौहों से ही अपनी गूंज उत्पन्न कर सके। तुम्हारा ही सौंदर्य इनमें प्रतिभासित है। इस ब्रह्माण्ड की दिशा-दिशा तुम्हारी गंध से परिपूर्ण है। यह जगत् रूपी समुद्र तुम्हारे ही हिल्लोल से विलोड़ित होता है और लहरें उत्पन्न करता है। कहने का भाव यह है कि उस अप्सरा के संकेतों पर ही पूर्ण संसार चलता है।

विशेष—(१) कवि अपनी 'कल्पना-अप्सरा' के सौन्दर्य से इतना अभिभूत है कि सम्पूर्ण जगत् उसे उसी 'अप्सरा' के संकेतों पर चलायमान दीखता है। सब उसी के अंश हैं। इस प्रकार कवि ने 'अद्वैत' की सृष्टि की है।

(२) जायसी की निम्न पंक्तियों में भी इसी भाव-साम्य के दर्शन होते हैं।

नयन जो देखा कंवल भा, निरमल नीर सरीरा।
हंसत जो देखा हंस भा, दसन ज्योति नग हीर।।

(३) अलंकार—(i) 'करतल छवि'—मानवीकरण।
(ii) 'देह द्युति', 'गंध-अंध'—अनुप्रास।
(iii) 'मृदु-मृदु'—पुनरुक्तिप्रकाश।
(iv) 'सौन्दर्य पद्म-सी'—उपमा।
(v) 'जगजलधि'—रूपक।

जगती के अनिमिष..............................भर में लीन।

शब्दार्थ—अनिमिष=अपलक। स्वर्णिम=सुनहला। अम्लान=स्वच्छ; अमलिन रहने वाली। विहान=प्रभात। आनन=मुख। सुखमा=सौन्दर्य।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा को सम्बोधित करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे अप्सरि ! तुम्हारा जन्म कितना विभव पूर्ण था जब तुम जगती की अपलक पलकों पर भावी जीवन के सुनहले स्वप्नों के समान अन्तहीन यौवन और पवित्रता लिए हुए उदित हुई थी। तुमने अपना चंचल आँचल फहराकर भावी सुनहले प्रभात की सूचना दी थी और तुम्हारे मुस्कराते हुए मुख पर झलकते नवप्रकाश में नये उदित हुए दिन की आभा थी।

हे सखी अप्सरे ! तुम हृदय रूपी स्वर्ग में सर्वदा चिरन्तन सुख की अनुभूति लिए वास करती हो; तुम अपने सौन्दर्य में अनुपम हो, अप्रतिम हो, तुम्हारे सौन्दर्य के उपमान मैं कहाँ से खोजूँ, तुम स्वयं ऐच्छित हो, अपनी इच्छाओं में स्वाधीन हो; तुम पर कोई बाह्य बंधन नहीं है। तुम्हारा जन्म प्रत्येक युग में होता है, तुम कल्प सृष्टि हो और इसी प्रकार क्रीड़ा करती रहती हो। तुम नित्य प्रति इसी प्रकार नये-नये रूप रचती हो—कभी दिन तो कभी रात्रि; कभी बादल तो कभी लहर; कभी प्रकाश तो कभी तम; कभी मांसल सौन्दर्य तो कभी स्वर्गीय ज्योत्स्ना। मैं तुम्हारे रूपों का वर्णन कहाँ तक करूँ ? तुम्हारी चाह प्रत्येक देवता को है; प्रत्येक मुनि को है। तुम समस्त त्रिभुवन में लीन हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि की 'अद्वैत भावना' व्यक्त हुई है।

(२) कवि पंत ने अप्सरा को कल्प-सृष्टि के रूप में स्वीकार किया है। 'प्रति युग में आती हो रंगिणी' पंक्ति द्रष्टव्य है। अप्सरा का यही रूप 'दिनकर' की 'उर्वशी' में है, यही भाव कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'उर्वशी' में है। अप्सरा वहाँ भी—यहाँ भी कालजयी है।

(३) अलंकार—(i) 'जगती के · पलकों पर'—मानवीकरण।
(ii) 'स्वर्णिम स्वप्न समान'—अनुप्रास।
(iii) 'रच रच'—पुनरुक्ति प्रकाश।

अंग अंग अभिनव·················· ··················**लघु पद चार।**

शब्दार्थ—अभिनव=नवीन। भृकुटि=भौंह। भृंग=भौंरे। मुकुल=कलियाँ।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा को सम्बोधित करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे अप्सरा ! तुम्हारा प्रत्येक अंग नव-वसन्त की भाँति सुकुमार है, कोमल है, हरा है, शोभायमान है। तुम्हारी भृंग भृकुटियों पर लगता है प्रत्येक क्षण नयी-नयी इच्छाओं के भौंरे गुंजार करते रहते हैं अर्थात् तुम वसन्त में प्रेमिल हृदय के समान अभिसार की नित्य नवीन इच्छाओं को प्रकट करती रहती हो। तुम्हारे सुडौल, उभरते हुए वक्षों का भार सैकड़ों मधुर आकांक्षाओं से स्पदित होता रहता है और तुम्हारे चरण नवीन आशाओं की कोमल कलियों से सदा चुम्बित रहते हैं। अर्थात् तुम्हारे हृदय की कलियों के समान कोमल आशाएँ तुम्हारे पदचार से प्रकट होती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से उच्चकोटि का है। मन के सूक्ष्म भावों का वाह्यांगों पर आरोपण कर कवि ने अप्सरा की कोमल भावनाओं को स्पष्ट किया है। विशेषतः प्रथम दो पंक्तियों में नव-इच्छा और नव-वसन्त का प्रयोग कवि की कल्पना-क्षमता का परिचायक है।

(२) पदगत-भाव 'कामयनी' की श्रद्धा का शृंगार वर्णन स्मरण करा जाता है :

हृदय की वाह्य कृति उदार
एक लम्बी काया उन्मुक्त।

यहाँ भी 'अप्सरा' का वाह्य-सौन्दर्य आन्तरिक भावों की प्रतिच्छाया अथवा 'हृदय वाह्य कृति' है।

(३) अलंकार—(i) 'अंग-अंग', 'नव-नव', 'शत-शत'—पुनरुक्ति-प्रकाश।
(ii) 'नव इच्छा के भृंगो', 'नव आशा के मृदु मुकुलों'—रूपक।

निखिल विश्व ने.........................सुख में तल्लीन।

शब्दार्थ—निखिल=सम्पूर्ण। परिधान=वस्त्र। वारिधि=समुद्र। अस्पृश्य=जिसे छुआ न जा सके; यहाँ अप्सरा के वायवी रूप के लिए प्रयुक्त।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अप्सरा के सौन्दर्य और महत्त्व को समग्र रूप में देखता है। उसके सर्वांग रूप (Compact) को उद्भासित करने का प्रयत्न ही प्रस्तुत पंक्तियों में हुआ है।

व्याख्या—हे अप्सरि ! सम्पूर्ण विश्व ने अपना समस्त गौरव, महिमा और

सौन्दर्य त्याग कर दान कर, अपने अपलक हृदय के स्वप्नों से एक प्रतिमा का तुम्हारे रूप में निर्माण किया है। तुम इस जगत् की समस्त कल्पनाओं की उदात्ततम कृति हो; तुम्हारी सौन्दर्य-प्रतिमा में इस संसार ने पल-पल पर प्राप्त विस्मय भर दिया है! प्रत्येक दिशा की प्रतिमा ने तुम्हारे परिधान का, तुम्हारे झीने आवरण का निर्माण किया है; तुम्हारे रूप-स्वरूप को इस जगत् ने अपनी कल्पना और रहस्य का बाना पहनाकर तुम्हें अनजान ही छिपा दिया है। तुम्हारा स्वरूप इस जग के लिए रहस्य ही बना रहा है और यह जगत् तुम्हें अपनी कल्पना की उड़ानों में प्राप्त करने का ही प्रयत्न करता रहा है।

इस जगत् में अनेक प्रकार के सुख है, अनेक दुख है। यहाँ पाप भी है और ताप भी है; इस जगत् में तृष्णाओं की ज्वालायें भी लपलपाती हैं; यहाँ मनुष्य वृद्धावस्था को भी प्राप्त होता है, जन्म भी लेता है, भयग्रस्त भी है, मृत्यु को भी प्राप्त होता है; यह जगत् द्वन्द्वमय है—द्विधाग्रस्त है। परन्तु तुम्हारा निर्माण इसी द्वन्द्वमय जगत् की मधुर कल्पनाओं में होते हुए भी तुम निर्द्वन्द्व हो; सुख-दुःख से परे हो; पाप-ताप से मुक्त हो; तृष्णा-ज्वाला से हीन हो और जरा, मरण, भय, जन्म, मृत्यु से शून्य हो। तुम चिरयुवती हो, तुम्हारा रूप नित्यनवीन है। हे निर्द्वन्द्व अप्सरा! तुम इस जीवन रूपी सागर की मछली हो, जो अदृश्य-अस्पृश्य रहकर अपने ही आनन्द में सर्वदा लीन रहती हो—तुम्हारा आनन्द निष्काम आनन्द है।

विशेष—(१) 'अप्सरा' का यही 'निर्द्वन्द्व' रूप हमें 'उर्वशी' में प्राप्त होता है। यही 'कालजयी' स्वरूप हमें रवीन्द्र की अप्सरा 'उर्वशी' में मिलता है।

(२) अलंकार—(i) 'निखिल विश्व···अनजान'—मानवीकरण।
(ii) 'पल पल', 'दिशि दिशि'—वीप्सा।
(iii) 'जरा जन्म'—अनुप्रास।
(iv) 'जीवन की मीन'—रूपक।
(v) 'अदृश्य, अस्पृश्य अप्सरी'—अनुप्रास।

············

पतझर

कविता परिचय—'पतझर' कविता श्री सुमित्रानन्दन पंत जी के काव्य-संग्रह 'युगान्त' की प्रमुख रचना है। इसकी सृष्टि सन् १९३४ में हुई थी। कवि

पंत की विकासोन्मुखी काव्यधारा मे 'युगान्त' का विशेष महत्त्व है। वीणा, ग्रन्थि और पल्लव में प्रकृति, प्रेम तथा सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कवि दार्शनिकता और मानवता के सत्य को खोज लेने को आतुर हो उठा। जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर नित्य सत्य खोजते हुए कवि का मन युगीन वास्तविकताओं से ऊपर उठ गया। किन्तु गुंजन में धीरे-धीरे कवि अन्तर्मुखी होकर गुनगुनाने लगा। आगे चलकर कवि ने वैयक्तिक अनुभूतियों की अपेक्षा सामाजिक जीवन के स्वप्न देखे, जो ज्योत्स्ना मे प्रकट हुए। किन्तु 'युगान्त' में जैसे पिछले युग का अन्त हो गया। डा० नगेन्द्र के शब्दो में "'युगान्त' में पंत जी सौन्दर्य युग का अन्त कर देते हैं?" श्री दूधनाथ सिंह लिखते हैं कि—' 'युगान्त' की अधिकांश कविताएँ कवि की तीखी भावचेतना के परिवर्तन का संकेत देती हैं।" यह परिवर्तन वस्तुवादी चेतना के प्रति अधिक आग्रहशील दिखता है।

'युगान्त' के विषय मे अपने विचार प्रकट करते हुए पंत जी लिखते है कि 'युगान्त' मे मेरा वह विश्वास बाहर की दिशा की ओर भी सक्रिय हो उठता है और विकास का भी हृदय क्रान्तिकामी भी हो जाता है। 'युगान्त' की क्रान्ति-भावना मे आवेश है, और है नवीन मनुष्यत्व के प्रति सकेत। नवीन सत्य के प्रति मेरे मन का आकर्षण अधिक वास्तविक बन नवीन मानवता के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है।

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे स्रस्त, ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण।"

मे जहाँ पिछली वास्तविकता को बदलने के लिए ओजपूर्ण आवेश है, वहाँ 'कंकाल जाल जग मे फैले फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली' में रिक्त डालों को नवीन जीवन पल्लवो से सौन्दर्य मण्डित करने का भी आग्रह है।"

कवि का उपरोक्त वक्तव्य प्रस्तुत कविता की मूल भावना को भली प्रकार स्पष्ट करता है। कवि, विश्व जीवन में रूढ़िवाद की उन जर्जरित मान्यताओं, रूढियों को समाप्त देखना चाहता है; क्योंकि नवजीवन के नवीन प्रकाश अथवा वैज्ञानिक और आर्थिक दोनों में नवीन उपलब्धियों में वे सभी पुरातन नियम-उपनियम् निरर्थक प्रतीत होते है। कवि केवल विध्वंस अथवा संघर्ष को जीवन के लिए आवश्यक नहीं मानता अपितु मानव जीवन में अनुराग, अपनत्व तथा सौन्दर्य, सुषमा की प्रतिष्ठा भी चाहता है। इस कविता में बाह्य रूप से

भले ही क्रान्ति का स्वर दिखायी देता हो किन्तु इसमें मुख्यता कवि के मानवतावादी सिद्धान्तों अथवा आदर्शों की ही अभिव्यक्ति हुई है।

द्रुत झरो ....हो विलीन।

शब्दार्थ - द्रुत = शीघ्र। जीर्ण = पुराने। स्रस्त = शिथिल। ध्वस्त = नष्टप्राय। शुष्क = सूखा हुआ। हिमतापपीत = सर्दी और गर्मी के कारण पीला होने वाला। मधुवात = वसन्त की शीतल पवन। वीतराग = उदासीन। जड़ = बेजान; अपरिवर्तनशील। निष्प्राण = प्राणरहित। च्युत = गिरा हुआ। अस्त-व्यस्त = बिखरा हुआ। अनन्त = आकाश।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्राचीन मान्यताओं, रूढ़ियों, परम्पराओं और व्यवस्थाओं को निरर्थक मानते हुए उनकी समाप्ति की कामना की है। नवयुग की नवीन मान्यताओं को स्वीकार करने में असमर्थ, जीवन-निर्माण में असहाय तथा मानवता की आवश्यकताओं की दृष्टि से अपूर्ण ये सभी विचार, सिद्धान्त, भाव अथवा नियमों की पूर्णतया समाप्ति चाहते हुए कवि एक प्रकार से क्रान्ति का उद्घोष करता है।

व्याख्या—कवि समाज का प्रतीक वृक्ष को मान कर उसके जीर्ण-शीर्ण पत्तों को समाप्त हो जाने के लिए कहता है कि जगत रूपी वृक्ष के जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, पुराने, भयभीत और सब प्रकार की सरसता से रहित पत्तों शीघ्रता से झड़ जाओ, नष्ट हो जाओ,। शिथिल और रसरहित होने के कारण तुम्हारा विश्व-जीवन में कोई स्थान नहीं है। निरन्तर सर्दी और गर्मी सहते-सहते तुम्हारी शोभा समाप्त हो गयी है, पीलापन बताता है कि अब इन पत्तों में जीवन रस ग्रहण करने की शक्ति नही रही, बसन्त की शीतल-सुगन्धित वायु से यह पत्ते उसी प्रकार भयभीत है जैसे पुराणपंथी अपनी कट्टरता अथवा संकीर्णता में नव-जीवन के सरस विचारों तथा उपलब्धियों से भयभीत रहता है विश्वजीवन की गतिविधि से उदासीन रहते हुए जो जड़-सा हो गया है, जिसमें प्रगति और नवीनता नही ऐसी प्राचीनता कभी भी ग्राह्य नहीं हो सकती। अतः जो पत्ते नवीन वसन्त की सुन्दरता, गरिमा को सह नहीं सकते, नवीनता के गुणों को ग्रहण करके अपने जीवन को विकसित करने की जिनमें आकांक्षा नहीं ऐसे सभी पत्ते, मानव अथवा समाज और उनके नियम-उपनियम समाप्त हो जाने चाहिए।

पुराने पत्तों अथवा प्राचीन मान्यताओं को मृतपक्षी के रूप में देखते हुए कवि कहता है कि प्राचीन युग व्यतीत हो चुका है; जो समाप्त हो गया वह

प्राणरहित हो गया है और जिस युग-जीवन में तुम रहते थे वह समाप्त है, वह जीवन अथवा जगत रूपी घोंसला बिल्कुल सूनसान और श्वासरहित पड़ा है। आज वहाँ एक श्वांस लेना भी कठिन है, आज तक तुमने घोंसले का कभी ध्यान नही दिया था इससे उदासीन रह कर भाव अथवा कल्पना के लोक में विचरण करते हुए कभी यथार्थ की भूमिका को नहीं देखा था। अब इस घोंसले में क्या रखा है, उसे त्याग दो। आज न तो तेरे श्वांस और मन मे शक्ति है और न ही तेरे पंखो में उडने की ताकत है, इसलिए अपने मृतप्राय, बिखरे हुए पखों से गिरकर इस अनन्त आकाश में विलीन हो जाओ, मर जाओ। जिस प्रकार रूखे-सूखे पीले पत्ते धरती पर गिर कर मिट्टी में मिल जाते है, मृतपक्षी के पंख बिखरते-बिखरते अनन्त, असीम आकाश मे विलीन हो जाते है, उसी प्रकार सभी प्रकार के पुराने नियम-उपनियम आज के युग में निस्सार तथा निरर्थक है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रतीक शैली को अपनाया है। पूर्वार्द्ध में वृक्ष को समाज का प्रतीक तथा पत्तों को उसकी मान्यताओं और विश्वासों का प्रतीक माना गया है। वृक्ष की शोभा, सुन्दरता तथा सजीवता तभी रहती है जब तक उसकी जड़ें धरती का रस लेकर उसकी डालियों और पत्तों तक पहुंचाती रहें ? पत्ते रस को ग्रहण करें तो उनकी लालिमा और हरीतिमा सुन्दरता तथा आकर्षण के साथ दूसरों को शान्ति भी प्रदान करती है, अन्यथा वे पत्ते धीरे-धीरे जीर्ण-शीर्ण होकर पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। समाज जीवन भी तभी तक सुस्थिर रहता है जब तक उसका प्रत्येक अंग स्वस्थ, और जीवन के उपयोगी तत्त्वों का ग्रहण अथवा निर्वाह करने में समर्थ होता है। उत्तरार्द्ध में पक्षी को प्रतीक मान कर रूढ़िवादिता का खण्डन किया गया है। दोनों प्रतीक अपने सादृश्य के कारण सुबोधता और सरसता की सृष्टि में समर्थ हैं।

(२) अलंकार—(i) पत्तों के सहज अर्थ से समाज के अर्थ की ध्वनि के कारण—अन्योक्ति।
(ii) 'हिमपात पीत मधुवात भीत'—श्लेष।
(iii) 'निष्प्राण······हो विलीन'—सांगरूपक।
(iv) 'जग नीड़ शब्द औ' श्वासहीन'— विशेषण विपर्यय।
(v) 'च्युत अस्त व्यस्त पंखों से तुम'—अनुप्रास।
(vi) 'झर-झर'—पुनरुक्ति।

कंकाल जाल ························ नव युग की प्याली।

शब्दार्थ—कंकाल=हड्डियों का ढांचा। नवल=नवीन। पल्लव=कोंपल। मर्मर=पत्तों की ध्वनि, धड़कन का संगीत। मुखरित=गुंजित। मांसल=स्वस्थ। मंजरित=विकसित, मंजरियों से भरा हुआ। पिक=कोयल। प्रणय=प्रेम। स्वर-मदिरा=संगीत की मस्ती।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने विप्लव, क्रान्ति अथवा विनाश के पश्चात् नवजीवन निर्माण की कामना व्यक्त की है। पंत का कवि मानवतावादी है, इसलिए वह केवल विध्वंस के गायक नहीं, अपितु मानव जीवन में सुख, सौन्दर्य ऐश्वर्य तथा स्वस्थ भावोत्कर्ष के इच्छुक है। प्रस्तुत पद्यांश के पूर्वार्द्ध में जीवन में शान्ति और सुख की कामना है तो उत्तरार्द्ध में कवि की आस्था और विश्वास मुखरित हो गया है, जिसके अनुसार कवि गाने लगता है कि जीवन में सभी प्रकार के सुख आयेंगे—

व्याख्या—विप्लव, परिवर्तन अथवा क्रान्ति के कारण समाज रूपी वृक्ष नष्ट-भ्रष्ट हो जाने के पश्चात्, जबकि कहीं भी हरीतिमा, सरसता अथवा जीवन का चिन्ह शेष नहीं रहा कवि कामना करता है कि सभी प्रकार के आकर्षणों से रहित जीवन रूपी इस कंकाल में फिर नया रक्त प्रवाहित हो, रक्त की लालिमा मानव-जीवन को सौन्दर्य और तेजस्विता से भरपूर बना दे। जिस प्रकार नयी कोंपलें आने से किसी सूखे वृक्ष पर फिर से बहार आ जाती है, प्रकृति के समान जीवन में भी चेतना के अंकुर स्फुटित हों ताकि जीवन की स्वस्थ प्रसन्नता और सरसता के कारण प्राणों में नवीन, कोमल भावनाओं को जन्म दें और वे भाव अभिव्यक्त होकर सम्पूर्ण विश्वजीवन में गूँज उठें। जिस उपवन में जड़ता और तत्पश्चात् क्रान्ति के कारण निस्तब्धता का सूनापन व्याप्त है वहाँ फिर से प्राणशक्ति का प्रेरक संगीत प्रतिध्वनित हो उठे जिससे चारों ओर आनन्द और उल्लास छा जाय।

कवि को पूर्ण विश्वास है कि जब यह संसार विभिन्न नवीनताओं, भावनाओं अथवा प्रकृति सौन्दर्य से भर जायेगा तो इसके यौवन का उन्माद, उल्लास और प्रणय जाग्रत होगा, जिसके कारण सम्पूर्ण प्रकृति पुष्प-पल्लवों से भरित होकर चारों ओर सुगन्धि व सरसता का संचार करेगी तो कोयल भी अपने माधुर्य भाव को पंचम में गा उठेगा। फिर से वह अपने अमर, पवित्र, शुद्ध प्रेम से उद्भूत स्वर-सौन्दर्य की मस्ती से नवयुग का जीवन आनन्दमय बना देगी। आज तक जहां केवल उदासी, शुष्कता एवं संकीर्णता का साम्राज्य था, वहां

जीवन की सरसता का संगीत सभी के उदास और रिक्त मन रूपी प्याले को मस्ती से भर देगा।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में पंत जी का स्रष्टा स्वरूप दर्शनीय है। पूर्वार्द्ध में प्रकृति के माध्यम से ही कवि ने जीवन के प्रत्येक अंग को नवीन जीवनधारा से सम्पृक्त देखना चाहा है। सम्पूर्ण जगत के प्रति कल्याण-कामना करता हुआ कवि न तो उपदेश करता है और न ही आलोचना अपितु शुद्धरूपेण आत्माभिव्यक्ति करते हुए निजी विश्वासों को ही वाणी देता है। उत्तरार्द्ध में भी सम्पूर्ण जीवन को एक उपवन मानकर उसके सुख, सौन्दर्य तथा मस्ती आदि को ही व्यक्त किया गया है।

(२) इस स्थान पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने किसी एक मतवाद को अपना लक्ष्य नहीं बनाया। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से क्रान्ति की भावना लेने वाले कवि ने गांधी जी के लोककल्याणकारी भावों को भी विशेष महत्त्व दिया है। भारतीय दर्शन समन्वय को महत्त्व देता है। पंत जी ने समन्वयवाद के आधार पर ही जीवन निर्माण में भौतिक तथा मानसिक सम्पदा का समन्वय करने का सफल प्रयास किया है।

(३) अलंकार—(i) 'प्राणों के मर्मर से मुखरित'—अनुप्रास।
(ii) 'जग कर जग का पिक'—यमक।
(iii) 'कंकाल जाल-जग,' 'रुधिर-पल्लव', स्वर-मदिरा'—रूपक।
(iv) समस्त पद्यांश में – अन्योक्ति।

—०—०—

गा, कोकिल

कविता परिचय—'गा, कोकिल' कविता का रचनाकाल अप्रैल '३५ है। यह कविता प्रगतिवाद युग की महत्त्वपूर्ण कविता है और पंत काव्य में तो इसका महत्त्व असंदिग्ध है। पंत के प्रगतिवाद-यथार्थवाद युग की तीन महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं—युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या। इन तीनों का प्रतिपाद्य विषय—मानव है। कवि को विश्वास हो गया है कि पुरातनता का निर्मोक उतार कर फेंक देने में ही मंगलमय भविष्य की कल्पना की जा सकती है। अब वह कोकिल से मीठी तान सुनने की प्रार्थना न करके 'पावक-कण' बरसाने की कामना करता है।

गा, कोकिल, बरसा पावक कण।
नष्ट भ्रष्ट हों जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़बन्धन
पावक-पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।

गा, कोकिल, बरसा ....मधु सब जन।

शब्दार्थ—पावक=अग्नि। जीर्ण=कमजोर; दुर्बल; नष्ट प्राय:। पुरातन=प्राचीन। नूतन=नवीन। पल्लवित=पुष्पित; विकसित। विस्मृति=भुलावा; भूलना। सौरभ=सुगंधि। मंजरित=आनन्दित।

प्रसंग—कवि इस संसार में अनेक प्रकार के सुख-दुःख देखता है। वह देखता है कि सम्पूर्ण जगत् में निराशा और अकर्मण्यता परिव्याप्त है; अनिच्छा का साम्राज्य है; सब अपने स्वार्थ में लीन हैं। वह एक नयी प्रेरणा भर देना चाहता है, नये जीवन का संचार करना चाहता है। वह कोयल को इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समझता है। अतः वह कोयल को नव-प्राण से सिक्त रागिनी गाने का अनुरोध करता है।

व्याख्या—अरे कोयल! तू ऐसे गीत गा जिनसे अंगार बरसें; इस संसार में नयी चेतना का उदय हो; सब पुराना और सड़ा हुआ नष्ट-भ्रष्ट हो जाये। इस संसार के जड़बंधन टूट जायें जिससे उस पावक में जलकर मानव में एक नवीन मानवता—जो जड़ संस्कारों से रहित, मुक्त और चेतन हो—पल्लवित हो सके।

तू अपने स्वर में ऐसा कम्पन भर दे जिससे आतंकित होकर कुल और वर्ण के घने पत्ते अर्थात् रूढ़िवादी विचार धाराशायी हों; अंधेरे (मन के अंधेरे) घोंसलों से रूढ़ियाँ और रीतियाँ छन कर निकल जायें और मानव का हृदय राष्ट्रगत चिन्तना करे और व्यक्तिवादी रागद्वेष के पचड़ों से दूर हो जायें। उसकी व्यक्तिगत स्वार्थ भावना तिरोभूत हो जाय।

हे कोयल! तू गा, चिन्तन में लीन हो! तू अपने गीतों से शरीर में नया रक्त संचारित कर दे। यौवन को नये स्नेह-सौरभ से युक्त कर दे ताकि वह और अधिक प्रज्ज्वलित हो सके। तू अपने गान से सम्पूर्ण जगती को ऐसे नये जीवन से आनंदित करदे कि सब प्राणी उस मंजरी को पी-पीकर लहरा उठें।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि व्यक्ति से राष्ट्र और राष्ट्र से

विश्व की सीमाओं तक उठ आया है। व्यक्तिपरक दृष्टिकोण तो उसका पहले ही तिरोहित हो चुका है। शेष था राष्ट्रपरक चिन्तन ! तृतीय पद तक आते-आते उसकी भूमि 'सब जन' तक पहुँच जाती है।

(२) 'पावक-कण, पवित्रता का सूचक है, जिसमें तपकर भी सोना कुंदन हो जाता है। इसी प्रकार मानवता भी अपना पुरातन जीर्ण स्वरूप जलाकर नवीनता ग्रहण करेगी।

(३) अलंकार—(i) 'नष्ट भ्रष्ट', 'पावक पग', 'जग के जड़'—अनुप्रास।
(ii) 'पी-पी'—वीप्सा।
(iii) 'स्नेह सौरभ', 'वर्ण पर्ण'—अनुप्रास।

गा कोकिल नवगान.........................हों दिशि क्षण।

शब्दार्थ—सुहृदता=प्रेम। मनुज=मनुष्य। स्फुलिंग=चिंगारी। नश्वर=नाशवान। रजकण=धूल के कण। मुकलित=विकसित।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि कोकिला को सम्बोधित करता हुआ कहता है :

व्याख्या—हे कोयल ! तू नये-नये गीतों का सृजन कर। मानव के लिए तू नवीन भावनाओं का उद्बोधन कर; कोई ऐसी रागिनी सुना जिसमे मानव की वाणी, वेश और भाव मे नयी शोभा भर जाय; उसके हृदय में सुहृदता का भाव उपजे और वह उसी भाव को अपने हृदय का वन समझे और इस प्रकार नये जीवन में पदार्पण करे।

हे कोयल ! तू वह सनातन संदेश प्रसारित कर जिसमे मानव को चिरन्तन, अनश्वर, और दिव्य स्फुलिंग माना गया है; अपने गीतों से तू इस धारणा को मिटा दे कि मानव मात्र देह के रूप मे नष्ट हो जाने वाला एक धूलिकण है। तू अपने गीतों से सर्वत्र प्रचारित कर दे कि मानव के लिए देश और काल का कोई बंधन नही है। वह काल मुक्त है, देश मुक्त है; उसका परिचय केवल मानवपन है और कुछ नही। यदि उसे पहचानना हो तो उसे उसके मानव-पन में खोजो। हे कोकिल ! तू इस प्रकार गा कि प्रत्येक क्षण, प्रत्येक दिशा खिल उठे कि उसे एक नया संदेश मिला है।

विशेष—(१) 'मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन' में कवि मानव-अस्तित्व को एक नयी परिभाषा दे रहा है और परम्परागत मानव-देह का 'नश्वर रजकण' होने की परिभाषा को मिटा देना चाहता है ताकि उसमें नयी आशा का संचार हो सके और वह नये निर्माण की ओर अग्रसर हो।

(२) **अलंकार**—अनुप्रास।

...: ० :...

सृष्टि

कविता परिचय—'सृष्टि' कविता का रचना काल मई '३५ है। कवि ने इस कविता में सृष्टि को एक रहस्य माना है, जिसकी आन्तरिक शक्ति को कोई भी नहीं जान पाया तथा उसका कहना है कि एक बीज से ही संसार का निर्माण होता है और चेतना ही जीव को अमरत्व प्रदान करती है। इस प्रकार प्रकृति सौन्दर्य से पूर्ण होते हुए भी प्रस्तुत कविता कवि के दार्शनिक विचारों की ही परिचायिका है।

मिट्टी का गहरा..............................सागर अपार।

शब्दार्थ—कोदों=चावल। स्कंधमूल=तना और जड़। वट के पादप=बरगद का वृक्ष; विशाल वृक्ष। महाकार=विशाल आकार।

प्रसंग—पंतजी इस सृष्टि को एक रहस्य मानते हैं जिसकी आन्तरिक शक्ति को कोई नहीं जान पाया। कवि सोचता है कि सम्पूर्ण शक्ति का निर्माण एक बीज से होता है और चेतना जीव को अमरत्व प्रदान करती है। इसी भाव का अभिव्यक्ति प्रस्तुत कविता में हुई है।

व्याख्या-प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का अपना अस्तित्व होता है, चाहे वह लघु हो या दीर्घ। क्षुद्र हो अथवा महान्। कवि मिट्टी की गहरी परतों में छिपे हुए छोटे से बीज की ओर संकेत करते हुए कहता है कि वह बीज उन गहरी अंधकारमय परतों मे छिपा रहकर भी खो नहीं जाता, मिट्टी में अपने को मिला नहीं देता वरन् अपना अस्तित्व वह कोदों या सरसों के रूप में बनाये रहता है। किसी को क्या मालूम कि उस छोटे से बीज के हृदय में बड़े-बड़े वृक्षों की डालियाँ, पत्ते, तने और जड़ें छिपी हुई है; गहरी हरियाली का सम्पूर्ण संसार समाया हुआ है और अनेकानेक रंगों और रूपों के फूल और फल छिपे हुए हैं। किसी को क्या मालूम कि उस छोटे से बीज में वट-वृक्ष का महा-आकार छिपा हुआ है। यह बीज अपने में एक सम्पूर्ण संसार को छिपाये हुए है। कितना आश्चर्यमय है यह बीज! कितने आश्चर्य की बात है कि एक छोटी सी बूंद में अपार, विस्तृत जल-राशि वाला समुद्र बनने की क्षमता छिपी हुई है।

विशेष—(१) छोटे से बीज में सम्पूर्ण सृष्टि का वास कवि के लिए आश्चर्य का कारण बन गया है। एक बूंद भी सागर का रूप धारण कर सकती है। परमाणु संसार का निर्माण कर सकता है।

(२) इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन न्याय-वैशेषिक दर्शन करता है।

(३) अलंकार—(i) 'फल फूल'—अनुप्रास।

(ii) 'सागर अपार'—अनुप्रास।

बंदी उसमें जीवन..............................वह तुच्छ बीज !

शब्दार्थ—सत्व=सत्ता; चैतन्य अवस्था। क्षुद्र=साधारण; महत्त्वहीन। पोत=नौका।

प्रसंग—मिट्टी के नीचे छिपा छोटा-सा बीज न तो खोता है, न मरता है; अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रूप से बनाये रखता है। इसी तथ्य का वर्णन कवि इन पंक्तियों में करता है।

व्याख्या—उस छोटे से बीज में जीवन के अंकुर बंदी होते हैं, जो प्रत्येक क्षण उस बीज को, समस्त भौतिक संसार के बंधनों को तोड़कर अपनी सत्ता पाने के लिए, चैतन्यावस्था प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। वह मुक्ति प्राप्त कर अपना चैतन्य स्वरूप प्राप्त करना चाहता है, जड़ता को समाप्त कर देना चाहता है।

आश्चर्य ! कोई भी इस सृजन के रहस्य को अभी तक भेद नहीं पाया। इन रहस्यमय परतों को उघाड नहीं पाया। कोई यह न जान पाया कि इस क्षुद्र से पोत में, छोटे-से स्थान में अनन्त छिपा हुआ है; वह सम्पूर्ण जगत् के जीवन से ओत-प्रोत है।

मिट्टी के गहरे अंधकार में नन्हा-सा बीज दुबका हुआ सोया है, जो किसी भी दिन अवनि तल को फोड़कर वट-वृक्ष के रूप में महाकार ग्रहण कर लेगा। उसका प्रकाश उसका अपना है—बाह्य प्रकाश का उपयोग तो वह चैतन्य अवस्था प्राप्त करने के पश्चात करेगा ! वह लघु बीज तो अमर पुत्र है—अमर है; वह अंधकार की काली परतों से भयभीत नहीं, अपने प्रकाश से प्रकाशित है। भला वह महान् वस्तु तुच्छ किस प्रकार हो सकती है ?

विशेष—(१) इस कविता का सीधा अर्थ ब्रह्म-सत्ता से लगता है। जिस प्रकार बीज में विशाल वृक्ष निहित है, उसी पर वह ब्रह्म भी समस्त संसार में निहित है। समस्त सृष्टि-निर्माण उस व्यापक सत्ता की तुलना में क्षुद्र है—वह व्यापक, परम चेतन ही सबमें परिव्याप्त है; हम सब बीजरूप हैं जो परम-चेतन प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

(२) इस भाव का प्रकाशन सूरदास ने भगवान् कृष्ण के मुख में यशोदा

को सम्पूर्ण ब्राह्माण्ड के दर्शन कराके व्यक्त किया है। फिर 'बालक' तुच्छ कैसे रहा ? कवि ने इसीलिए 'बीज' को 'अमरपुत्र' की संज्ञा दी है।

(३) प्रस्तुत कविता में प्राकृतिक-सौन्दर्य के माध्यम से दार्शनिक विचार को अभिव्यक्त किया गया है।

(४) अलंकार—(i) 'जीवन अंकुर'—रूपक।
(ii) 'जग जीवन'—अनुप्रास।
(iii) 'सोया है उसमें एक बीज'—मानवीकरण।

....

मानव

कविता परिचय—'मानव' कविता का रचना-काल अप्रैल '३५ है। पंत अध्यात्म से प्रकृति और प्रकृति से मानव तक आये है। 'युगान्त' में मनुष्य को सृष्टि की सुन्दरतम रचना बताते हुए कवि ने उनके बाह्य शरीर और आन्तरिक सद्गुणों की प्रशंसा की है। उसके शरीर की शिराओं, उसमें बहने वाले मादक रक्त, पीन-स्कन्ध, दृढ बाहु, स्फीत वक्ष, कर-पद, अंगुलि-नख आदि सभी के सौन्दर्य को उसने सराहा है। इसके उपरान्त मानव-हृदय की विभूतियों—सहृदयता, त्याग-विवेक, विश्वास आदि पर उसकी दृष्टि जाती है। मनुष्य का सबसे बड़ा गुण उसकी दृष्टि में है—मानवता की भावना। 'मानव' शीर्षक इस रचना की सबसे मौलिक विशेषता यह है कि इसमें स्वस्थ मांसल प्रेम का समर्थन कवि ने किया है।

सुन्दर है विहग..................................**रूप रंग।**

शब्दार्थ—तिल सुषमा=सौन्दर्य का निचोड़। निरूपम=जिसकी कोई उपमा न दी जा सके। वेष्ठित=परिपूर्ण। त्वच=त्वचा; खाल। प्ररोह= अंकुर।

प्रसंग—प्रकृति का दर्शक कवि अब प्रकृति से मोह त्याग प्रकृति के ही महत् निर्माण 'मानव' में रुचि लेने लगा है। 'मानव' में उनकी मानव-पूजा ही मुखरित हुई है। उसी की विशेषताओं का इसमें वर्णन है।

व्याख्या—निःसन्देह प्रकृति के निर्माण पक्षी सुन्दर हैं, पुष्पों का सौन्दर्य भी चित्ताकर्षक हैं, लेकिन हे मानव! तुम सबसे सुन्दर हो। तुम्हारा ही सौन्दर्य इस सम्पूर्ण संसार का एकत्रित सौंदर्य है। तुम सबसे सुन्दर हो। तुम्हारा

अनुपमेय स्वरूप सम्पूर्ण सृष्टि की सौन्दर्यमयी वस्तुओं के सौन्दर्य का सार ग्रहण कर किया गया है। तुम्हारा शरीर यौवन के ताप से परिपूर्ण है, त्वचा कोमल हैं; तुम्हारे अंग-प्रत्यंग सौन्दर्य के अंकुर है। तुम्हारा रूप-रंग इस जगती का प्रकाश एवं छायात्मक अंधकार ही है—तुम्हारे इस अनुपम सौन्दर्य पर सम्पूर्ण प्रकृति न्यौछावर है।

विशेष—(१) पंत प्रकृति से नारी और नारी से मानव की ओर झुके हैं। 'युगान्त' उनके काव्य-युग के एक अन्त और एक नये प्रारम्भ का द्योतक है। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कवि की निर्वैयक्तिक (Objective) दृष्टि बन चुकी थी। उसी भाव का प्रारम्भिक स्वरूप—इसका निखरा हुआ सौन्दर्य हमें 'शिल्पी' में मिलता है—व्यक्त हुआ है। परन्तु, अभी भी कवि केवल 'सुन्दरम्' की भाव भूमि पर है; 'सत्यं' और 'शिव' की भूमि पर नहीं पहुँचा है।

(२) 'सबसे सुन्दरतम' विशेषण पंतजी की अपनी कल्पना है।

(३) इन पंक्तियो पर विचार करते समय कवि नरेन्द्र लिखते हैं—'सृष्टि में अनेक सुन्दर कृतियाँ है, किन्तु मानव ही सौन्दर्य की तिलोत्तम प्रतिभा है। इसी निष्कर्ष से पंतजी के मानववाद का श्रीगणेश होता है। मानव-जगत् का यही प्रवेश-द्वार है।'

(४) अलकार—(i) 'सुन्दर सुन्दर'—अनुप्रास और पुनरुक्ति।
(ii) 'रूप-रंग'—अनुप्रास।

धावित कृश·····························नख शिख शोभन।

शब्दार्थ—धावित=दौड़ती है; बहती है। कृश=दुर्बल, क्षीणकाय। शिराओं=नसों। लावण्य-लोक=सुन्दरता का संसार। निसर्ग=सुन्दर; प्राकृतिक। पृथु=विशाल। प्रलम्ब=दीर्घ। पीनोरु=विशाल। स्कंध=कधा। नख-शिख=नाखून से चोटी तक; ऊपर से नीचे तक।

प्रसंग—पक्षी और सुमन तो सुन्दर हैं किन्तु मनुष्य उनमें सबसे अधिक सुन्दर है। उसके सौन्दर्य पर सम्पूर्ण प्रकृति के वैभव को न्यौछावर किया जा सकता है। यहाँ कवि मानव के नख-शिख सौन्दर्य का निरीक्षण करते हुए कहता है :

व्याख्या—हे मानव! तुम निश्चय ही महान हो। तुम्हारी पतली-पतली नीली नसों में मदिरा से भी अधिक उत्साहवर्धक रक्त संचारित हो रहा है। तुम्हारी आंखें देखने में सुन्दरता के दो संसार जान पड़ती हैं, तुम्हारी मधुर

ध्वनि का तो कहना ही क्या—लगता है उसमें प्राकृतिक संगीत का सार भर दिया गया है। तुम्हारा वक्षस्थल विशाल है; छाती मानो तालाब है, जिसमें स्तन रूपी कमल विकसित हो रहे हैं। दीर्घ भुजायें प्रेयसी को प्रेम-पाश में आबद्ध रखने के लिए पर्याप्त है। तुम्हारा विशाल पुष्ट स्कन्ध जीवन रूपी वृक्ष का तना है। तुम्हारे हाथ, पैर, अंगुली सभी सुन्दर है। कहां तक तुम्हारी सुन्दरता का वर्णन करें—तुम तो नीचे से ऊपर तक अनिंद्य सौन्दर्य से युक्त जान पड़ते हो। सुन्दरता की साकार प्रतिमा हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि पंत ने मानव के वाह्य स्वरूप का चित्र चित्रित किया है। इस वर्णन को पढ़कर सहसा ही कवि प्रसाद की 'कामायनी' की ये पंक्तियाँ स्मरण हो आती है—

अवयव की दृढ़ मांस पेशियाँ,
ऊर्ज्वसित था वीर्य अपार।
स्फीत शिराएँ, स्वस्थ रक्त का,
होता था जिनमें संचार।

(२) अलंकार—(i) 'रुधिर धार'—अनुप्रास।
(ii) 'संगीत सार'—अनुप्रास।
(iii) 'पृथु···सरोज'—उपमा।
(iv) 'जीवन-तरु'—रूपक।

(३) सम्पूर्ण शरीरावयवों का वर्णन करने के पश्चात् 'नख-शिख' शब्द का प्रयोग कुछ अटपटा-सा लगता है।

यौवन की मांसल ·········· ·············स्वभाव-पूर्ति।

शब्दार्थ—मांसल=स्वस्थ; प्राणवान। युग्मों=प्रेमी-प्रेमिकाओं। जीवनोत्सर्ग=जीवन को लुटा देना। आह्लाद=हर्ष; प्रसन्नता। अजस्र=निरन्तर। पार्थिव=लौकिक।

प्रसंग—कवि मानव के शारीरिक-सौन्दर्य-वर्णन से ही सन्तुष्ट नहीं होता, उसने उसके आन्तरिक सौन्दर्य का उद्घाटन प्रस्तुत अवतरण में किया है।

व्याख्या—कवि मानव को सम्बोधित करता हुआ कहता है—हे मानव! तुम्हारे परिपक्व यौवन से एक प्राणवान् स्वस्थ गंध आती है जिसमें नये प्रेमी-प्रेमिकाओं के जीवन के उत्सर्ग का परिचय मिलता है। आह! इस प्रथम प्रथम प्रेम का संसार कितना सुन्दर होता है, कितना स्वर्गिक होता है—वह सौन्दर्य

समस्त संसार में समाया लगता है, ऐसा लगता है कि सम्पूर्ण संसार की प्रसन्नता एक ही स्थान पर सिमट आई हो। इस यौवन की आशाएँ—अभिलाषाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ कितनी सुन्दर होती है। उद्यम करने का अजस्त्र वेग होता है। विघ्नों पर विजय प्राप्त करने की कामना होती है, हृदय में विश्वास होता है; असद् और सद् को अलग करने की पहचान होती है, दृढ़ श्रद्धा होती है और होता है कभी न नप्ट होने वाला सत्य-प्रेम। मानव-मन की ये विभूतियाँ—सभ्यता के सांसारिक आधार—सहृदयता, त्याग और सहानुभूति – संस्कृति के स्वर्गीय रूप की परिचायिका हैं और किसी के भी स्वभाव को पूर्णत्व प्रदान करने वाली है। हे मानव! ये सब गुण तुम में निसर्गतः हैं, इसीलिए तुम सर्वश्रेष्ठ निर्माण हो।

विशेष—(१) 'नव युग्मों का जीवनोत्सर्ग' यौवन की भावुकता का प्रतीक है। 'मानव' कविता का आधार 'मानव के प्रति' भावुकतावादी दृष्टिकोण ही है। यौवन में ऐसे उत्सर्ग हुआ ही करते हैं। कौन चलता है मंजिल की राहों पर।

(२) यह वैज्ञानिक सत्य है कि स्वस्थ शरीर से एक प्रकार की मधुर गंध निकला करती है।

मानव का मानव पर ....सको तुम मानव !

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास। अन्वेषण=खोज। त्रिभुवन=तीनों लोक।

प्रसंग—कवि पंत को प्रस्तुत कविता में प्रकृति से अधिक मानव सुन्दर दिखाई दिया है। अतः कविता के प्रारम्भ से ही वह मानव-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट रहा है। अन्तिम पंक्तियों में कवि का ध्यान मानव-विकास की ओर जाता है। मानव के शारीरिक सौन्दर्य को देखकर आकृष्ट होना उसके बाह्य सौन्दर्य का द्योतक है परन्तु मानवता का होना मानव का आन्तरिक गुण है जो मानव को पूर्ण बनाता है। इसी की ओर संकेत करता हुआ कवि कहता है:

व्याख्या—मानवता का सच्चा विकास तभी संभव हो सकता है जब मानव मानव पर विश्वास करेगा, उसके हृदय से परिचय प्राप्त होगा। विश्वास की अनुपस्थिति में मानवता का विकास अवरुद्ध हो जायेगा। मानव को अपने-पराये के भेदभाव के बंधनों को तोड़कर सोचना होगा कि हम सब एक हैं, समस्त प्राणी-मात्र में एक ही चेतना का प्रकाश हो रहा है। यही सोचकर मनुष्य को ज्ञान और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों मे अन्वेषण करना चाहिए जिससे समाज पूर्णतः

लाभान्वित हो सके। हे मानव ! ईश्वर ने तुम्हारे लिए न जाने कितनी वस्तुओं का निर्माण किया है। तुम उनसे पूरा लाभ उठाओ। इस संसार में तुम्हारे लिए किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है, किंतु इसके लिए यह परमावश्यक है कि तुम मानव बने रहो।

विशेष—(१) एक बार प्रसिद्ध दार्शनिक डा० राधाकृष्णन ने कहा था—"आदमी परिन्दों के मानिंद हवा में उड़ा सकता है, मछलियों के समान पानी में तैर सकता है पर उसने अभी आदमियों की भाँति जमीन पर चलना नहीं सीखा है।" श्री लुइ फिशर ने भी यही बात अपनी पुस्तक 'A Great Challenge' में कही है, अन्तिम पंक्ति में कवि पंत भी इसी बात की पुनरावृत्ति करते है।

(२) वैज्ञानिक सुख-सुविधाओं के बावजूद भी मानव अशान्त है जिसका एकमात्र कारण है—परस्पर सन्देह और शंकाओं से युक्त होना। जब तक मानव एक-दूसरे पर प्रत्यय नही दिखलाएगा तब तक वह मानवता से कोसों दूर रहेगा।

(३) अन्तिम पंक्तियों का उपदेश ही प्रत्येक चिन्तक का अन्तिम लक्ष्य होता है, अन्तिम तथ्य होता है, अन्तिम सत्य होता है। इसी की पहचान सबसे बड़ी पहचान है। लेकिन—

बस कि दुश्वार है हर काम का आसां होना,
आदमी को भी मयस्सर नहीं इन्सां होना

—गालिब

(४) **अलंकार**—(i) 'विज्ञान ज्ञान'—अनुप्रास।
(ii) 'नव नव'—पुनरुक्ति प्रकाश।

....

ताज

कविता-परिचय—प्रस्तुत कविता सन् १९३५ में लिखी गयी थी। यह सुप्रसिद्ध प्रगतिवादी काव्य संग्रह 'युगान्त' में संकलित है। यह कविता उस समय लिखी गयी थी जब हिन्दी साहित्य में मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का आधार लेकर प्रगतिवाद का प्रचलन हुआ था। कार्ल मार्क्स संसार की सभी समस्याओं का मूल आर्थिक वैषम्य मानते है। उनके मतानुसार संसार में केवल दो वर्ग हैं—शोषित और शोषक। साम्राज्यवादी, सामन्त अथवा पूंजीपति अपने

वैयक्तिक सुख और वैभव-विलास के लिए श्रमिक का शोपण करते हैं। अतः वह राष्ट्रीय सम्पत्ति को सार्वजनिक अधिकार मे लेने पर बल देता है। धर्म, ईश्वर आदि कोरा काल्पनिक आदर्श और पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण करने का साधनमात्र है। कार्ल मार्क्स के इन्हीं विचारो की अभिव्यक्ति प्रगतिवाद में हुई है।

'वीणा' से लेकर 'गुंजन' तक पंत जी का काव्य प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, आस्तिकता, आदर्शवाद, कल्पना और भावना की सूक्ष्मता पर आधारित था, किन्तु आगे चलकर कवि मार्क्सवाद से भी प्रभावित हुआ। 'युगान्त' मे क्रान्ति का जो स्वर उठा वह मार्क्सवाद से प्रभावित था। यही कारण है कि ताजमहल संसार में सौन्दर्य और कलात्मकता का उच्चतम आदर्श माना जाता है, उसे देखकर कवि के मन मे अनेक प्रश्न उठते हैं, वह ताजमहल को समान्त युग की विलासिता का प्रतीक मानता है। उसे महसूस होता है कि अपनी विलासिता की पूर्ति के लिए किसी शासक ने कोटि-कोटि जनता के खून और पसीने की कमाई को मिट्टी में मिला दिया है। वास्तव में उस व्यवस्था में सामाजिक कल्याण-कामना का लेश भी नहीं था, यदि वही शासक इस धन को जनकल्याण के लिए व्यय करता तो न जाने कितने जीवन सुखी हो जाते। यह सोचते हुए कवि मानव जीवन से प्रश्न करता है कि जीवन की उपेक्षा करके मृत्यु का यह श्रृंगार क्यों किया जाता है। जीवन के प्रति वितृष्णा के कारण मानव मानव-जीवन को न जाने कैसा घृणित बना देना चाहता है। शायद मानव भूल गया है कि मृतकों का श्रृंगार करने वाले भी मृतप्राय होते है। जो जीवित समाज को छोडकर मुर्दो की पूजा करता है वह जीवन के लिए कभी उपयोगी नही हो सकता। इस प्रकार यथार्थ की भूमिका पर अवस्थित होकर कवि ने जीवन के प्रति अपने विचारों को इस कविता में व्यक्त किया है।

'हाय! मृत्यु का ऐसा........................ जीवित जन?

शब्दार्थ—अपार्थिव=अलौकिक; दिव्य। विषण्ण=दुःखी। निर्जीव=प्राणरहित। स्फटिक=संगमरमर; श्वेत पत्थर। सौध=महल। मरण=मृत्यु; मरा हुआ व्यक्ति। शोभन=शोभा युक्त। क्षुधातुर=भूख से दुःखी। वास विहीन=निवास स्थान से रहित।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में ताजमहल को देखकर कवि के मन में उठी प्रतिक्रियाओं का वर्णन किया गया है। जब समाज भूख, प्यास, बीमारी,

गरीबी की भयंकर उलझन में निर्जीव-सा हो रहा हो, उस समय किसी मृत व्यक्ति की स्मृति अमर करने के लिए लाखों लोगों के परिश्रम और धन को व्यर्थ वर्बाद किया गया हो तो उसे देखकर कवि की खिन्नता ही इस स्थान पर व्यक्त हो उठी है।

व्याख्या—एक मृत साम्राज्ञी की स्मृति में बनाये गये ताजमहल को देखकर कवि का मानस चीत्कार कर उठता है और वह प्रश्न करता है कि जब विश्व का जोवन भूख, प्यास तथा निर्धनता के पाशविक बन्धनों में जकड़ा हुआ हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अधिकाधिक परिश्रम करने पर भी पूरे साधन प्राप्त करने में असमर्थ हो, शोषण तथा अभावों से निरन्तर संघर्ष करते-करते जिसका जीवन दुःख का पर्याय बन चुका हो, चारों ओर दुःख, दैन्य का साम्राज्य व्याप्त हो वहां किसी मृत व्यक्ति का ऐसा सम्मान, शृंगार अथवा पूजन, जो सभी प्रकार के भौतिक तत्त्वों का सर्वोपरि रूप होने के कारण दिव्य और लोकोत्तर प्रतीत हो, क्यों किया जाता है। जहाँ सामान्य जन-जीवन में मानव को शरीर ढंकने के लिए झोंपड़ी तक न मिलती हो, जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं पूर्ण भी न होती हों वहाँ इस प्रकार के श्वेत पत्थर के खूबसूरत और आकर्षक महल बना कर मृत्यु की शोभा को क्यों बढ़ाया जाता है? क्या जीवित मानव के कल्याण की अपेक्षा मृत्यु को प्राप्त हो चुके लोगों के आकर्षक स्मारक बनाने से जन-कल्याण सम्भव है?

विशेष—(i) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने सामन्त युग की विषमताओं का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। सामंती व्यवस्था में उच्च वर्ग के लोग अपने भोग-विलास की पूर्ति के लिए जन-मानस के दुःख तथा उसके जीवन की आवश्यकताओं की पूर्णतया उपेक्षा करते थे। परिणामस्वरूप सामान्य जन-जीवन तो दैन्य और दुःख से परिपूर्ण था किन्तु सामन्तों की विलास-क्रीड़ाएँ और वैभव-प्रदर्शन होता ही रहता था।

(२) कवि ने जन-जीवन में व्याप्त दुःख-दैन्य का मूल कारण सामन्तवर्ग की विलासप्रियता को माना है। जिस प्रकृति के कारण शासक जन-कल्याण के कार्यों की अपेक्षा अपनी थोथी विलासिता अथवा सनक पर लाखों रुपये वर्बाद करना अच्छा मानता था। 'नग्न-क्षुधातुर, वास विहीन रहे जीवित जन' मे मार्क्सवादी दर्शन की प्राथमिक आवश्यकताओं की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

(३) अलंकार—(i) जब विपण्ण·· जग का जीवन—विरोधाभास।
(ii) स्फटिक सौध में···मरण का शोभन—विषम।
(iii) नग्न क्षुधातुर···जीवित जन—अनुप्रास।

मानव ! ऐसी ....जीवन का प्रांगण ।

शब्दार्थ—विरक्ति=उदासीनता । आत्मा=जीवित मानव । प्रेत और छाया=मृत व्यक्ति की छाया । रति=प्यार । अर्चना=पूजा । वरण=ग्रहण, चयन । कंकाल=अस्थिपजर । प्रांगण=आँगन ।

प्रसग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने मृत्यु का शृंगार करने वाले मानव से जीवन के प्रति विरक्ति अथवा उदासीनता का कारण जानना चाहा है ।

व्याख्या—मृत्यु अथवा मृत व्यक्तियों के प्रति आसक्ति रखने वाले मानव को कवि पूछता है कि उसे अपने चारों ओर के जीवन से ऐसी उदासीनता क्यों है ? मानव को तो सामाजिक प्राणी कहा जाता है, उसमें करुणा, दया तथा सहानुभूति ही तो पशु जीवन से उच्चता के प्रतीक हैं । किन्तु यह मानव ऐसा है जो अपने आसपास के जीवन में व्याप्त भौतिक-दैहिक अथवा आर्थिक संकटों और उनमे पिसते हुए मानव के दु.ख-दैन्य को देखता भी नही । आज जीवित व्यक्ति स्थान-स्थान पर अपमानित होता है, उसकी सहायता तो दूर, कोई उसके प्रति संवेदना भी प्रकट नही करता । सामान्य मानव भूख, प्यास तथा गरीबी मे प्राण त्याग देता है किन्तु कोई उसका सहारा नहीं बनता, किन्तु जो मर चुका है, जो प्रेत है और जिसका शव केवल बीते जीवन की छाया मात्र है उससे प्यार करते हुए इस प्रकार के महल बनाना कहाँ तक उचित है । क्या इसे प्रेम की सच्ची पूजा कह सकते है, जहाँ हम जीवन की अपेक्षा मृत्यु को सुन्दर बनाये, महत्त्व दें अथवा उसके प्यार को जीवन में धारण कर लें ? ऐसा करने से तो हम मानव जीवन का यह विशाल क्षेत्र, यह विश्व केवल प्राणरहित, अस्थिपजर के ढेर में बदल देगे ? ककाल निष्प्राण, निष्प्रोजन, आकर्षणरहित तथा जीवन में अविश्वास और भय का ही संचार करता है । जीवन को सप्राण, आकर्षण, विश्वास और उत्साह तो जीवित मानव के सुखमय जीवन से ही प्राप्त होगा ।

विशेष—प्रस्तुत पद्यांश में मध्यकालीन इतिहास की एक झलक प्राप्त हो जाती है । जबकि प्रजा से अधिकाधिक कर प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के कष्ट दिये जाते थे, यही नही, हजारों-लाखों लोगों से बेगार ली जाती थी, प्रजा के रक्त, परिश्रम और धन का शोषण करने के पश्चात् इस प्रकार के स्मारक बनाये जाते थे, किन्तु इसे शुद्ध प्रेम न कह कर कुत्सित वासना ही माना गया । वासना के कारण ही शव पर इस प्रकार के भवन बनाये गये, आज भी उनमें

जीवन के उदात्त भावों की अपेक्षा हीन प्रवृत्तियाँ ही परिलक्षित होती है। यही कारण है कि कवि ताज को जीवन की निकृष्ट प्रवृत्तियों का प्रतीक मानता है।

(२) अलंकार—(i) 'आत्मा का अपमान···जीवन का प्रांगण'—काकु वक्रोक्ति।
(ii) 'मानव ऐसी भी···छाया से रति'—विरोधाभास।
(iii) 'प्रेम अर्चना···को वरण'—अनुप्रास।

शव को दें ····························जीवितों का है ईश्वर।

शब्दार्थ—शव=मृत शरीर। कुत्सित=घृणित। मृत आदर्श=जो आदर्श रूढ़ि बनकर मर चुके है। मोहान्ध=मोह से अन्धा। अनश्वर=अमर।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि जीवन से उदासीन मानव के सामने जीवन का वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए, रूढ़िवाद और निरर्थक विचारों के मोहपाश से मुक्त होने की प्रेरणा देता है।

व्याख्या—कब्रों और स्मारकों का सम्मान किन्तु जन-जीवन की उपेक्षा देखकर कवि का मन व्यथित होकर जीवन से प्रश्न करता है कि यह कहाँ तक उचित है कि एक मृत शरीर को तो हम अनेक प्रकार से सजा-संवार कर उसे जीवित मानव से भी अधिक सम्मान दें। जो मर चुका है, जो किसी काम नहीं आ सकता, उसका लोकोत्तर श्रृंगार करने के लिए जीवित मानव का शोषण करके, उसके जीवन को दुःख, अभाव, संकट, सघर्ष, अशिक्षा, भूख एवं नग्नता आदि वितृष्णाओ से भर कर जीवित को भी मृतप्राय बना देना कहाँ तक उचित है। आज युगों पुराने आदर्श, नियम अथवा उपनियम मानवमन में ऐसे प्रतिष्ठित है कि वह इनके मोहपाश तथा आकर्षण से मुक्त नहीं हो पाता, किन्तु वे सभी आदर्श अथवा मान्यताएँ जिस युग से सम्बद्ध थीं, वह युग समाप्त हो चुका है, अतः वे आदर्श भी निरर्थक अथवा मृत ही माने जायेंगे। जिस प्रकार मृत्यु के श्रृगार का स्वरूप ताजमहल आकर्षक लगता है उसी प्रकार प्राचीनता अथवा रूढ़िवादिता के प्रति मोहासक्ति होने के कारण मानव उससे छूट नहीं पाता।

जीवन में व्याप्त अनासक्ति और विषमता को देखकर कवि मानव जीवन को जीवन के शाश्वत सिद्धान्त का स्मरण करवाता है। जीवन का अर्थ है निरन्तर विकास करना, समय और परिस्थिति की विषमताओं में से मार्ग निकालकर आगे बढ़ना, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मानव उस चिरन्तन

सिद्धान्त को भूल चुका है, जो यह कहता है कि मृतकों की पूजा करने वाला भी मृतक ही होता है। जो जीवित हैं, विकासोन्मुखी है, रूढिवाद तथा पाखण्ड से मुक्त है, अन्य जीवों से अनुराग रखते हैं, ईश्वर भी उन्ही का सहायक होता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में उग प्रवृत्ति की आलोचना की गयी है जो शोषित पीड़ित एवं अभावग्रस्त की उपेक्षा करके अपने मनोविनोद के लिए साधन संचित करती रहती है। जो विकासोन्मुखी प्रवृत्तियों की अपेक्षा प्रतिक्रिया-वादिता में मग्न रहते है ऐसे लोगों की त्रुटियों को पहचान कर कवि मृत्आदर्शों, पाखण्डों आदि से मुक्त होने के लिए, जिस अमर संदेश को सुनाता है उसमें भारतीय आध्यात्यिकता और कर्मयोग की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। कविता की अन्तिम दो पंक्तियों में कवि प्रगतिवादी दृष्टि की अपेक्षा भारतीय अध्यात्म को महत्त्व देता है, क्योंकि उसी की शक्ति से मानव परमतत्त्व को प्राप्त कर सकता है।

(२) अलंकार—(i) युग-युग—पुनरुक्ति।
(ii) मृतकों के हैं मृतक—यमक।
(iii) मृतकों के है·· ·····जीवितों का है ईश्वर—विरोधाभास।

·········

दो लड़के

कविता परिचय—'दो लड़के' पंत जी की सुप्रसिद्ध प्रगतिवादी कविता है। इसकी रचना सन् १९३८ में हुई थी। यह वह काल था जब पंत का कवि वायवी कल्पना, अतीन्द्रित सौन्दर्य तथा जीवन-संघर्षों से विरत कविता मंच का त्याग कर यथार्थ की धरती पर अवस्थित हुए थे। 'वीणा' से लेकर 'गुंजन' पर्यन्त कवि ने प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति के कोमल सुकुमार रूपों का चित्रण करते हुए छायावादी काव्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया था, किन्तु सन् १९३५ में सामाजिक जीवन की विषमताओं को प्रमुखता देने वाले एक नये युग का सूत्रपात हुआ। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने उस युग का मार्ग प्रशस्त किया। परिणामस्वरूप अनेक भावुक और कल्पना प्रेमी 'जितनी चिड़िया उड़े आकाश, दाना है धरती के पास' का विश्वास लेकर उस

काल्पनिक कुहेलिका से जीवन के सरल, स्पष्ट और यथार्थ धरातल पर आये : श्री सुमित्रानन्दन पंत उनमे अग्रणी माने जाते हैं।

कतिपय आलोचकों की मान्यता है कि प्रगतिवाद का जन्म छायावाद की अतिशय कल्पना प्रियता, वैयक्तिकता तथा वायवीयता की प्रतिक्रिया में हुआ है, तो कुछ इसे युग की आवश्यकता से उद्भूत मानते हैं। वास्तव में प्रगतिवाद मानव के प्रति सहानुभूति से उत्पन्न हुआ है। पूँजीवादी सभ्यता और साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा शोषण तथा वर्गभेद के कारण मानव जीवन अनेक दु.खों, अभावों एव विवशताओं में आवद्ध हो गया, उसके दयनीय जीवन को देखकर भावुक कवियों का मन द्रवित हो उठा और वे एक ऐसे समाज की संरचना को तत्पर हो गये जहाँ मानवता अपने पूर्ण विकसित और वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर सके। प्रस्तुत कविता में कवि ने दो वालकों का चित्रण करते हुए समाज में व्याप्त शोषण, घृणा, द्वेष आदि भावों को व्यक्त किया है। वर्तमान समाज की दुरावस्था का चित्रण करने के पश्चात् कवि ने भावी जीवन की कल्पना को भी प्रस्तुत किया है जो पूर्वार्द्ध के आधार पर अधिक प्रभावी हो गयी है।

मेरे आंगन .... फुर्तीले।

शब्दार्थ—अक्सर=प्राय: । गदबदे=स्वस्थ किन्तु गन्दे। सांवले=श्यामवर्ण। सहज=स्वभावत:। छबीले=सुन्दर।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में पत जी ने पासी के दो बच्चों का परिचय दिया है। अपने आँगन में आने वाले उन निर्धन, वालकों के शरीर की श्यामलता और स्वस्थता के साथ उनके अभावग्रस्त जीवन की झलक प्रस्तुत की गयी है।

व्याख्या—कवि कहता है कि उसका घर एक टीले पर वना हुआ है। उस पर्वतीय घर के आँगन में दो छोटे-छोटे लड़के प्राय: आया करते हैं। उन्हें देखने से ही ज्ञात हो जाता है कि वे निर्धन और अभावग्रस्त है। उनके शरीर पर कोई वस्त्र नही, वे शरीर से स्वस्थ और मांसल हैं। वच्चों का रंग साँवला है, उस पर गन्दगी के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे मिट्टी के दो मटमैले से पुतले हैं। मैले, साँवले, अभावग्रस्त होकर भी उनमे वालसुलभ चांचल्य और फुर्तीलापन है। इन सवसे मिलकर उनका व्यक्तित्व सहज रूप में सुन्दर-सा प्रतीत होता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में दलित, पीड़ित और शोषित वर्ग का सहज और मार्मिक चित्रण हुआ है। प्रगतिवादी मान्यताओं के अनुसार साहित्यकार का प्रमुख दायित्व है शोषित और पीड़ित वर्ग का यथार्थ चित्रण करना। सुन्दर और स्वस्थ बच्चों को भी अभावमय जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है, यह देखकर पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति घृणा, आक्रोश अथवा विरोध भाव का जागृत होना स्वाभाविक है और प्रगतिवाद का लक्ष्य भी यही है।

(२) अलंकार—(i) 'मिट्टी के मटमैले पुतले'—अनुप्रास और रूपक।
(ii) 'मिट्टी के मटमैले पुतले—पर फुर्तीले'—विरोधाभास।

जल्दी से टीले·····························लड़के मांसल।'

शब्दार्थ—विधियाँ=सम्पतियाँ। पन्नी=कागज का टुकड़ा। कवरों=आवरण का पृष्ठ। नाटे=छोटे कद वाले। मांसल=स्वस्थ माँसपेशियों वाले।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने दो लड़कों की सामान्य क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। प्रत्येक बच्चा खिलौनों से खेलना चाहता है। किन्तु निर्धन परिवार के बच्चों के खिलौने भी ऐसे है जिन्हें देखकर बालकों के प्रति सहानुभूति और सम्पन्न समाज के प्रति विरोध अथवा घृणा के भाव की सहज अनुभूति जाग उठती है।

व्याख्या—कवि कहता है कि वे दोनों लड़के बड़ी फुर्ती से टीले के नीचे मकान के आँगन में उतर आते है। वहाँ कवि के घर से फेंके गये कूड़े-करकट का ढेर पड़ा होता है। वे बच्चे उस ढेर में से मासिक पत्र-पत्रिकाओं के बहुरंगी आवरण पृष्ठों, सिगरेट के खाली डिब्बों तथा उनमें चमकने वाले कागज के टुकड़ों तथा कई प्रकार के फीतों के टुकड़ों तथा नीली-पीली तस्वीरो को चुन कर ले जाते हैं। उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे उन्होंने कूड़े से अमूल्य निधि प्राप्त कर ली हो। उक्त वस्तुओं को प्राप्त करके वे बहुत प्रसन्न होते है, और प्रसन्नता से हँसते, गाते, किलकारियाँ भरते हुए वे बन्दर के समान तेजी से उस आंगन को पार कर चले जाते हैं। वे छोटे-छोटे दो बालक हैं जिनकी आयु छः या सात वर्ष की है, देखने में उनका शरीर पूर्णतया स्वस्थ दिखायी देता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में गरीब बच्चों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। जिनका जीवन सभी प्रकार के अभावों का शिकार हो, जिनके पास शरीर को ढकने के लिए वस्त्र अथवा शरीर को साफ करने वाले उपकरण भी न हों, वे उन्हीं वस्तुओं को पाकर प्रसन्न हो जाते हैं जिन्हें उच्च वर्ग के लोग कूड़े के ढेर पर फेंक देते है। 'सिगरेट के डिब्बे, पन्नी चमकीली' को ही जब वह सर्वोत्तम निधियाँ मान कर प्रसन्न होते है, उस समय पूँजीवादी समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश स्वाभाविक है, जिसके कारण समाज में इस प्रकार की असमानता अथवा विषमता फैलती है।

(२) **अलंकार**—(i) 'मासिक पत्रों के कवरों की'—अनुप्रास।
(ii) 'वन्दर से'—उपमा।
(iii) 'खुश हो हो अन्दर से'—पुनरुक्ति।
(iv) समस्त पद में लड़कों के शरीर और स्वभाव का चित्रण—स्वभावोक्ति।

सुन्दर लगती ....ढाले सच्चे।

शब्दार्थ—मोहती=आकृष्ट करती। अपनापन=ममत्व। पासी=एक अछूत जाति ; कुछ स्थानों पर भंगी।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने पासी के दो लड़कों के शारीरिक सौन्दर्य और प्रभाव का वर्णन किया है। निर्धन, मटमैले तथा अभावग्रस्त होने पर भी उनका मानवीय स्वरूप कवि के मन में अपनत्व की भावना जगा देता है।

व्याख्या—कवि कहता है कि उन लड़कों के शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है। फिर भी उनका सहज मांसल और स्वस्थ शरीर अत्यन्त सुन्दर दिखायी देता है। उनके शारीरिक सौन्दर्य को देखकर किसी का भी मन और आँखें मोहित हो जाती है। ये एक निर्धन, अछूत समझे जाने वाले पासी के बच्चे हैं, रूढ़िवादी और कट्टर पंथी के लिए शायद ये त्याज्य भी माने जाते हैं, किन्तु ये शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग से मनुष्य के बालक ही दिखायी देते हैं। इनका प्रत्येक अंग, आंख, कान, नाक, हाथ, पाँव आदि मानवीय ढाँचे में ही गठित है, जिसे देखकर उनके प्रति ममत्व की भावना उभरती है। इन्हें देखकर यह विश्वास और भी दृढ़ होता है कि मानव, चाहे किसी जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, भाषा से सम्बन्ध रखता हो वह मानव ही है, उसमें किसी प्रकार का भेदभाव करना उचित नहीं है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की है। सामान्यत: आजकल का सभ्य समाज वस्त्रालंकारों से सुसज्जित होकर रहना चाहता है, किन्तु उन बाहरी आवरणों के भीतर भेदभाव की भावना मानव जीवन मे वैषम्य भर देती है। कवि ने उन दो लड़कों के मानवीय रूप का चित्रण करके जिस अपनत्व की भावना का प्रतिपादन किया है, उससे प्रगतिवादी विचार की भी पुष्टि होती है कि संसार में प्रत्येक मनुष्य शरार तथा शरीर की आवश्यकताओं की दृष्टि से समान है।

(२) अलंकार—(i) 'मोहती नयन-मन'—अनुप्रास।

(ii) 'रोम-रोम मानव-साँचे में ढाले जाते'—पुनरुक्ति, उत्प्रेक्षा।

'अस्थि-मांस के····· ······················मनुजोचित साधन।

शब्दार्थ—अस्थि-मांस=हड्डी और मांस। अधिवास=निवास स्थान। सूक्ष्म=अदृश्य। अनश्वर=चिरन्तन; अजर; अमर। न्योछावार=समर्पित। वह्नि=अग्नि। उल्का=विजली। झंझा=आंधी। कलेवर=शरीर। निष्ठुर=निर्मम; कठोर। भंगुर=नाशवान। मनुजोचित=मानव के लिए अनुकूल।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में पंत जी ने प्रगतिवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया है। प्रगतिवादी आत्मा को निरर्थक मानता है, उसके अनुसार किसी सूक्ष्म तत्त्व की खोज अथवा उसके लिए संसार की उपेक्षा अनुचित है। यह संसार और उसकी विभूतियों को मानव के लिए संकलित करना चाहिए। प्रकृति की जड़ता में घिरे हुए मानव जीवन की नश्वरता और उसके लिये संसार को सजाने-संवारने की आवश्यकता पर बल दिया गया हे।

व्याख्या—कवि कहता है कि यह जगत् उन जीवधारियों का निवासस्थान है जो हड्डी और मांस के शरीर में यहाँ रहता है। केवल ऐसे सप्राण और स्वस्थ लोगो को ही यहाँ रहने का अधिकार है जो भिन्न प्रकार के सकटों से निरन्तर सघर्ष करते हुए यहाँ रहते आ रहे है। दार्शनिक लोग शरीर अथवा जगत को नाश्वान कहते है, उनके अनुसार केवल आत्मा ही एक मात्र शाश्वत तत्त्व है, यह संसार उस आत्मा का आवास है, किन्तु पंत जी कहते है कि आत्मा तो अत्यन्त सूक्ष्म, अचिंत्य, अदृश्य और अवर्णनीय है। उसे कोई देख नहीं पाता, आत्मा चिरन्तन, शाश्वत अथवा अजर-अमर है। अत: उसका निवास-स्थान यह

नाशवान संसार नही हो सकता। वास्तव में यह संसार उनके लिये हैं जो मरणशील है, नाशवान है। रक्त और मांस के वने हुए मानव के लिए उस अदृश्य और काल्पनिक आत्मा को न्यौछावर करना चाहिए, क्योंकि मानव से ही तो संसार की शोभा और महिमा है। सभी प्राकृतिक उपकरणों से दुर्वल मानव जो नाना प्रकार के रोग, शोक, भूख, प्यास, अभाव आदि से निरन्तर संघर्ष करता रहता है वही संसार में रहने का वास्तविक अधिकारी है।

मानव-जीवन की दुर्वलता और विवशता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि प्रकृति के विभिन्न कठोर रूपों से निरन्तर संघर्ष करने वाला मानव अमर नहीं हो सकता। उसे कभी अग्नि की भयंकरता नष्ट-भ्रष्ट करने आती है, देखते-देखते खेत, खलिहान, नगर, गांव जल कर राख हो जाते हैं। कभी भयंकर तूफान आकर उसकी सम्पत्ति को वहा ले जाती है तो कभी ओलावृष्टि उसकी भरपूर फसलों को समाप्त कर देती है, कभी आँधियो का वेग उसके जीवन पोत को डुवा देने को आतुर हो उठता है। ऐसी परिस्थितियों में मानव का जीवन दूभर हो जाता है। यह निष्प्राण प्रकृति सर्वथा जड़ है, हृदयहीन है, वह कभी भी संघर्षरत मानव पर दया अथवा अनुग्रह नही करती; कोमल, सुकुमार मानव प्रकृति की विभीषिका का सामना करता रहता है। इसलिए संसार में रहने वाले मानव का जीवन सुखी, सुरक्षित तथा सम्पन्न वनाने के लिए, संसार की सुन्दरता और और मोहकता को बढाने के लिए ऐसे साधनों का आविष्कार, संचय अथवा संघटन करने की परमावश्यकता है, जिससे मानव भौतिक जीवन को अधिकाधिक सुख-साधन सम्पन्न वना सके।

विशेष—(१) मार्क्सवाद आत्मा या परमात्मा में विश्वास नहीं रखता, वह स्थूल भौतिक तत्त्वों को ही स्वीकार करता है। अतः यह विल्कुल स्वाभाविक ही है कि वह परमात्म-पूजा की अपेक्षा मानव-पूजा को महत्त्व दे। मार्क्सवाद अथवा प्रगतिवाद मानव तथा उसके शरीर को ब्रह्म अथवा उसकी उपासना से अधिक महत्त्व देता है। यही कारण है प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने मानव-जीवन और उसकी आवश्यकताओं को प्रमुखता दी है। यहाँ पर मार्क्सवाद के साथ डार्विन के विकासवाद का भी मिश्रण है, जिसके अनुसार शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति ही जीवित रहने का अधिकारी है। प्रकृति की भयंकरता का सामना करने के लिए ही कवि विभिन्न साधनों की उपलब्धि पर वल देता है।

(२) अलंकार—(i) 'आत्मा का अधिवास न वह वह सूक्ष्म अनश्वर'—
अपह्नुति।
(ii) जग का अधिकारी···दुर्बलतर—व्यतिरेक।
(iii) वह्निवाढ़···मनुज कलेवर—काकु वक्रोक्ति।
(iv) 'झंझा की भीषण भू पर', 'सहज भंगुर जीवित जन'—अनुप्रास।

क्यों न एक हो························ तुझे धरा पर।'

शब्दार्थ—परस्पर=आपस में। लोकोत्तर=अलौकिक। प्रसाद=महल। गौरवमय=गौरवशाली; महिमामय। क्षण-धूलि=क्षणिकता। पूरित=पूर्ण। मनुज=मानव। धरा=पृथ्वी।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने मानव जीवन की समृद्धि और इस धरती पर ही सुख-साधनों की सम्पन्नता की आकांक्षा का वर्णन किया है। कविता के पूर्वार्द्ध में कवि ने प्रकृति की निष्ठुरता और मानवता की विवशता और नश्वरता का यथातथ्य वर्णन किया था, इस प्रसंग में भावी जीवन निर्माण के उपायों का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या—कवि मानव जीवन में परिव्याप्त भूख, प्यास, दुःख, संताप, अभाव तथा संघर्ष को देखकर विचार करता है कि प्रकृति की भयंकरता के साथ अकेला मानव तो खड़ा नहीं रह सकता। अविरत संघर्षों के कारण उसके जीवन में दौर्बल्य और निराशा आ जाती है, अतः वह सम्पूर्ण मानवता को संघटित होकर कार्य करने की कल्पना करता है। कवि आशा प्रकट करता है कि सभी मानव तरह-तरह के भेदभाव भुला कर एक हो जायें; जाति, धर्म, देश, संस्कृति तथा धन आदि के भेदभावों को समाप्त कर मानवता के आधार पर संगठित होकर कार्यरत हो जायें, प्रकृति की भयंकरता से संघर्ष करने को तत्पर हो जायें तो धरती पर एक दिव्य लोक का निर्माण हो जायेगा। मानव के संघठित प्रयासों से जो जगत् बनेगा उससे किसी प्रकार का अभाव तथा दुःख नहीं होगा। पारस्परिक सहयोग और सद्भावना से मानव रोग-शोक आदि पर विजय प्राप्त कर लेगा। सभी प्रकार के संतापों से मुक्त होकर यह संसार स्वर्ग की समानता कर सकेगा। धरती पर मानव जीवन का गौरवशाली रूप प्रस्तुत होगा, जिसमें मानवता की विजय दुंदुभी गूंजेगी। एक ऐसा साम्राज्य बन सकेगा जिसमें शोषण और पीड़ा का अस्तित्व नहीं होगा। शासन मानव कल्याण के लिए

प्रयत्नशील होगा। एक ऐसा संसार बन सकेगा जहाँ मानव जीवन अपनी क्षण-भँगुरता से भी सुरक्षित रह सकेगा; जब तक जीवन होगा तब तक उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण होंगी; अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति होने पर किसी में भी ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि दुर्भावनाएँ नही होंगी, परस्पर प्रेमपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए मानव ईश्वरीय-सुखों से अपने को कम नहीं मानेगा। यदि ऐसा प्रेम, सौहार्द्र, सहानुभूति तथा साधन सम्पन्नता से परिपूर्ण जीवन धरती पर अवतरित हो गया तो फिर कोई स्वर्ग की कल्पना भी क्यों करेगा।

विशेष—(१) इस पद्यांश में पंत जी पर मार्क्सवादी तथा गाँधीवादी प्रभाव स्पष्टतः दिखायी देता है। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संगठित प्रयास यदि मार्क्सवादी दर्शन है तो पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति जीवन व्यतीत करते हुए स्वर्गीय सुख की कामना गाँधीजी से प्रेरित है। प्रस्तुत पद्यांश मे कवि ने भौतिक और आत्मिक विचारों का सफल समन्वय किया है।

(२) प्रगतिवादी काव्यधारा के अनुसार इस कविता की भाषा सरल स्पष्ट तथा अनलंकृत होने के कारण सहज प्रवाहमयी हो गयी है। भाषा के सहज रूप में दार्शनिक गाम्भीर्य का प्रतिपादन करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

(३) **अलंकार**—(i) 'क्यों न एक हो मानव-मानव सभी परस्पर'—पुनरुक्ति।
(ii) 'जीवन का प्रासाद···हित निश्चय'—काकु वक्रोक्ति :
(iii) 'जीवन की क्षण-धूलि रह सके जहां सुरक्षित'—रूपक।
(iv) 'मनुज प्रेम से जहाँ रह सके ··मानव ईश्वर'—अनुप्रास।

....

झंझा में नीम

कविता परिचय—'झंझा में नीम' कविता का रचना-काल सन् १९३८ है। यह कविता 'युगवाणी' काव्य-संकलन से उद्धृत है। प्रस्तुत कविता मे कवि ने प्रकृति के प्रति अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है। उसका कहना है—"प्राकृतिक चित्रणों में प्रायः मैंने अपनी भावनाओं का ही सौन्दर्य मिलाकर उन्हें

ऐन्द्रिय चित्रण बनाया है, कभी-कभी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौन्दर्य का लिबास पहना दिया है। यद्यपि उच्छ्वास, आँसू, बादल, विश्ववेणु, एक तारा, नौका विहार, पलाश, दो मित्र, झंझा में नीम, आदि अनेक रचनाओं मे मेरे रूप-चित्रण के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।" एक समीक्षक ने 'झंझा में नीम' कविता को 'संकेत' करते हुए लिखा—"प्रस्तुत कविता में कवि ने झंझा के स्पर्श से सर-सर मर-मर शब्द करने वाले घने नीम के वृक्ष का चित्रण किया है।"

सर् सर् मर् मर ································कम्प्र अपार।

शब्दार्थ—श्वसन स्पर्श=सांस का स्पर्श, वायु की सरसराहट। निर्झर=झरना। मरुत=वायु।

प्रसंग—पंत प्रकृति से 'युगान्त' के रूप में विदा ले चुके हैं, किन्तु, प्रकृति का आकर्षण पीछा कहाँ छोड़ता है। 'युगवाणी' में भी प्रकृति-चित्र अंकित हो ही गए है। उन्ही प्रकृति-चित्रो में झंझा में सरसराते नीम का वर्णन है।

व्याख्या—आँधी चल रही है। आँधी के वेग से हिलते नीम के घने, लम्बे, पतले और चंचल पत्ते हवा की सरसराहट का स्पर्श कर हर्षित होकर प्रत्येक क्षण हिल-हिल उठते हैं – मानो उनकी प्रसन्नता की एक यही वेला हो। उनके हिलने में कितना संगीतमय, कोमल रेशम का-सा सर्-सर् मर्-मर का स्वर उभरता है। वृक्ष की चोटी से पृथ्वी तक असंख्य मर्-मर् ध्वनियाँ गूंज उठती हैं—ऐसा लगता है कि नीम वृक्ष के शिखर से कोई झरना सैकड़ों-सैकड़ों ध्वनियाँ—जो पवन के वेग से प्रकम्पित हो रही हों, उत्पन्न करता हुआ फूट पड़ा हो। उस प्रकम्प से उत्पन्न ध्वनि कितनी मधुर है, कितनी प्रकम्पित है।

विशेष—(१) कविता को संगीतमय शब्दों से बाँध दिया गया है। 'सर्-सर् मर्-मर्' कविता पढ़ चुकने के बाद भी कानों से टकराहट करता रहता है, उसकी ध्वनि-प्रतिध्वनि गूंजती रहती है।

(२) नीम के पत्र ही मानो उसके रोम हैं, जिनके प्रकम्प से नीम अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहा है।

(३) अलंकार—(i) 'रेशम के-से'—उपमा।

(ii) 'सर्-सर् मर्-मर'—अनुप्रास, ध्वन्यर्थ व्यंजना।

(iii) 'श्वसन स्पर्श से'—मानवीकरण।

(iv) 'शत-शत'—वीप्सा।

झूम-झूम झुक ....पड़ते पल-पल ।

शब्दार्थ—निखिल=सम्पूर्ण । हरित=हरा । गुंज=गुम्फन । अविरल= निरन्तर ।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि झंझा में सरसरासते नीम का वर्णन करता हुआ कहता है—

व्याख्या—पवन प्रवेग से चल रहा है । विशालकाय नीम का वृक्ष झूम-झूम कर बार-बार झुक-झुक जाता है, मानो इसीमें उसका जीवन सुरक्षित रह सकता हो । वह बार-बार सिहर जाता है और थर्-थर्-थर् कंपकपाता हुआ सर्-सर् मर्-मर् की ध्वनि उत्पन्न करता है । इस वेगवान वायु से डर कर नीम के समस्त पत्र धातु के पत्रों के समान परस्पर बजकर ध्वनि उत्पन्न करते हुए गहन हरे गुंजों में ओझल हो गए—मानो भय से वे सब एकजुट होकर एक ही ध्वनि को उत्पन्न करने लगे । ऐसे में भय से पीले पड़ गए क्षीण, दुर्बल पत्ते ठण्डी श्वांस भरते हुए सिसक-सिसक कर भूमि पर गिरते रहते है, पल-पल यही क्रिया चलती रहती है ।

विशेष—(१) भयभीत नीम के पत्ते वायु का सामना करने के लिए मानो एकजुट होकर ध्वनि करते हैं और अन्ततः अधिक दुर्बल पीले पत्ते भूमि पर धराशायी हो जाते है । इस दृष्टि से यह चित्र प्रथम पद के प्रसन्नता व्यक्त करने वाले चित्र से भिन्न है।

(२) सम्पूर्ण कविता में लाक्षणिक प्रयोग और ध्वन्यात्मकता है । 'भीत-पीत' शब्दों का अर्थ जीवन-संघर्ष से हारे हुए भयभीत मनुष्य से भी लिया जा सकता है ।

(३) ध्वन्यात्मकता ध्यातव्य है ।

(४) अलंकार—(i) 'झूम-झूम झुक-झुक'—अनुप्रास ।
(ii) 'भीम नीम'—अनुप्रास ।
(iii) 'सिहर-सिहर'—वीप्सा ।
(iv) 'झर-झर', 'पल-पल'—वीप्सा और अनुप्रास ।
(v) मानवीकरण ।

....

बापू

कविता परिचय—सन् १९३७ पंत के काव्य-जीवन में संक्रमण काल कहा जाता है । उस समय एक ओर गांधी जी की आध्यात्मिकता पर आधारित

सत्य और अहिंसा समाज को स्वाधीनता की प्रेरणा दे रहे थे ; दूसरी ओर कार्ल मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर समाज को अर्थ प्रधान, भौतिकवाद और वर्ग-संघर्ष की विचारधारा प्रभावित कर रही थी। एक ओर आध्यात्मिक जीवन के आदर्शों की प्रेरणा थी तो दूसरी ओर जीवन का कठोर सत्य अपनी पूर्ण शक्ति से मानव-शरीर को झिझोड़ रहा था। सम्पूर्ण समाज जैसे दोराहे पर खड़ा था। पंत जी गाँधीवाद और मार्क्सवाद को मानव-जीवन के दो किनारे मानते हैं। उनका विश्वास है कि एक से आत्मा की शक्ति मिलती है तो दूसरे से शारीरिक आवश्यक पूर्ति के साधन। दोनों को एक-दूसरे का पूरक मानकर पंत जी ने दोनों विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने का सफल प्रयास किया। 'बापू' कविता में दोनों का समन्वय करते हुए कवि ने अपना मौलिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। 'बापू' कविता में कवि गांधी जी से प्रश्न करते हुए उनसे आध्यात्मिक जीवन के तत्त्व का स्पष्टीकरण प्राप्त करता है और साथ ही भौतिकवादी सिद्धान्तों का गुण-दोष विवेचन भी करता है। कवि का विश्वास दृढ़ हो जाता है कि भौतिकवाद से जीवन में स्वर्गीय-सुख-साधन प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु शरीर ही सब कुछ नहीं, आत्मा चिरन्तन और सार्वकालिक है। अतः आध्यात्मिकता पर आधारित संस्कृति की प्रतिष्ठा से ही मानवता का कल्याण होगा। इस प्रकार कवि आध्यामिकता पर आधारित गाँधीवाद को ही अधिक महत्त्व देता है।

किन तत्वों से ....हो जावेगी पाशवता।

शब्दार्थ—भावी=भविष्य में होने वाले। समरोन्मुख=युद्ध के लिए उत्सुक। भव=संसार। आलोकित=प्रकाशित। महिमा=महानता। मण्डित=शोभित। निरस्त=परास्त। पाशवता=पशुता।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने गांधी जी से प्रश्न करते हुए उनके सत्य, अहिंसा और प्रेम आध्यात्मिक आदर्शों की उपयोगिता पूछी है। जब सम्पूर्ण संसार युद्ध और अहिंसा के लिए उतावला हो रहा है, उस संघर्ष-वेला में गाँधी जी भारत का नव-निर्माण कैसे करेंगे ? इस जिज्ञासा को प्रकट करता हुआ कवि कहता है—

व्याख्या—हे बापू ! वर्तमान संसार स्वार्थ, घृणा, संकीर्णता तथा हिंसा भाव से भरकर हर समय युद्ध की तैयारियाँ कर रहा है। सम्पूर्ण मानवता पर युद्ध के बादल मण्डरा रहे है। हिंसा का ताण्डव मानवता को कहाँ ले जायेगा। ऐसे संकटपूर्ण काल में तुम किन तत्त्वों से भावी मानवता के जीवन का निर्माण

करोगे ? हिंसक, शोषक और साम्राज्यवादी बंधनों में जकड़े भारत का नव-निर्माण किस ढंग से करोगे; कवि अपनी शंका प्रकट करता है कि सत्य, अहिंसा और आत्मशक्ति के सिद्धांतों से क्या मानव-जीवन अपनी दुष्प्रवृत्तियों के अंधकार से मुक्ति पा सकेगा ? नवीन मानवता, जो भौतिक-सुख साधनों को प्राप्त करने के लिए परस्पर होड़-सी लगाये हुए है, क्या उनके मन में शुद्ध, सात्विक और अहेतुक प्रेम की प्रतिष्ठा हो सकेगी ? उनका जीवन आध्यत्मिकता अथवा आदर्शवादिता से सुशोभित हो सकेगा । संसार में पशुता का बोलबाला देखकर कवि शका प्रकट करता है, स्वार्थ, लोलुप, हिंसक और शरीर सुख के लिए किसी के जीवन को समाप्त करने के लिए हर समय तत्पर रहने वालों को पशु-वृत्ति प्रेम की शक्ति से पराजित हो सकेगी। पशु-वृत्ति की वृद्धि तथा विजय देखकर उसका मन आशंकित होता है ; इसलिए वह बार-बार प्रश्न करता है कि ये आध्यात्मिक आदर्शों को भावी मानव कैसे और क्यों ग्रहण करेगा ।

विशेष—(१) जिस समय व्यक्ति का मन द्विविधा-ग्रस्त हो, उस समय वह किसी भी सिद्धान्त को आसानी से स्वीकार नही करता । पराधीनता, शोषक और विदेशी-शासकों के नृशंस अत्याचारों समाज में व्याप्त अज्ञान, अशिक्षा, अकर्मण्यता तथा जीवन साधनों के अभाव के कारण प्रत्येक देश भक्त के समान कवि का मन भी अत्यन्त क्षुब्ध था । यही कारण है कि वह बार-बार प्रश्न करता हुआ पूर्ण स्पष्टीकरण पा लेना चाहता है । वह आश्वस्त होना चाहता है कि देश का भविष्य किस मार्ग पर चलने से उज्ज्वल हो सकता है । इस अवतरण में तत्कालीन विषमताओं की ध्वनि पूर्णतया स्पष्ट मिलती है । कवि की यही जिज्ञासा आगे चलकर गाँधीवाद तथा मार्क्सवाद की परस्पर तुलना कर सकी ।

(२) अलंकार—(i) 'किन तत्त्वों .....पाशवता'—सन्देह ।

(ii) 'आत्मा की .....मानवता'—अनुप्रास ।

बापू ! तुम से ....आए तुम अनिवार्य ।

शब्दार्थ—तेजराशि=प्रकाश का समूह । आह्वान=पुकार । पुलकित=प्रसन्न । भूतवाद=भौतिकवाद । धरा=धरती । सोपान=सीढ़ी । आत्मदर्शन=आध्यात्मिकता । समासीन=स्थित: प्रतिष्ठिता । अम्लान=शुद्ध । विवर्त=परिवर्तन । क्षय=नाश । इष्ट=इच्छित । उबारने=उद्धार करने ।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने गांधीवाद और मार्क्सवाद की परस्पर तुलना करते हुए दोनों का समन्वय करने का प्रयास किया है । कवि दोनों मत-

वादों को एक दूसरे का पूरक मानता है, इस लिए जन-जीवन के सुखी करने के लिए कवि उनका समन्वित रूप प्रस्तुत करता है।

व्याख्या—कवि गांधीवाद का महत्त्व स्वीकार करते हुए कहता है कि गांधीवाद विचारधारा में आध्यात्मिक तेजस्विता है, जिसे-सगमकार प्रत्येक व्यक्ति का रोम-रोम प्रसन्नता से भरपूर हो जाता है। गांधीवाद के आह्वान में जो आत्मशक्ति निहित है, उससे मन और प्राणों को शक्ति मिलती है, प्रेरणा प्राप्त होती है। अतः मानसिक और आत्मशक्ति के लिए गांधीवाद ही सर्वोपरि शक्ति है। मार्क्सवाद अथवा भौतिकवाद, जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने शारीरिक सुख-साधनों को प्राप्त करने का अधिकारी होता है, आत्मा और परमात्मा की सत्ता स्वीकार नहीं करता; उसके अनुसार तो दृश्यमान संसार ही वास्तविक सत्ता है; इस पर अधिकाधिक अधिकार करके सभी प्रकार के वैभव-विलास की सामग्री का संचय करना उसका लक्ष्य है। किंतु यह सब तो जीवन को स्वर्ग में बदलने के साधन-मात्र हैं क्योंकि मानव केवल शरीर नहीं होता, अपितु शरीर से आगे भी कुछ शक्तियाँ रहती हैं, जैसे मन और आत्मा। भौतिकवाद मानसिक तथा आत्मिक दृष्टि से अपूर्ण है, भारतवर्ष में तो आध्यात्मिकता चिरकाल से अपने विशुद्ध रूप में प्रतिष्ठित है, कोरा भौतिकवाद का उससे मेल नहीं खा सकता। भौतिकवादी अथवा मार्क्सवादी विचारधारा जिस वर्ग-संघर्ष, युद्ध, घृणा, हिंसा आदि को जन्म देती है, उससे परिवर्तन, क्रान्ति अथवा विप्लव की बातें करने वाले यह भूल जाते हैं कि युग परिवर्तन में मानवता का कितना विनाश होगा। युद्ध की विभीषिका से सत्रस्त मानव कभी भी विध्वंस नहीं चाहता। उसके शरीर की एक ही आकांक्षा रहती है शान्ति और समता, इसके लिए युद्ध की अपेक्षा वह हमेशा अहिंसा को ही महत्त्व देगा। वह सदा से यह मानता आया है कि चिरन्तन सुख और शान्ति परस्पर समता, प्रेम और अहिंसा के व्यवहार से ही प्रतिष्ठित हो सकती है। इसीलिए कवि गांधीजी को नवीन संस्कृति का दूत कहकर अभिवादन करता है, क्योंकि वह मानव की आत्मा को भौतिकवादी विचारधारा के बन्धनों से मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील है। यह कार्य ईश्वरीय है अतः इसे पूरा करना अनिवार्य है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में पंत जी का मानवतावादी स्वरूप मुखरित हुआ है। किसी मतवाद के संकीर्ण घेरे में रहने अथवा अंधविश्वासी बन कर मानवता का कल्याण संभव नहीं है। पंतजी ने भी गांधीवाद अथवा मार्क्सवाद का अंधानुकरण नहीं किया, अपितु दोनों के गुण-दोष का विवेचन करके

अपने मत का स्थिर किया है। पंतजी की दृष्टि में कोरा भौतिकवाद पशुता का पोषक होता है, इससे मनुष्य में स्वार्थ, घृणा और हिंसा की अभिवृद्धि होती है। इसका नियन्त्रण करने के लिए आध्यात्मिकता ही एक मात्र साधन है। कोरा अध्यात्म भी जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की उपेक्षा करता है। शारीरिक अथवा भौतिक अभाव मानव-जीवन में हीन भावना अथवा कुण्ठा को जन्म दे सकते हैं। इसलिए उसे भौतिक जीवन तथा सुख-साधनों से सम्पन्न बनाना भी आवश्यक है। भारतीय दर्शन के अनुसार कवि ने अतिवाद को छोड़कर मध्यम मार्ग को अपनाया है। उन्हें इस बात का गर्व है कि इस देश में आध्यात्मिकता अनादिकाल से प्रतिष्ठित है। अतः उसका बहिष्कार करना किसी भी स्थिति में उचित नहीं। इस प्रकार तर्क-बुद्धि द्वारा गांधीवाद की स्वीकृति और प्रतिष्ठा करते हुए पंतजी ने उसके साथ भौतिकवाद का समन्वय कर दिया है।

(२) अलंकार—(i) 'आत्मदर्शन अनादि'—अनुप्रास।
(ii) 'सम्पूर्ण अवतरण में संदेह।

युग उपकरण

कविता परिचय—'युग उपकरण' कविता का रचना-काल सन् १९३८ है। प्रस्तुत कविता में कवि ने ऐसे उपकरणों का वर्णन किया है जिनसे भू-मानवता का पूर्ण विकास सभव है। ऐसे उपकरण हैं—जीवित संगीत, आदर्श, अन्तः सौन्दर्य, सक्रिय अनुकम्पा, नम्र शक्ति, मूर्त प्रेम, पवित्रता, सुख, ललित कला, दर्शन-विज्ञान, सस्कृति, विश्वास और रीति-नीति। जब ये उपकरण युगानुकूल हो जावेंगे तब ही—

ऐसे उपकरणों से हो भू-मानवता का पूर्ण विकास।

वह जीवित संगीत......................से जो परिशोध।

शब्दार्थ—मनुज=मानव। वैरूप्य=विभिन्नता, विरूपता। परिशोध=अनुसंधान, खोज, प्रतिकार।

प्रसंग—कवि का एक आदर्श है, जिसकी सम्पूर्ति के लिए नवीन सामाजिक-मानवीय मूल्यों की आवश्यकता है। उन्ही उपकरणों का वर्णन कवि प्रस्तुत कविता में कर रहा है।

व्याख्या—कवि कहता है कि संसार में जीवित संगीत केवल वह संगीत है जिसमें मानव-सृष्टि के जीवन का संघर्ष मिला हुआ हो—केवल उस संघर्ष से उत्पन्न संगीत ही जीवित संगीत कहलाने का अधिकारी है, अन्य आमोद और

विलासिता का संगीत जीवन का प्रतीक नहीं बन सकता। आदर्श वही है, वही मानव-स्वभाव वरेण्य है जो दोष-मुक्त-निष्कर्ष निकाल सके अर्थात् दोष-शुद्ध जीवन-निष्कर्षों तक पहुँच सके। वही सौन्दर्य आन्तरिक सौन्दर्य अर्थात् शुद्ध-सौन्दर्य की परिसीमा में आ सकता है जो बाह्य विभिन्नताओं, विरूपताओं के विरोध को सहन कर सके अर्थात् अन्तर और बाह्य को एकतान कर सके। मनुष्य की वही अनुकंपा वांछनीय है, जो घृणा का अनुसंधान घृणा से नहीं करती, जो घृणा का अन्तर घृणा से नहीं, प्रेम से देती है।

विशेष—कवि विचारधारा के एक ऐसे मोड़ पर पहुँच गया है, जहाँ से उसका प्रगतिवादी स्वर मुखरित होने लगता है। तभी वह 'जीवन-संघर्ष' जैसे शब्दों का प्रयोग करने लगा है। फिर भी उसका प्राचीन संस्कृति-बोध नहीं जाता—'न घृणा का करे घृणा से जो प्रतिशोध' जैसी पंक्ति में वह विद्यमान रहता है।

नम्र शक्ति..............................रहे सन्यस्त !

शब्दार्थ—अभिन्न=एक रूप। कलुष=पाप। सन्यस्त=प्रयत्नशील।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ऐसे उपकरणों का वर्णन करता है जिनसे भू-मानवता का पूर्ण विकास संभव है।

व्याख्या—वही मानव नम्र शक्ति वाला मानव कहला सकता है जिसमें बल होते हुए भी सहिष्णुता हो, जिसका बल निर्बलों का बल बन जाए अर्थात् निर्बलों की सहायता करने वाला ही नम्र शक्ति कहला सकता है। वही प्रेम मूर्त्त प्रेम होगा जिसमें एक मानव दूसरे मानव के साथ ऐक्य का अनुभव करे, एक-दूसरे को समान भाव से देखे ! पवित्रता उसी को कहा जा सकता है जो संसार में फैले कलुषों से आक्रान्त न हो वरन् उस पापमय वातावरण को दूर करने मे सहायक हो। वही मनुष्य सुख का सच्चा स्वरूप उपस्थित करता है, जो दूसरो को सुख देने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है।

विशेष—'मूर्त प्रेम'·· समान' पंक्ति में 'अभिन्न' के बाद 'समान' प्रयोग चिन्त्य है। जब मानव मानव के लिए अभिन्न हो गया तो फिर समानता का भाव कैसा ? अभिन्नता एकरूप हो जाने मे है, एकाकार हो जाने में है, एक-दूसरे के मिल जाने मे है, जबकि 'समान' भाव के लिए दो का अस्तित्व आवश्यक है। कवि द्वारा 'अभिन्न' की उदात्त-भूमि का निर्माण होते-होते रह गया, जिससे कविता को संश्लिष्टता को आघात पहुँचा है।

ललित कला··········· ················का पूर्ण विकास।

शब्दार्थ—कुत्सित=घृणित, विरूप। मनुजता=मानवता। सुदुस्तर=विस्तीर्ण। उपकरण=यन्त्रादि।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने उन उपकरणों का उल्लेख किया है जिनसे नवीन सामाजिक मूल्यों की स्थापना संभव है, जिनसे भू-मानवता का पूर्ण विकास हो सकता है।

व्याख्या—ललित कला वही कला कहला सकती है जो घृणास्पद कुरूप जगत् का रूप निखारने का कार्य करे, विरूप को सुन्दर बनाये। वही विज्ञान है, वही दर्शन है जिससे मानवता का सदा कल्याण हो। अकल्याणकारी दर्शन-दर्शन नहीं, विज्ञान-विज्ञान नहीं। दर्शन-विज्ञान का अर्थ कल्याण ही है—शिव है। वही संस्कृति आदर्श संस्कृति है जिसमें इस पृथ्वी पर उत्पन्न मानवता का स्वरूप-विकास पाकर भव्यता प्राप्त करले (ताकि वह भव्यतम हो जाये)। मानव का वही विश्वास सही अर्थ में विश्वास है जो इस जगत् रूपी सागर में ज्योति-स्तूप (Light-House) बनकर सदा मार्ग-दर्शन करता रहे। सागर की उत्ताल लहरों पर प्रकाश फैलाता रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव को सत्य मार्ग पर चलाने वाला विश्वास ही स्वस्थ दृष्टिकोण है। इसी प्रकार वही परम्परा अथवा नीति वरेण्य है जो विश्व की प्रगति में जड़-बन्धन-पाश न बन जाये। वही रीति-नीति उचित है जो विश्व प्रगति में सहायक हो, गतिशील हो, युग की आवश्यकताओं को पूर्ण करती हो। यही उपकरण युग-उपकरण हैं; इन्हीं से मानवता का पूर्ण विकास संभव है।

विशेष—(१) कवि की नये मानव-संसार की कल्पना नवीन उपकरणों और आदर्शों को ग्रहण करने से ही साकार होगी, यही भाव इस कविता में प्रकट किया गया है।

(२) अलंकार—अनुप्रास।

·········

रूप सत्य

कविता परिचय—'रूप सत्य' कविता की रचना सन् १६३८ में हुई थी। इस कविता में जहाँ एक ओर कवि ने सच्चे सौन्दर्य का अंकन किया है वहाँ दूसरी ओर वह अपने को सौन्दर्य-प्रेमी मानता है। उसका कथन है—

मुझे रूप ही भाता।
प्राण ! रूप ही मेरे उर में
मधुर भाव बन जाता।

मुझे रूप ही............... ....बीज से कोष।

शब्दार्थ—उर=हृदय। परितोष=शान्ति।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण कवि पंत की 'रूप सत्य' कविता से उद्धृत है। कवि के लिए रूप ही सच्चा सौन्दर्य है। इसकी महत्ता का वर्णन वह प्रस्तुत अवतरण में करता है :

व्याख्या—कवि का कहना है कि मुझे तो ऐसे लगता है कि रूप ही सत्य है, इसी कारण वह मुझे भाता है। रूप ही मेरे हृदय में मधुर भावों की सृष्टि करता है, मुझे नवीन कल्पनाएं देता है। मेरे लिए वही सौन्दर्य है। जिसका कोई रूपाकार है—कृति-शून्य सौन्दर्य मेरे लिए सौन्दर्य नहीं है। मुझे जीवन का सत्य प्राप्त कर लेने पर भी सन्तोष नही मिला, मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई। मुझे तो रूपाकृति का सौन्दर्य शान्त कर सकता है। मुझे सूक्ष्म ज्ञान से साक्षात् वस्तु अधिक अच्छी लगती है, सूक्ष्म बीज से उसका कोष रूप वृक्ष ही अधिक भाता है।

विशेष—प्रस्तुत पंक्ति से कवि का सौन्दर्य-बोध प्रकट होता है। सौन्दर्य की अनेक परिभाषाएं की गई है, किन्तु कोई परिभाषा सर्वसम्मत नही। काण्ट का विचार है कि सौन्दर्य वस्तु मे ही निहित होता है। हीगेल के अनुसार सौन्दर्य आकार-विहीन अनुभूति है, किन्तु, उसका अनुभव करने के लिए किसी रूप की आवश्यकता है। तालस्तॉय को अनुभूति वह है जो सौन्दर्य को प्रत्यक्ष-दर्शी की दृष्टि में ही स्वीकार करती है। उसके अनुसार सौन्दर्य दर्शक के दृष्टि-कोण पर निर्भर करता है—हा, आधार तो यहाँ भी 'वस्तु' ही है। 'रूप' में ही सौन्दर्य है, दृष्टि मार्क्सवादी-दर्शन के निकट जा पड़ती है। यह दृष्टिकोण प्रगतिवादी दृष्टिकोण है।

सच है, जीवन..रूप ही भाता।

शब्दार्थ—लुभाना=मोहित करना ; आकर्षित करना। ऐश्वर्य=वैभव।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण 'रूप सत्य' कविता से उद्धृत है। कवि के लिए

रूप ही सच्चा सौन्दर्य है। यहाँ कवि इसी की महत्ता का प्रतिपादन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—इसमें सन्देह नहीं कि जीवन के वसन्त में पतझड़ भी आता है; बहारों के बाद आयेगी खिजा भी, परन्तु उस वसन्त में खिले सुगंधमय पुष्पों और कोमलकान्त कलियों का भी अपना ही सौन्दर्य होता है, उनका अपना ही ऐश्वर्यशाली संसार होता है, जिसके मुकाबले पतझड़ का सूनापना, सूनापन भी झेला जा सकता है। वह रूपाकृति वाली वासन्ती प्रेम, आनन्द और गुणों का द्वार है। इसीलिए मुझे रूप और रंग, रेखाओं का संसार अर्थात् रूपाकार आकर्षित करता है। मैं जानता हूँ कि यही जीवन का सच्चा सौन्दर्य है। मेरे प्राण ! रूप का भी अपना एक सत्य होता है, जिसे रूप को स्वीकार कर, उसे पहचानकर ही पाया जा सकता है। वह सत्य-रूप का सूक्ष्म-विश्लेषण कर, उसकी आन्तरिकता की खोजकर नहीं पाया जा सकता। मैंने वह रूप का सत्य पा लिया है, इसलिए मुझे रूप ही प्रिय है—रूपाकार विहीन सौन्दर्य की वायव्य कल्पना नहीं।

विशेष—(१) कवि का सौन्दर्य-बोध वस्तुओं की रूपाकृति-रंग तक ही सीमित रहा है। दूसरे शब्दों में, उसे माँसल-सौन्दर्य अथवा सौन्दर्य का स्थूल रूप ही प्रिय है। सौन्दर्य केवल वाह्य आकार-प्रकार में ही नहीं होता, आन्तरिक सौन्दर्य का संसार एक अलग संसार होता है। सौन्दर्य को समग्र रूप से अनुभूत करने के लिए आवश्यक है सौन्दर्य के उस मूल भाव को पकड़ने की जो वस्तु के वाहर और भीतर निहित है। आवश्यकता है उसके Total Impact को महसूस करने की ; अन्यथा सौन्दर्य-वोध अपरिपक्व ही रह जाता है। यही पंत के साथ रूप-सत्य में हुआ है। निस्सन्देह रूप भी सत्य है, किन्तु, वस्तु की आन्तरिकता (Thing in itself) भी सत्य है, जिसे कवि ने अनुभव नहीं किया। यही कवि की सीमा भी वन गया है।

(२) पंत की ही अन्य कविता 'युग उपकरण' में अन्त.सौन्दर्य की परिभाषा से इस स्वर का विरोध प्रतीत होता है।

(३) अलंकार—'राशि राशि' में वीप्सा अलंकार है।

—o—

पलाश के प्रति

कविता परिचय—'पलाश के प्रति' रचना में कवि ने पलाश को सम्बोधित कर कहा है कि नवजीवन का प्रेरक है—

नवजीवन का रुधिर शिराओं में कर वहन, पलाश,
तृण, तरु जग से मानव जग में तुमने भरा प्रकाश।

'पलाश के प्रति' कविता की रचना सन् १९३८ में हुई थी।

प्राप्त नहीं मानव ....उठा ज्योति अवदात।

शब्दार्थ—मर्मोज्वल=हृदय को उज्ज्वल करने वाला। पाश=बंधन। अवनि=धरती। उद्भिज=भू से उगने वाला, वनस्पति का। हरिताधंकार=हरियाली से हुआ अंधकार। अवदात=नवीन।

प्रसंग—कवि का प्रकृति-स्वर कभी-कभी मुखरित हो उठता है। किन्तु, उसका तादात्म्य मानव से रहता है। प्रस्तुत कविता में कवि पलाश को नव-जीवन का प्रेरक मानकर उसको सम्बोधन देता है। 'ओड्' शैली में लिखी हुई इस कविता में पलाश की उन्मुक्ता की गाथा गायी गयी है।

व्याख्या—कवि पलाश को सम्बोधित करता हुआ कहता है—इस मानवीय जगत् को हृदय को उज्ज्वल कर देने वाला यह उल्लास प्राप्त नहीं है, जो तुम्हारी प्रत्येक डाल पर सहज रूप मे विलास कर रहा है, तुम्हारा यह खिला हुआ रूप ही उस विलास और उल्लास का परिचायक है। तुम नवजीवन के प्रेरक हो ! इसीलिए लगता है कि आज विश्व के जीर्ण-शीर्ण बंधन प्रलय की ज्वाला में जल गये है—उसमे युगानुरूप परिवर्तन के लक्षण गोचर होने लगे हैं। आज जीवन की उमगे चंचल हो, उछल-उछल कर आकाश छू लेना चाहती है। आज सम्पूर्ण पृथ्वी की आकाक्षाएँ पूर्णतः उन्मुक्त है, क्योंकि तुम्हारी रक्त के समान उज्ज्वल तेजस्विता इस धरती के विकास के अनुरूप है—यह उस विकास का सही दिशा-निर्देश करती है। आज तुम्हारे खिल जाने से वनस्पति जगत् के जीवन-विकास का भी नया प्रभात हुआ है, वृक्षों की हरीतिमा से उत्पन्न अंधकार (जो पेड़ों के गहरा हरा होने पर आभासित होता है) भी आज नवीन ज्योति से प्रकाश में परिवर्तित हो गया है; कारण, पलाश का लालिमायुक्त प्रकाश चारों ओर छा गया है।

विशेष—(१) कवि जगत् में आभासित परिवर्तन को प्रेरक पलाश के फूलों को मानता है, जो लाल रंग के है। लाल रंग आशा और राग का प्रतीक है। यही आशा और राग ही विकास में सहायक होते हैं।

(२) अलंकार—(i) 'डाल डाल'—वीप्सा।
(ii) 'हिल्लोल लोल'—अनुप्रास।

नवजीवन का रुधिर..........................स्वस्थ आनन्द।

शब्दार्थ—रुधिर=रक्त। तृण=तिनका। दीप्ति=कान्ति, आभा। दृग=नेत्र। अभिराम=सुन्दर। अमंद=अक्षुण्ण।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने पलाश को नवजीवन का प्रेरक मानकर उसकी उन्मुक्तता की गाथा गायी है। कवि का कहना है—

व्याख्या—हे पलाश! तुमने लाल रंग के रूप में अपनी शिराओं में नवजीवन का रक्त प्रवाहित कर अपने वानस्पतिक-जीवन से, तिनकों और वृक्षों के संसार से मानव को एक नया प्रकाश दिया है, जो उसके विकास के लिए उपयोगी है। तुम्हारी यह शोभा, यह शक्ति, यौवन की यह उद्दाम कान्ति, तेज मन में एक ओज भर देती है और तुम्हारा यह रूप नेत्रों को प्रिय लगता है, सौदर्यशाली लगता है। मेरी यही इच्छा है कि तुम्हारे इस जीवन की आकाँक्षाओं, इच्छाओं को व्यक्त करने वाले स्थिर-सौन्दर्य का उपभोग मानव मुक्त होकर आनन्द के साथ कर सके। तभी उसके जीवन की आकाक्षाएं पूर्ण होंगी, उसके जीवन का विकास पूर्ण होगा।

विशेष—(१) मानव को उन्नति करने के लिए पुरातन के बंधन को तोड़ना पड़ता है, इसी भाव की अभिव्यक्ति इस कविता से होती है। साथ ही सुप्त सभ्यता-संस्कृति को पुनरुज्जीवित करने के लिए नवीन जीवन-रक्त के संचरण की भी आवश्यकता होती है। रक्त के रंग का खिला पलाश का फूल यही संदेश देता है।

(२) अलंकार—(i) 'नवजीवन...वहन'—मानवीकरण।
(ii) 'यह... यौवन की'—अनुप्रास।

—०—

वाणी

कविता परिचय—'वाणी' कविता का रचना-काल सन् १९३८ है। इस रचना में कवि वाणी-सरस्वती से विनय कर रहा है कि वह उसे जीवन की वाणी अथवा ऐसी शक्ति प्रदान करे कि वह जीवन के लिए उपयोगी रचनाओं का सृजन कर सके।

वाणी वाणी.................................मोर नाचते सुन्दर।

शब्दार्थ—भास्वर=मुखरित। उडुचर=आकाशचारी। [निःसृत=बह उठे। निर्झर=झरना। दामिनी=विजली।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि माँ सरस्वती से प्रार्थना कर रहा है कि उसे ऐसी वाणी प्रदान करे जिससे सम्पूर्ण परिवेश आह्लादित हो उठे।

व्याख्या—हे माँ वाणी! मुझे जीवन की ऐसी वाणी प्रदान करो, जिस वाणी से आकाशचारी उन्मुक्त आह्लाद मे ध्वनि करते हुए मौन आकाश को भी भेद देते है, जिस ध्वनि से, जिस वाणी से नीरव पर्वतों से झरने झर-झर कर वह निकलते है। हे मां! मुझे वह वाणी प्रदान करो जिससे जल-संकुल मेघ गरजते हैं, सागर उद्घोष करते हुए लहरा उठते हैं, जिसमें नित्यप्रति विजली दमकती है, मोर नाचते है। सरस्वती माँ! मेरी तुमसे यहा प्रार्थना है कि मुझे उस अलौकिक स्वर से भर दो।

विशेष—(१) कवि आकाशचारियों की, झरनों की, बादल और समुद्र की गर्जना, विजली की कड़क और मोरों के नाचते परों की सरसराहट की ध्वनि को अलौकिक ध्वनि मानता है, इसीलिए वह उसी वाणी की कल्पना करता है।

(२) अलंकार—(i) 'वाणी वाणी'—वीप्सा।
(ii) वाणी...भास्वर'—यमक।

वाणी वाणी.................................आते शैशव यौवन।

शब्दार्थ—चिरन्तन=शाश्वत, अमर। मलयानिल=सुगन्धित पवन। पुलक=प्रसन्नता। क्षुधा=भूख।

प्रसंग—कवि माँ सरस्वती की प्रार्थना में तल्लीन है। वह अपनी वाणी में अमरत्व चाहता है।

व्याख्या—माँ वाणी! मुझे पूर्ण चिरन्तन वस्तु वाणी प्रदान करो। मुझे उस वाणी का वर दो, जिससे मलयानिल शरीर को स्पर्श कर पुलकित कर जाता है, जिस मृदुल कोमल ध्वनि से कलियाँ चटखकर कुसुमों में परिवर्तित हो जाती है, इस प्रकृति का अणु-अणु आनन्द में नर्तन करते हैं। माँ मुझे वह वाणी प्रदाद करो, जिसमें भूख प्यास और काम-भाव शरीर को दीप्त करते हैं, जिसमें मानव-जीवन के शैशव का, यौवन की इच्छाएं और सुख, दुःख का

भार उठाते हुए आते हैं अर्थात् जिस प्राण-वाणी से जीवन आभायुक्त रहता है, मुझे उस वाणी का वर प्रदान करो।

विशेष—(१) मलयानिल स्पर्श की पुलक अनुभूति की गहराइयों में उतर जाने वाली अनुभूति है, इसलिए वह चिरन्तन है। पंत प्रकृति के कवि हैं, इसलिए कुसुमों का खिलना उनके हृदय को अनेकानेक अनुभूति उपहार दे जाता है। इसी भाव को कवि ने यहाँ व्यक्त किया है।

(२) **अलंकार**—(i) 'वाणी वाणी—वीप्सा।
(ii) 'वाणी···वस्तु वाणी'—यमक।
(iii) 'अणु अणु'—वीप्सा।

वाणी वाणी·· **वाणी के स्वर।**

शब्दार्थ—अविनश्वर=नष्ट न होने वाला। निखिल=सम्पूर्ण। चराचर=चर और अचर संसार। पर=इतर; दूर; परे। अक्षर=अनश्वर।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण 'वाणी' कवि का अन्तिम अंश है। कवि माँ सरस्वती की आराधना में तल्लीन है। वह अपनी वाणी में अमरत्व चाहता है। उसका कहना है :

व्याख्या—माँ वाणी! मुझे सृष्टि की न नष्ट होने वाली वाणी प्रदान करो, जो इस जगत् में अनेकानेक रचनाएँ—अनेक रंगों और गंधों में—निरन्तर करती रहती है, जो जगत् के अचर और चर संसार का अनुभूति-आधार है अर्थात् जो जगती का भावरूप है। माँ वाणी! मुझे वह वाणी प्रदान करो जो इस जग में परिव्याप्त जन्य और मरण के बंधनों से, अन्धकार और प्रकाश की सीमाओं से इतर है, जो वाणी जीवन की भी जीवन है, शाश्वत है, सुन्दर है, अनश्वर है। माँ! मुझे निखिल भुवन में व्याप्त वाणी के स्वर प्रदान करो। यही मेरी प्रार्थना है।

विशेष—(१) कवि ने वाणी को प्राण-सम माना है। उसकी दृष्टि में वही सृजन-शक्ति है, वही जीवन का तत्त्व है, वही अनश्वर है।

(२) **अलंकार**—(i) 'वाणी वाणी'—वीप्सा।
(ii) 'वाणी ··वाणी दो'—यमक।
(iii) 'घट घट'—वीप्सा।

—०—

ग्राम कवि

कविता परिचय—'ग्राम कवि' कविता का रचना-काल सन् १९४० है। यह कविता 'ग्राम्या' से ली गई है और 'ग्राम्या' में कवि ने ग्राम-जीवन और जन-जीवन को अत्यन्त निकट से देखा है। गांव की प्रकृति का अपार दान और गाँव की जनता का अपार ज्ञान उसे चकित किए है। परन्तु गाँव में भी जीवन विकास के अनेक तत्त्व छिपे हैं। वहां भी सुख-दुःख, हास-प्रमोद और मिलन-वियोग की गंगा-जमुना बह रही है। इस प्रकार 'ग्राम कवि' कविता में कवि ने 'ग्राम-कवि' के भावों को अभिव्यक्त करते हुए ग्रामीण-दशा का यथार्थ अंकन किया है।

यहाँ न पल्लव························को करना संचित।

शब्दार्थ—पल्लव-वन=पत्तों का समूह। विहग=पक्षी। रोदन=विलाप रोना।

प्रसंग—कवि भारतीय ग्रामों की दशा देखकर दुखी है। उसे न वहाँ जीवन का स्वर मिलता है, न जीवन का आदर्श रूप! उसी हृदय-विदारक दशा का वर्णन कवि प्रस्तुत कविता में करता है। उसका कहना है :

व्याख्या—इन ग्रामों के प्रांगण में न पल्लव-समूह का मन को प्रसन्न कर देने वाला मर्मर स्वर है, न पक्षियों की संगीतमय चहचहाट है, न भौंरों का गुंजन और न यहाँ जीवन का संगात है। यदि यहाँ कुछ उपलब्ध है तो अभाव ग्रस्त, अतृप्त हृदय का रोदन है, दुःख है। यहां जीवन अपने आदर्श रूप की प्रतिमा नहीं है, उस आदर्श रूप को शाब्दिक अर्थ देना व्यर्थ है—जीवन के आदर्श रूप—उन्नत, समृद्धिशाली, शिक्षित रूप—यहां देखने को भी तो नहीं मिलते। जब यहाँ जीवन का आदर्श स्वरूप ही अप्राप्य है तो फिर उसकी तथा कथित सुन्दरता का वर्णन कैसा। इस 'सुन्दरता' को शब्द-चित्रों में एकत्र करना ही व्यर्थ है।

विशेष—ग्रामों की दीन-हीन दशा से कवि इतना दुःखी है कि 'सुन्दरम्' का वह कवि सुन्दरम् को शब्द-चित्रों में भी नहीं बांधना चाहता। यह कवि की सत्य और शिव के प्रति आसक्ति में वृद्धि का प्रमाण है।

यहां धरा का································वीणा के स्वर!

शब्दार्थ—कुत्सित=विरूप, घृणास्पद। उदर=पेट। दैन्य=निर्धनता।

जघन्य = गर्हित । मनुज = मानव । अकाल = असमय । व्यथा = दुःख । विमूर्च्छित = सुप्त पड़ी हुई, अचेतन ।

प्रसंग—कवि ग्रामीणों की विगलित अवस्था का वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—इन ग्रामों की धरती का मुख कुरूप हो गया है—सदियों के शोषण ने ग्राम-श्री की श्री छीन ली है, और उसे श्री-विहीन कर कुरूप बना दिया है। यहाँ का जनजीवन विरूप हो गया है, उसकी ओर दृष्टि उठती नही—इतना क्षीण, कान्ति विहीन हो गया है ग्राम्य-मानव ! ऐसे ग्राम-जीवन में जहां निवासियों मो भरपेट भोजन न मिलता हो, शरीर को आवृत करने के लिए वस्त्र न मिलता हो, वहाँ सुन्दरता का मूल्य ही क्या ! क्षुधा-तृप्ति के बिना और शरीर ढके बिना सुन्दरतम् का गुणगान करना व्यर्थ है। जहाँ असंख्य-जन निर्धनता से जर्जर होकर पशु-समान जीवन व्यतीत कर रहे हों, मानव-शिशु कीड़ों के समान अस्तित्व के लिए रेंग रहे हों, जहां यौवन क्षुधा और अभावों के कारण असमय ही वृद्धावस्था को प्राप्त कर जाता हो, वहाँ सुन्दर का मूल्य ही क्या ? यहाँ कवि क्या गान गायेगा ? न गाँवों में न उसके लिए सत्य बचा है, न शिव के दर्शन होते है, न सुन्दर शेष है। युगीन आत्मा इन ग्रामों मे नहीं विराजती, फिर गान कैसा ? कैसी स्तुति मेरे कवि ! यहाँ तो कवि के हृदय की पीड़ा के कारण सुप्त पड़ी वीणा के स्वर काँप-कांप जाते है, वह उनमें संगीत लहरियाँ उत्पन्न नहीं कर सकता। उसकी व्यथा उसे रोक लेती हैं ।

विशेष—ग्राम-जीवन इतना दीन-हीन और विगलित है कि कवि की हृदय-वीणा के तार भी झंकृत नही हो पाते। तब वह सुन्दर का गान कैसे करे ! उसमें सत्य और शिव भी तो नहीं है ।

(२) ग्रामीण-जीवन का यथार्थ चित्रण है ।

(३) अलंकार—(i) 'यहाँ कुरूप है—मानवीकरण ।
(ii) 'कीड़ों-से'—उपमा ।
(iii) 'कंप कंप'—वीप्सा ।
(iv) 'उठते उसके उर'—अनुप्रास ।

(..............

वे आँखें

कविता परिचय—'वे आंखें' कविता का रचना-काल सन् १६४० है। 'ग्राम्या' की रचनाओं मे इसका प्रमुख स्थान है। कवि ग्राम-जीवन में बसी कटुता, अथक परिश्रम, निराशा, वेदना तथा उत्साह हीनता देखता है और उसको 'वे आंखें' में चित्रित करता चलता है। प्रस्तुत कविता में ग्राम्य-जीवन की विडम्बनाओं का अंकन युगानुरूप हुआ है।

अंधकार की..................................निर्मम विज्ञापन ।

शब्दार्थ—गुहा=गुफा। दारुण=वेदनामय, दुखदायी। नैराश्य=निराशा। पाशव=पशुता।

प्रसंग—कवि ग्राम-जीवन में बसी कटुता, अथक परिश्रम, निराशा, वेदन और उत्साहहीनता को देखता है और उसको 'वे आंखें' कविता में चित्रित करता है। प्रस्तुत अवतरण में ग्राम-आँखें कितनी नीरव और वेदनामय दीखती हैं :

व्याख्या—उन आँखों की गुफाओं के अंधकार के समान गहराई देखकर मन मे एक भय होता है कि कितनी गहराई पर जीवन के तत्त्व जाकर छिप गये हैं, वे मिलेंगे भी या नही ? उन आँखों में बसे निराशाधंकार की अनुभूति कर एक सिहरन व्याप्त हो जाती है। उन आँखों में कितनी-कितनी गहराइयों तक वेदनामय दीनता और दुःख का मूक रोदन भरा हुआ है। ऐसा लगता है कि वे खामोश आँखें अभी उस वेदना की तीव्रता से रो देंगी। अथवा वेदना के रंग में रंगी आँखे रोती हुई भी चुप हैं। आह ! वे नीरव रोदन करती आँखें मानव का मानव के प्रति अर्थात् शोषक का शोषित के प्रति अमानवीय, पाशविक अत्याचार का अपने मे सयास अथाह अंधकार—नैराश्य, विवशता और भीषण सूनापन समाय विज्ञापन कर रही है कि लो ! देख लो! वह है इस पाशविकता का परिणाम।

विशेष—(१) ग्रामीण जन-जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है।

(२) अलकार—(i) 'अंधकार की गुहा सरीखी'—उपमा।

(ii) 'अह अथाह'—अनुप्रास।

फूट रहा उनसे.................................जर्जर जन-जीवन ।

शब्दार्थ—आतंक=भय। क्षोभ=क्रोध। दुर्जेय=अविजित, जिसको जीता न जा सके।

प्रसंग—उन ग्रामीण आंखों में वह निराशा, हताशा या वेदना ही नही, वरन् वे तो समाज मे रहकर भी समाज के शोपण से भयाक्रान्त है, आतकित है, उनमें भूख और प्यास की अतृप्ति की भावना है।

व्याख्या—उन आँखों से गहरा आतक फूट-फूट पड़ रहा है, लगता है वे आँखें भयाक्रान्त हैं। उनमें क्षोभ, शोषण, संशय और भ्रम की कालिमा झाँकती लगती हैं—वह जिस शोषण का शिकार रहा है, उसने उसकी आंखों में भ्रम के जाल फैला दिये है, क्षोभ का भाव उत्पन्न कर दिया है और एक अंधकार-मय—ऐसा अंधकार जो श्मशान का अंधकार है, जीवन से दूर मृत्यु-भय का अंधकार है—स्थिति को उत्पन्न कर दिया है। उस अधकार को देखकर मन कांप उठता है। उस अंधकार में युग युग का जर्जरित, टूटा हुआ, विखरा हुआ जीवन परिलक्षित हो रहा है, दया की भूखी और दुर्जेय दृष्टि झलक रही है, जो दर्शक को एकाएक ग्रस लेती है। वह सोचने को विवश हो जाता है कि ऐसा क्यों ?

विशेष—(१) 'मरघट का तम' प्रयोग स्पष्टीकरण की उपेक्षा रखता है। अंधकार की एक स्थिति रात्रि के अंधकार की होती है, जिसके पीछे अगली प्रातः होने की आशा निहित होती है, 'फिर सुवह होगी' का भाव कार्य करता है, किंतु मरघट का अंधकार वह अंधकार नही है। जीवन से अलग एक प्रकाशमान ससार की कल्पना व्यर्थ है—यहाँ तो मृत्यु से साक्षात्कार है, जीवन होन 'शव' है, क्या वे आंखें इसी शव की आंखे है, जिनमे कोई आशा नही ? जिसका कल नहीं होगा, जो भूत से विलग हो चुका है, जिसका वर्तमान निष्पन्द है, जो अस्तित्व विहीन है ? कवि की दृष्टि मे 'वे आंखे' इसी भाव को ही अभिव्यक्त करती हैं—अभिव्यक्त नहीं वरन् सम्प्रेषण करती है।

वह स्वाधीन किसान····· ··························तृन तृन से।

शब्दार्थ—स्वाधीन=स्वतन्त्र। कगार=किनारा। वेदखल=सम्पत्ति छिन जाने पर सम्पत्ति विहीन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने किसान के भूत और वर्तमान को रूपायित किया है।

व्याख्या—उस ग्रामीण में जहाँ दैन्य-दुःख है, आतंक-भाव है, क्षोभ-शोषण विपाद, संशय, भ्रम और अंधकार है, वहाँ एक गर्व भी है, अभिमान भी है, और वह अभिमान है किसी समय स्वाधीन किसान रहने का। वह [illegible] जो सबके

लिए अन्न उपजाता है, जो सबका पेट भरता है। किन्तु, आज सम्पूर्ण संसार उसे दुःख के समुद्र में नितान्त अकेला छोडकर स्वयं किनारे के समान दूर हट गया है। उन आँखों मे उन खेतों की हरियाली की, उस विगत हरियाली की झलक अब भी विद्यमान है, परन्तु वे खेत जिनमे वह अन्न उपजाता था, अब उसके नही रहे। उसे उनसे बेदखल करके सम्पत्ति विहीन कर दिया गया है, जिन खेतों के तिनके-तिनके मे उसके जीवन की हरियाली हँसती थी।

विशेष—(१) भारत कृषि-प्रधान देश रहा है, इसके प्रमाण अब भी दृष्टिगोचर हैं। एक कृषि प्रधान देश के कृषक को अपने खेतों पर अभिमान होना स्वाभाविक भी है। जब सुख के बाद दुःख आता है तो वेदना की अनुभूति गहरी होती है। वही वेदना इन पंक्तियों मे उभर आई है :

वह स्वाधीन किसान रहा
अभिमान भरा आँखों में इसका।

(२) प्रसन्नता की अभिव्यक्ति 'हरियाली' से की गयी है।

(३) अलंकार—(i) 'कगार सदृश'—उपमा।
(ii) 'तृन तृन'—वीप्सा।

आँखों में हो······················वरधों की जोड़ी।

शब्दार्थ—वरधों=बैलों।

प्रसंग—संसार अन्नदाता किसान से उदासीन ही नहीं हो गया है, वरन् उसने उस पर महाजनी सभ्यता के रूप मे अनेक अत्याचार भी किए है। कवि का कहना है :

व्याख्या—क्या इस कृषक के दुःखो का वारापार है? उसकी आंखे सब कुछ एक क्षण मे ही कह देती है कि उनमे उसके जवान पुत्र का चित्र घूम रहा है जो भरपूर यौवन मे ही कारकुनो की लाठियो का शिकार हो गया था। वे आखे महाजन द्वारा व्याज की एक-एक कौड़ी प्राप्त करने के लिए नीलाम कर दिये गये घर-द्वार और कुर्क कर दी गयी बैलों की जोड़ी की ताजा स्मृति लिए हुए है।

विशेष—(१) महाजनी सभ्यता द्वारा शोषण का सजीव चित्र खीचने का प्रयास कवि ने किया अवश्य है—उसमे कृषक की दयनीय स्थिति का आभास मिलता भी है—किन्तु वह चित्रण कुछ स्थूल रह गया है। उसमे अनुभूति की गहराई नहीं आ पायी है।

(२) 'रह रहकर आँखो मे चुभती कुर्क की हुई बरधों की जोड़ी'—पंक्ति में चुभती' शब्द का प्रयोग सार्थक नही है। आँखों में वह वस्तु चुभती है, जिसके प्रति ईर्ष्या या द्वेष भाव हो। किसान के लिए बैल, ईर्ष्या का नही, प्रेमभाव की स्थिति को उजागर करते है।

(३) अलकार—(i) 'कोड़ी छोड़ी'—अनुप्रास।
(ii) 'रह रह'—वीप्सा।

उजरी उसके ....बाद मर गई।

शब्दार्थ · गृह्नी=गृहणी; पत्नी। स्वरग=स्वर्ग।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने किसान पर हुए अत्याचार का वर्णन किया है। उसके परिवार को भूख से तड़पा-तड़पा कर मार डाला गया। इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

व्याख्या—वह उजरी नामक गाय भी उसे गरीबी की विवशता के कारण वेच देनी पड़ी। अनुमान लगाइए उसके दुःख का, जो उसे गाय को वेचकर हुआ होगा, जो गाय दूध दुहने के लिए उसके अतिरिक्त किसी को पास भी नहीं फटकने देती थी। आह! उसकी आँखों में उसके गत सुख की लहलहाती खेती घूमती है, परन्तु अब वह खेती पूर्णतः सूख गयी है। उसकी निर्धनता की सीमा यह है कि उसकी पत्नी विना औषधि के मृत्यु को प्राप्त हो गयी है, और आवश्यक देखभाल न हो पाने के कारण उसकी दुधमुँही वेटी दो दिन में ही चल वसी। अब मृत्यु का संत्रास उसकी आँखों में व्याप्त है। (शायद यही कारण है कि उसकी आँखों में चिता की रोशनी होते हुए भी मरघट का तम है।

विशेष—(१) कवि ने प्रस्तुत अवतरण में सजीवता लाने के लिए 'स्वरग' और 'गृह्नी' जैसे देशज शब्दों का प्रयोग किया है।

(२) अलकार—(i) 'उजरी उसके'—अनुप्रास।
(ii) 'दवा दर्पन'—अनुप्रास।
(iii) 'देख रेख'—अनुप्रास।

घर में विधवा ....फटती छाती।

शब्दार्थ—घातिन=हत्यारी। जोरू=स्त्री।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने बताया है कि महाजनी सभ्यता में शोषक महाजन-वर्ग ही तो नही है, शासक वर्ग भी उसी प्रवृत्ति से ग्रसित

है। कृषक पर इस शासक-वर्ग ने भी अत्याचार किया है। कवि का कहना है:

व्याख्या—उसकी आँखों में अतीत की स्मृतियाँ हैं। घर में जवान बहू थी। यद्यपि वह उसकी दृष्टि में पति को खा जाने वाली थी। भले ही वह कारकुनों की लाठी से मारा गया, फिर भी सती (पत्नी) के प्रताप से उसकी रक्षा होनी ही चाहिए थी, किन्तु घर की लक्ष्मी थी। वह सांस्कृतिक भाव उसमें विद्यमान था। वह मर्यादा का पालन करने वाली थी। इसीलिए जब एक दिन उसकी दयनीय, असहाय अवस्था और विवशता का लाभ उठाकर अधिकार-मद में क्षेत्र के कोतवाल ने अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए उसे पकड़ मंगवाया और उसके साथ बलात्कार किया तो वह कुँए में डूबकर आत्मघातिन भी बनी। कवि स्त्री का उस समाज में स्थान दर्शाते हुए कहता है कि उसके आत्महत्या कर लेने का तो इतना दुःख नहीं, कारण, स्त्री तो पैर की जूती के बराबर है, एक न रही तो दूसरी प्राप्त हो जाती है, परन्तु जब-जब उसे जवान लड़के की स्मृति हो आती है, उसकी छाती दुःख से फटने लगती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति का चित्रण किया गया है—किस प्रकार पुरुष उसे हीन-दृष्टि से देखता है, भले ही वह स्वयं क्यों न कितनी ही हीन स्थिति में हो। 'पैर की जूती' इसी बात का परिचायक है।

(२) ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है। यथा: लछमी, विधवा।

(३) इतिवृत्तात्मक वर्णन है।

(४) 'साँप लोटना' मुहावरे का प्रयोग ठीक नहीं है। दुःख और क्षोभ की स्थिति में सांप नहीं लोटते। यह मुहावरा ईर्ष्या को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है—विशेषतः उस स्थिति में जहाँ किसी वस्तु को 'पोजेस्स' करने का भाव हो, वह वस्तु, जो किसी अन्य (विरोधी) के अधिकार में है।

पिछले सुख की…… ……………………जीवन का आकर्षण।

शब्दार्थ—स्मृति=याद। चितवन=दृष्टि; निगाह। दैन्य=गरीबी।

प्रसंग—कृषक का जीवन अतीत की सुखद और दुःखद स्थितियों का जीवन है, सुखद स्मृतियाँ जहाँ उसमें सन्तोष भर देती है, वहाँ दुःखद स्थितियाँ वेदना भी जगा देती हैं जो वर्तमान की स्थिति में द्विगुणित हो जाती हैं। यही भाव प्रस्तुत अवतरण में दर्शाया गया है।

व्याख्या—उन आँखों में जब अतीत सुख की याद आ जाती है तो वे क्षण-भर के लिए चमक उठती हैं, किन्तु वह चमक स्थायी नही। दूसरे ही क्षण वह चमक, वह दृष्टि शून्य को वेधने लगती है और उसमें एक तीखेपन का अहसास भर जाता है, जो वर्तमान की कटुता की देन है। उन तीखे क्षणों में उसकी आँखों में न मानव की चेतना होती है, न ममता या कोई और कोमल भाव; न उनमें हर्ष और शोक की अनुभूतियाँ परिलक्षित होती हैं और न अपभाव अथवा ग्लानि। उस क्षण उन भावों में—उन आँखों मे दुःख, दरिद्रता या जीवन का आकर्षण—भाव कुछ भी शेष नही रहता। वे आँखें भाव-शून्य क्षितिज में खो जाती है।

विशेष—'तीखी नोंक सदृश मे' उपमा अलंकार है।

उस अवचेतन क्षण .... की वे वातायन।

शब्दार्थ—अवचेतन=संज्ञाहीन; चेतना-शून्य। अवलोकन=दृष्टिपात। तमस=अंधकार। गुहा=गुफा। वातायन=झरोखा।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने पूर्व पद के भाव का विस्तार किया है कि वे आँखें उस क्षण क्या सोचती हैं। कवि कहता है :

व्याख्या—उस सुप्तावस्था के से क्षण में, जब वे आँखे भाव-शून्य हो उठती है, वे प्रकाश और छाया के परदों पर युगजीवन के परिवर्तन के चित्रो को देखा करती है—किस प्रकार का उसका जीवन था और अब क्या हो गया है? कैसी थी वह यात्रा जो वह कर चुका है, कौन-सा था वह रास्ता, जिस पर चलकर समस्त युग अतीत से वर्तमान के अन्तिम कगार पर आ खड़ा हुआ है। उस क्षण वे आँखें अन्धकार की अतल गुफा-सी जान पडती है। ओह! कितना भयकर दृश्य होता है वह—जिसका हर पक्ष अन्धकार से ढका हो। उन आँखों से भय लगने लगता है। वे आंखे वर्तमान वर्ग-सभ्यता रूपी मन्दिर, जो महाजनी सभ्यता ने बनाया है, के निचले तल के झरोखे है, जिनमे से झाँककर उनकी आन्तरिक स्थिति का अवलोकन किया जा सकता है, उसे पहचाना जा सकता है।

विशेष—(१) 'वर्ग सभ्यता के मन्दिर के निचले तल की वे वातायन'—पंक्ति की अभिव्यंजना-शक्ति द्रष्टव्य है। सभ्यता एक ओर उत्कर्ष को पहुंच रही है, दूसरी ओर निम्न वर्ग की दयनीय दशा है; उसके उत्थान की ओर किसी का ध्यान नहीं। उसकी ओर देखिए वस्तु-स्थिति का ज्ञान हो जायेगा।

(२) कवि इतिवृत्तात्मकता से धीरे-धीरे दार्शनिक धरातलों पर उतर रहा है।

(३) अलंकार—(i) 'गुहा-सी'—उपमा।

(ii) 'वर्ग···वातायन'—रूपक।

·········

भारत माता

कविता परिचय—'भारत माता' कविता में स्वाधीन भारत के यथार्थ जीवन का चित्रण करते हुए कवि उसके भावी रूप पर अपने विचार व्यक्त करता है। पराधीनता-जन्य दुर्बलता और कुण्ठाओं की स्मृति दिलाते हुए कवि ने भारत को पुनः उस दार्शनिक गौरव को प्राप्त करने की प्रेरणा दी है जिसके कारण विश्व में उसका सम्मान होता रहा है। यह कविता भारत माता के प्रति कवि की भावांजलि का उत्तम उदाहरण है।

भारत माता ······· ················भूपथ प्रवासिनी।

शब्दार्थ—श्यामल=कृष्ण वर्ण। शस्य=धान। शुचि=पवित्र। श्रम-जल=पसीने की बूंद। चितवन=दृष्टि। स्वर्गकला=स्वर्ग-सी सुन्दर। भूपथ=पृथ्वी के मार्ग।

प्रसग—प्रस्तुत पद्यांश कवि पंत की 'भारत माता' कविता से उद्धृत है। इसमें कवि ने भारत माता के स्वरूप और उसकी भावनाओं को चित्रित किया है।

व्याख्या—यह भारत माता ग्रामवासिनी है। भारत को ग्रामीण सभ्यता का, कृषि प्रधान देश माना जाता है। उसका वास्तविक रूप देश में फैले साढ़े सात लाख गांवों में ही मिलता है। दूर तक फैले हुए खेतों का शस्य श्यामल स्वरूप उसकी आँखों की नीलिमा के समान ही है। जिस आँचल में वहाँ का जन जीवन रहता है—शस्य श्यामला धरती माता का आँचल है, जिसकी छाया में भारतीय जन समाज अपना जीवन व्यतीत करता है। गंगा और यमुना में प्रवाहित जल उस माँ के पसीने की ही बूंदे है। त्याग, तपस्या, संयम और शील की साक्षात् मूर्ति भारत माता अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से सुख-दुःखात्मक अनुभूतियों से सर्वथा तटस्थ, निर्विकार और निर्लिप्त है। उसकी समदर्शिता को सुख अथवा दुःख स्खलित नहीं कर पाते।

भारत माता अपने भाव-स्वप्नों आदर्शों, मान्यताओं में तल्लीन होने के कारण मौन है। उसकी दृष्टि सदैव प्रभु चरणों मे लगी रहती है। उसके अधरों पर अमिट मुसकान सदैव खेलती रहती है, दुःख के क्षणो मे भी उसके चेहरे पर हसी ही रहती है। सयम, साधना और तपस्या से परिपूर्ण भारत माता का मन धरती के समान सहनशील और उदार है। भारत स्वर्ग की सम्पूर्ण कलाओं, सम्पदाओं और सुषमा का साकार स्वरूप है। जिस प्रकार कोई मार्ग भटक कर किसी अनजाने देश में पहुँच जाता है उसी प्रकार यह भारत जैसे स्वर्ग से भटक कर धरती पर आ गयी है, इसीलिए प्रवासिनी के समान सभी प्रकार की विषमताओं से निर्लिप्त जीवन व्यतीत कर रही है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने भारत माता का वर्णन ... हुए भारतीय जन जीवन और सस्कृति की सभी विशेषताएँ चित्रित कर ... है। भारत की ग्रामीण सभ्यता, कृषि प्रधान जीवन, भारतीयों का कठोर ... सांस्कृतिक जीवन के प्रति आसक्ति, आस्तिकता तथा दार्शनिक ... कारण सांसारिकता के प्रति उदासीनता आदि भावना और ... करने में कवि को पूर्णतया सफलता मिली है।

(२) अलङ्कार—(i) 'भारत माता ···· उदासिनी'—...
(ii) 'शस्य भरा · अंचल'—अनु...
(iii) 'होठों पर·····क्षण'—...
(iv) 'सयम तप · मन'—उप...

तीस कोटि························ शरदेन्दु ह...

शब्दार्थ—खर=प्रखर। प्रणत शेप=झुका ... कुंठित=अवरुद्ध। शरदेन्दु=शीतकालीन चन्द्रमा

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने भारतीय ... स्याओ का संकेत करते हुए उसके गौरवशा... होने वाले ह्रास का चित्रण किया है। कवि ...

व्याख्या—भारत माता की तीस करोड़ ... में अभावों में उलझी हुई है। पराधीनता के ... कि आज उसे जीवन की प्रा... ...यता, ...तीयों का शरीर वस्त्राभा... ...वर्णन न मिलने के कारण स... ...ट है,

जनता अज्ञान और रूढियों के अधंकार मे घिरी हुई है। रहने के लिए आज उसे निवास स्थान की सुविधा भी अप्राप्य है। जनता झाड़-फूस के घरों में ही जीवन यापन करती है। अत्याचार, शोषण और पराधीनता के कारण निराश भारत का सिर झुका हुआ है। उसका स्वाभिमान चिन्ताओं से ग्रस्त है। अपनी संतान के दुःखो से संतप्त भारत की स्थिति इस प्रकार है, जैसे घर-बार न होने के कारण किसी वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए जीवन-यापन कर रही हो।

भारत और उसकी जनता अशिक्षा, पराधीनता और शोषण के कारण विश्व मे होने वाली बहुमुखी प्रगति से सर्वथा अपरिचित है। विश्व की अनेक वैज्ञानिक, सामाजिक एव आर्थिक उपलब्धियो के कारण वहाँ का जीवन सुख-साधन सम्पन्न हो रहा है, किन्तु उनसे सम्पर्क न होने के कारण आज यहाँ की जनता पूर्णतया नवीन सभ्यता को ग्रहण नही कर सकी। अर्द्ध सभ्य होने पर भी भारतीय जन-जीवन उच्चतम सुसंस्कृत प्रवृत्तियों से परिपूर्ण है। किन्तु धार्मिक, पारिवारिक और सामाजिक अन्धविश्वासो, रूढ़ियो और रीतियों ने उसके विकास और प्रगति के प्रवाह को कुंठित किया हुआ है। शीतकालीन चन्द्रमा के समान उन्मुक्त और सात्विक हसी वाली भारत माता का जीवन इसी प्रकार का है जैसे चन्द्रमा को राहु ने ग्रस्त किया हुआ हो। ग्रहण लगने पर चन्द्रमा का आलोक कुछ निष्प्रभ हो जाता है, उसी प्रकार पराधीनता ने भारतीय जीवन के उदात्त-मूल्यों को आच्छादित किया हुआ है; उसमे जीवन के सहज आनन्द का अभाव है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने भारतीय जीवन के अभावों का यथार्थ चित्रण किया है। भूतकाल मे बौद्धिक, आध्यात्मिक, भौतिक-सम्पदाओ के कारण जिसका जीवन सभी प्रकार के आनन्द और सुख का आगार था, पराधीनता के कारण उसे राहु ग्रस्त शरदेन्दु के समान कहकर कवि ने जीवन-व्यापी विषमताओ का प्रभावी चित्रण कर दिया है।

(२) अलकार—(i) 'तीस कोटि··· ··हाँसिनी'—उल्लेख।
(ii) 'अर्ध सभ्य······संस्कृत'—विरोधाभास।
(iii) 'राहु ग्रस्त····· हासिनी'—रूपक।
(iv) 'रूढि रीतियों··· · कुण्ठित'—अनुप्रास।

सदियों का ········ ···············जीवन विकासिनी।

शब्दार्थ—खण्डहर=भग्नावशेष। निष्क्रिय=कार्य शून्य। जर्जर=टूटा-फूटा। रत=लीन। श्रीहत=शोभा रहित। उद्यत=तत्पर।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'भारत माता' से उद्धृत है। इसमें कवि ने तरह-तरह के अत्याचारों, आक्रमणों और शोषण के कारण भारतीय जीवन में उत्पन्न होने वाली दुर्बलताओं का वर्णन करते हुए आधुनिक युग में उनके योगदान का उल्लेख करते हुए कहा है—

व्याख्या – शताब्दियों तक विदेशी आक्रमणकारी-आततायी साम्राज्यवादियों द्वारा शोषण और पराधीनता के कारण भारतीय जनजीवन अस्त व्यस्त हो गया है। जिस प्रकार कोई भव्य मंदिर समय के आघात से खण्डहर हो जाता है, उसमें किसी प्रकार का आकर्षण अथवा जीवन के आमोद-प्रमोद की झलक नहीं रहती, उसी प्रकार यहाँ का जनजीवन सर्वथा निष्क्रिय हो चुका है। किसी के समक्ष जीवन का कोई लक्ष्य ही नही, जनजीवन उत्साह और आनन्द से शून्य हो चुका है। ऐसी विषमावस्था में जीवन का नव-निर्माण कैसे हो—यह प्रश्न विचारणीय है। जिसने कभी विश्व को गीता का अमर ज्ञान देकर प्रकाशित किया था, आज वही भारत अपने ज्ञान को विस्मृत करके अज्ञानी और मूढ बना हुआ है।

आज भारत स्वाधीन हो चुका है। विश्व में व्याप्त युद्धों की विभीषिका को समाप्त करने के लिए भारत ने पंचशील के सिद्धान्त को स्वीकार किया है, सह-अस्तित्व के आधार पर विश्व-शान्ति स्थापित करने का व्रत लेकर आधुनिक भारत विश्व की राजनीति में योग दे रहा है। जीवन को बहुमुखी प्रगति की प्रेरणा देने वाली भौतिक और आध्यात्मिक शक्तियों का चरमोत्कर्ष करने की दिशा दिखाने वाली, भारतमाता आज इसी चिन्ता में मग्न है कि युग-युगान्तरों से विश्व का आंगन युद्ध की विभीषिका से सहज स्वाभाविक सौन्दर्य को समाप्त कर चुका है, जहां जीवन में प्रगति करने की भावना समाप्त-प्राय हो चुकी है, वहाँ की जनता किस प्रकार प्रगति, उन्नति एवं विकास-कार्यों को करने में तत्पर होगी।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने भारत मे व्याप्त निष्क्रियता, गौरव-हीनता तथा अपने ज्ञान का विस्मरण करने की स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है। आधुनिक युग-जीवन को पचशील का सिद्धान्त भारत की अमूल्य भेंट है,

जिसके द्वारा विश्व-मानवता को सुख-समृद्धि देने का संकल्प भारत ने किया था, उसका चित्रण भी प्रेरक एवं उत्साह-वर्द्धक है।

(२) अलंकार— (i) 'सदियों का ''जनजीवन'—रूपक, अनुप्रास।
(ii) 'कैसे हो भू ''प्रकाशिनी'—वक्रोक्ति।
(iii) 'युग-युग'—पुनरुक्ति प्रकाश।

उसे चाहिए ·································रस विलासिनी।

शब्दार्थ—लौह संगठन=दृढ़ संगठन। दीपित=प्रकाशित। कलामयि=कलाओं से युक्त। रस विलासिनी=आनन्द में विहार करने वाली।

प्रसंग—'भारतमाता' कविता के प्रस्तुत अवतरण में कवि ने भारत के जीवन का अपेक्षित चित्रण किया है। भावी जीवन की आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए कवि कहता है :

व्याख्या—आज भारत को एक ऐसे सुदृढ़ संगठन की आवश्यकता है, जहां प्रत्येक व्यक्ति शरीर से सुन्दर और स्वस्थ हो ; प्रत्येक व्यक्ति का मन श्रद्धा से अनुप्राणित हो, वह विश्व-जीवन के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर हो। ऐसा होने पर भारत विकास करेगा। यह भारत जो कि लोक जीवन और संस्कृति से युक्त है, जो हर समय उस रस-रूप में ही क्रीड़ारत रहे, उस भारत को अभी पूर्ण स्वातन्त्र्य का आनन्दोपभोग करना है।

विशेष—(१) इस अवतरण में कवि ने पारिवारिक जीवन के पुनर्निर्माण का विचार व्यक्त किया है। स्वतन्त्र देश का निर्माण करने के लिए अधिकाधिक जीवन को उसमें संयोजित करना कवि आवश्यक मानता है। स्वामी विवेकानन्द ने भी अपने देश का निर्माण करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को लौह-संघटन में बांधकर उसे परमोत्कर्ष तक पहुँचाना स्वीकार किया है।

(२) अलङ्कार—सुन्दर तन · दीपित मन—रूपक।

+०+

कहारों का रुद्र नृत्य

कविता परिचय—'कहारों का रुद्र नृत्य' कविता का रचनाकाल सन् १९४० है। प्रस्तुत कविता में ग्राम-वासियों के अशिक्षित, रूढ़िग्रस्त और अंधविश्वासी दृष्टिकोण से मनाये जाने वाले त्यौहारों का वर्णन किया गया है। निम्न वर्ग के जीवन के प्रति पूर्ण सहानुभूति रखते हुए उनकी संस्कृति की झलक इसमें प्रस्तुत

की गई है। दैन्य, दुःख, अभाव एवं संघर्षों से उलझे हुए जीवन में भी जब वह अपने त्यौहारों मे मग्न होते है तो बाह्य समाज के अनेक बन्धनों को भुलाकर वह इतने तन्मय हो जाते हैं कि किसी प्रकार का दुःख वहाँ नही रहता। कवि ने यथा तथ्य वर्णन करते हुए भी उसे कहीं-कहीं भावप्रवण बना दिया है, जिससे कवि की स्वानुभूति अधिक मार्मिक हो गयी है।

रंग-रंग के चीरों ....का हिला धरातल।

शब्दार्थ—चीरों=वस्त्रों। चीरवासा=व्याघ्र। दैन्य=गरीबी। अप्रतिहित =अनवरुद्ध; निरन्तर। अभिलाषा=इच्छा। श्मश्रु=छोटी-छोटी मूंछे। छटा= सुन्दरता। आनन=चेहरा। गुरियाँ=लाल पत्थर। हुलास=प्रसन्न होकर। पुट=योग्य; प्रवीण। उच्छृंखल=उदण्ड; स्वच्छन्द। समुच्छ्वसित= निःश्वास लेता हुआ। धरातल=आधार।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने ग्रामीण कहारो के नृत्योत्सव को देखकर अपनी मानसिक प्रतिक्रिया व्यक्त की है। अभाव, निर्धनता तथा दैन्य से घिरे जीवन मे भी जीवनोल्लास की सहज अभिव्यक्ति देखकर कवि चकित नहीं होता, अपितु उसके रूप-रंग तथा भावों का सहज वर्णन करता है।

व्याख्या—नृत्योत्सव के उल्लास मे मग्न कहारों ने नाना प्रकार के रंगीन वस्त्रों से अपने को सजा रखा है। विविध रंगों में सज्जित ग्रामीण बाघ जैसे दिखाई देते है। उन्हें देखकर कवि को ऐसा अनुभव होता है जैसे दैन्य, अभाव, संघर्षों और शोषण से मृतप्राय पड़े जीवन मे भी दुखों की अवहेलना तथा जीवनासक्ति अपने उद्दाम और अनवरुद्ध रूप में साकार हो गयी हो। उनके सिर पर घटाओं के समान काली और घनी जटायें शोभा देती है और चेहरों पर पूर्ण यौवन की आभा प्रस्फुटित हो रही है। छोटी-छोटी मूँछें नवीन यौवन के उत्साह और उल्लास को प्रकट करती है। जिस समय वे अपने हाथों मे छोटी-बड़ी तुम्बियाँ लेकर और शरीर को अनेक प्रकार के चित्रों से सज्जित करके प्रसन्नता में भरकर नृत्य करते है, उस समय कहारों के पैर अटपटे होकर भी अपने कौशल को प्रकट करते है। कहारो का उच्छृंखल किन्तु जीवनासक्ति और आकांक्षाओं से परिपूर्ण नृत्य प्रत्येक जन मानस में हलचल मचा देता है। जीवन के लिए इच्छा, भावुकता, तन्मयता और संघर्षों, अभावों तथा दैन्य के प्रति उपेक्षा स्वतः साकार हो जाती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने ग्रामीणों के नृत्य का सहज और

स्वाभाविक वर्णन किया है। वेशभूषा एवं नृत्य की मस्ती अमूर्त उपमानों से अत्यधिक भावमय और सार्थक बन गयी है।

(२) अलंकार—(i) 'रग-रंग'—पुनरुक्तिप्रकाश।
(ii) 'चीरवास-से', 'अभिलापा-से'—उपमा।
(iii) 'जटाघटा · धरातल'—स्वाभावोक्ति।

फड़क रहे अवयव······················ मन के सुखकर।

शब्दार्थ—अवयव=अंग-प्रत्यंग। आवेश=उत्साह। मुद्राए=हाव-भाव। प्रखर=तीक्ष्ण। लालसा=इच्छा। उष्णदेश=नीरस प्रदेश। प्रगाढ़=गहरा। जीवनोउल्लास=जीवन का आनन्द। बर्हभार=मयूर पंखों का भार। उद्दाम=तीव्र। मनोहर=आकर्षक। शिवा=पार्वती। कटि=कमर। तरगित=लहराता हुआ। सुखकर=सुख देने वाले।

प्रसग—प्रस्तुत अवतरण मे कवि ने कहारों की नृत्य भंगिमा का दिग्दर्शन कराते हुए मानवीय भावनाओ को अभिव्यक्त किया है। नृत्य करते हुए कहारो की वेशभूषा, अंग-संचालन की सूक्ष्मदर्शी अभिव्यक्ति मे भावात्मकता का समावेश करते हुए कवि कहता है :

व्याख्या—जिस समय कहारो का नृत्य होता है तो उसकी तन्मयता एवं आवेश के कारण शरीर का प्रत्येक अंग-प्रत्यग फड़कने लगता है। शरीर की क्रिया-प्रक्रिया के साथ मुख पर विविध भावों की मुद्राये अंकित हो जाती है। नृत्य को उमग मे अंगुली-संचालन इतनी तीव्रता और विविधता से होता है जिस प्रकार मानसिक कामनाएं, वासनाये अथवा आकांक्षाएं अपनी प्रखरता में नाच उठती है। मन की प्रत्येक अभिलाषा जैसे अपने सम्पूर्ण आवेश मे साकार हो जाती है। यह नृत्य इतना मोहक तथा प्रभावी होता है कि इससे अभाव, संघर्प, दु.ख-दैन्य के कारण शुष्क अथवा निष्क्रिय जीवन मे सरसता तथा उल्लास का प्रसार हो जाता है। जिस प्रकार मरुप्रदेश मे जलधारा के प्रवाह से सरसता व्याप्त हो जाती है, उसी प्रकार कहारों का नृत्य ग्रामीण जीवन में आनन्द और उल्लास का सचार कर देता है। नर्तको के कटिप्रदेश तथा सिर पर मोर-पंखों के गुच्छे बधे रहते है, उन्हें देख कर कवि कहता है कि नर्तको के मुकुट तथा कटिबध के मोर पंख बाहर की ओर फैले हुए ऐसे प्रतीत होते है जैसे मन में अवरुद्ध कामनाएं अपने आवेश में बाहर आकर सौन्दर्य तथा आकर्पण का प्रसार करती है। हाथों में तांबे का डमरू लेकर नाचता हुआ नर्तक जब नायिका

की कमर पर हाथ रख कर नाचता है तो कवि उसे शिव के समान मानकर कहता है कि इस प्रकार नाचता हुआ नर्तक, नाचते-नाचते अचानक तानपूरा अथवा अन्य किसी वाद्य के अचानक रुक जाने पर जब रुक जाता है तो वह दृश्य प्रत्येक व्यक्ति के मन को अत्यन्त सुखद लगता है। कुछ समय के लिए अपने जीवन के अभावों तथा दुखों को भूलकर सामाजिक आनन्दमग्न हो जाता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने नृत्य की भाव-भंगिमाओं, वेश-भूषा तथा उसके प्रभाव का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। नर्तक जब अपनी भावनाओं से तादात्म्य कर लेता है तो उसके अंग संचालन का प्रभाव अत्यधिक बढ़ जाता है। शिव और शिवा के माध्यम से कवि ने नृत्य की सहज भावुकता का वर्णन किया है और 'जीवनोल्लास' के माध्यम से ग्रामीण जीवन की नीरसता में आनन्द की सरसता की सहज अभिव्यक्ति की गयी है।

(२) अलंकार—(i) 'अवयव आवेश विवश'—अनुप्रास।
(ii) जीवनोल्लास—श्लेष।
(iii) 'कामना-से', 'जीवनोल्लास-से'—उपमा।
(iv) 'जनमन···धरातल'—रूपक।

वाद्यों के उन्मत्त······················भावी चिन्तन पर।

शब्दार्थ—वाद्यों=बाजों। उन्मत्त=मस्ती से भरा; उन्माद से भरपूर। घोष=आवाज। पटल=पर्दा। अंकित=लिखा हुआ। तिग्म=तीखा। स्फीत=व्यापक; चमकीला। सत्याभास=सत्य जैसा दिखाई पड़ने वाला। अन्तर=हृदय। विस्मित=चकित।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने नृत्य के प्रभाव तथा कहारों के नृत्य से अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं का चित्रण किया है।

व्याख्या—नृत्य की गतिशीलता के साथ-साथ वाद्य-यन्त्रों का स्वर और गति भी उत्तरोत्तर तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। वाद्य-यन्त्रों की ध्वनि तथा गीतों के स्वर-कम्पन सब मिलकर मन में जीवन की इच्छाओं का प्रखर और प्रगाढ़ स्वरूप साकार कर देते हैं। कहारों के नृत्य की तन्मयता क्षण भर में कवि के हृदय-पटल-पर पड़ा हुआ आवरण हटाकर एक नये संसार के स्वरूप को उभार देता है। उस नृत्य में जन-जीवन और संस्कृति के प्रखर और व्यापक सौन्दर्य का साक्षात्कार हो जाता है। वह इतना ही सुन्दर और मोहक लगता

है जैसा स्वप्न मे देखा सौन्दर्य, जो वास्तविक न होकर भी वास्तविक दिखाई देता है। युग-युगान्तरो से जीवन के वास्तविक सत्य की खोज करने मे निरत कवि को अभी तक कुछ निश्चित रूप नही मिला था, किंतु इस नृत्य को देखकर कवि का हृदय जो सुखद भविष्य की कल्पना मे डूबता उतरता रहता था, एक नवीन जीवन-बोध पाकर मानव-जीवन के सहज सत्य और गौरव को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है। कवि का चिन्तन यह जान लेता है कि अभावो मे रहकर भी मानव की जीवनासक्ति समाप्त नही होती, बाह्य सघर्षो के अ धड़ में भी वह भाव सरिता जब उमड़ती है तो उसकी तन्मयता मे सभी कुछ विस्मृत हो जाता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण मे मानव की उत्सव-प्रियता और उसके प्रभाव का सफल चित्रण हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति, समाज अथवा जाति अपने जीवन-सघर्षो अथवा अभावो से पीडित होकर भी जब किसी उत्सव को मानती है तो उनकी सम्पूर्ण परम्परा और गौरव साकार हो जाते है। नागरिक सभ्यता में रहने वाला व्यक्ति कतिपय धारणाओं अथवा सकीर्ण भावनाओ के कारण भले ही कुछ मन चाहे सिद्धान्त बना ले किन्तु जन-मानस का साक्षात्कार होने पर उसे वास्तविक जीवन धारा का परिचय मिल जाता है।

(२) अलंकार—(i) 'युग-युग'—पुनरुक्तिप्रकाश।
(ii) 'जन इच्छा · अंकित'—रूपक।
(iii) 'सत्याभासों से पीडित'—विशेषण विपर्यय।
(iv) सम्पूर्ण अवतरण में सहोक्ति।

खिड़की से

कविता परिचय—'खिडकी से' कविता की रचना सन् १९४० में हुई थी। पत प्रकृति के प्रेमी हैं। प्रकृति का प्रत्येक सौन्दर्य उनके कवि को आनन्दित करता है। पूस की ठण्डी रात्रि मे भी वह निस्तब्ध छिटकी पूर्णिमा को आनन्द-विह्वल होकर निहारता है। 'खिडकी से' वह इसी सौन्दर्य को देखता है।

पूस: निशा ····· ·· ···············जग उज्ज्वल।

शब्दार्थ—पूस·=पूस; शरद्ऋतु का एक मास। स्तब्ध=शान्त; खामोश; नीरव। आम्र=आम। चारू=सुन्दर।

प्रसंग—पूस मास की एक रात में खुली खिड़की में खड़ा कवि बाहर छिटकी चाँदनी में प्रकृति दृश्य देख रहा है। उस समय जो विम्ब उसके मानस पर बने है, प्रस्तुत कविता मे उन्ही विम्बो का चित्रण है। कवि का कहना है :

व्याख्या—पूस का मास है। रात्रि का प्रथम प्रहर है। मै (कवि) देख रहा हूँ खिड़की से बाहर दूर क्षितिज तक फैला हुआ चाँदनी का शुभ्र, श्वेत, चमकीला आम्रवन मौन, नीरव, सोया हुआ है। क्षणभर के लिए आँखों को धोखा होता है कि यह रात्रि का समय नही, दिन निकला हुआ है। ऐसा लगता है कि पूर्णिमा ने इस पृथ्वी को झिलमिल स्वप्नों से जड़कर तिनको और वृक्षों पर चाँदी मढ़ दी है, जिससे समस्त दृश्य धवल हो उठा है। सुन्दर चन्द्रमा की किरणों से सजकर समस्त ससार, जहाँ-जहाँ तक दृष्टि जाती है, वहाँ-वहाँ तक—ऐसे चमक रहा है जैसे उज्ज्वल, चमकता हुआ संसार जल में प्रतिबिंबित हो रहा हो। -

विशेष—(१) समस्त संसार 'चारु चन्द्रिकातप में पुलकित' ऐसे 'चमक' रहा है, 'जैसे जल मे' उज्ज्वल जग 'बिंबित' हो। यहाँ प्रकारान्तर से चन्द्रिका ही जल है, चन्द्रिका और धरातल एकाकार है, जल और विम्ब एकाकार है।

(२) यहाँ कवि ने समय और स्थान का परिचय वाक्यों मे न करा कर शब्दों से करा दिया है। शब्द ही सम्पूर्ण भाव की व्यजना कर देते हैं।

(३) अलंकार—(i) 'प्रथम प्रहर', 'चारु चन्द्रिकातप'—अनुप्रास।
(ii) 'आम्रवन'—रूपक।
(iii) 'पूनो ने · जड़कर'—मानवीकरण।
(iv) 'चमक · उज्ज्वल'—उत्प्रेक्षा।

स्पष्ट दीखते .... खड़ मनोहर।

शब्दार्थ—विजड़ित=जड़े हुए। श्लथ=शिथिल; ढीली। स्फटिक=सफेद शिला; मरमरी। दिगन्त=क्षितिजीय। धूक=वृक्ष विशेप।

प्रसंग—कवि को अनेक प्रकार के फल और पौधे खिड़की से दिखाई दे रहे है। प्रस्तुत अवतरण मे उन्ही का वर्णन हुआ है। कवि का कहना है :

व्याख्या—इस खिड़की मे से कटहल, लीची, आम, गेन्दूर के वृक्ष धीरे-धीरे कपकपाते हुए स्पप्ट दिखाई देते है। इन वृक्षों के अतिरिक्त मकानों के फाटक और अहाते के खम्बे, बगियाओ के छोटे-छोटे पथ, कुएँ की आधी जगत कुटिया की ढीली लटकी हुई छाजन, अस्पताल का एक भाग, मेहराबें, दरवाजे

जो चांदनी में ताजे चूने के समान चमक रहे है, स्फटिक शिला की आभा लिए हुए है, स्पष्ट दीखते है। साथ ही टेढी-मेढी क्षितिज-रेखा के ऊपर आस-पास उगे ताड के दो वृक्ष बडे मनोहर प्रतीत होते है।

विशेष—(१) प्राकृतिक दृश्य का इतिवृत्तात्मक वर्णन है। इसमें छायावादी सौन्दर्य नही है।

(२) अलंकार—(i) 'स्फटिक सदृश', 'चूने-से'—उपमा।
(ii) 'पास-पास'—वीप्सा।

आधी खिडकी पर·· ··············· सहज मनोहर।

शब्दार्थ—स्मित=हास्य। भरणी=भरण करने वाली। लुब्ध=मोहित। कच पचिया=कृत्तिका नक्षत्र। लुब्धक = मोहित करने वाला; शिकारी।

प्रसग—प्रस्तुत अवतरण में कवि खिड़की से दीख पडने वाली प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करता हुआ कहता है:

व्याख्या—मै खिड़की से बाहर का सौन्दर्य देख रहा हूँ—खिड़की के ऊपर भाग मे हरी-भरी, शस्य-श्यामला धरा के ऊपर तारों से भरी, मानो तारों रूपी दाँतों को दिखाता हुआ अर्थात् हंसता हुआ नीलाम्बर छाया हुआ है। उन नक्षत्रों मे एक दम सामने सुन्दर कृत्तिका नक्षत्र मोती के गुच्छे के समान सुशोभित हो रहा है। वह ऐसा लगता है जैसे वह उस दृश्य-त्रिकोण का पूरक हो, जो मुझमे, पृथ्वी मे और आकाश मे वन गया है। उसके पास ही रोहिणी नक्षत्र है—जो अपने कालिमायुक्त प्रकाश में बिन्दी लगाए, जुडुओं को अपनी गोद में लिए हुए बांहे फैलाकर प्रिय से मिलने के लिए प्रतीक्षित है आतुर है। समीप ही शिकारी उसकी दृष्टि से मोहित हो गये मृग पर वाण छोड़ रहा है। यह क्रम आदिकाल से ही चला आ रहा है। वह मृगशिर सहज भाव मे अत्यन्त मनोहर लगता है।

विशेष—(१) अलंकारिक वर्णन है।

(२) दृश्य बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्ति की गयी है।

(३) चन्द्रिका मे नक्षत्रों का सौन्दर्य उतना अधिक नही लगता, जितना कृष्ण पक्ष में। पूर्णिमा में नक्षत्र की शोभा वैभवशाली भी नहीं।

(४) 'लुब्ध दृष्टि···मृग पर'—पंक्ति मे जो बिम्ब दिया गया है, वह अस्पष्ट-सा है।

(५) अलंकार—(i) 'अगणित···छायांकित'—मानवीकरण।
(ii) 'गुच्छे-सी'—उपमा।
(iii) 'कचपचिया—गुच्छे-सी'—विशेषण विपर्यय।
(iv) 'भरणी···वर'—उत्प्रेक्षा।
(v) 'पास···भर'—मानवीकरण।

उधर जड़े पुखराज·························पुल-सी निर्मित।

शब्दार्थ—पुखराज=रत्न विशेष। गुरु=वृहस्पति। हस्ता=नक्षत्र विशेष। वृश्चिक=राशि-विशेष। आर्द्रा=नक्षत्र विशेष। सस्मित=हास्य-युक्त।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि नक्षत्र-लोक का सूक्ष्म वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—खिड़की से दिखाई देता है कि एक ओर क्रमशः पुखराज और लाल के समान गुरू और मंगल नक्षत्र साथ-साथ उदित हुए हैं, जिनमें से गुरु (वृहस्पति) अवश्य ही अधिक उज्ज्वल है। साथ ही हस्ता नक्षत्र भी खिला हुआ है, इसलिए वृश्चिक दीख पायेगा, इसमें सन्देह है; कारण दोनों एक साथ उदित नही होते। और वह एक ओर शायद आर्द्रा नक्षत्र है जो बार-बार टिमटिमाता है जैसे हिमजल धीरे-धीरे हिल रहा हो। खिड़की से दिखते हुए आकाश के टुकड़े के बीचों-बीच स्वर्गगा ज्योति-फेन के समान चमक रही है। वह स्वर्गंगा जलते-बुलझेत नक्षत्रों के वाष्पों ने, कणों से आलोकित, परियों की माया सरसी के समान छाया-सौदर्य आभासित करती हुई, ऐसी जान पड़ती है जैसे नील वर्ण आकाश में रत्नों की प्रभा से निर्मित पुल का निर्माण कर दिया गया हो।

विशेष—(१) विभिन्न नक्षत्रों का वर्णन कवि के खगोल शास्त्रीय ज्ञान का परिचायक होने के साथ-साथ उनके सांस्कृतिक और मिथकीय महत्त्व का भी सूचक है। इस दृष्टि से ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है :

उधर जड़े पुखराज लाल-से गुरुओ मंगल।
साथ-साथ, जिनमें अवश्य गुरु सबसे उज्ज्वल।

भारतीय मिथकों में नक्षत्रों और देवताओं के नाम एक हैं। इन देवताओं में गुरु (वृहस्पति) का महत्त्व अधिक है। इसलिए गुरु नक्षत्र अधिक उज्ज्वल है।

(२) अलंकार—(i) 'पुखराज लाल-से,' 'हिमजल-सा' 'फेन-सी' 'सरसी-सी' 'पुल-सी'—उपमा।

(ii) 'वह शायद आर्द्रा'—सन्देह।

(iii) 'ज्वलित ··सस्मित'—मानवीकरण।

खोज रहा हूँ ······························जिससे ज्योतित।

शब्दार्थ—इंगित = संकेत। संसृति = सृष्टि।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि उस अलौकिक शक्ति के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करता हुआ कहता है :

व्याख्या—मैं अपने मन में विस्मययुक्त होकर यह खोज रहा हूँ कि उत्तर दिशा में स्थित ध्रुव-नक्षत्र की ओर चिर संकेत करते हुए, उस रहस्यमयी विश्व प्रणेता सत्ता को जानने की जिज्ञासा के प्रश्न-चिह्न लिए हुए, सप्त-ऋषि अरुंधती को साथ लिए हुये इस गगन के कौन-से भाग में उदित हुए है। सप्तऋषि मानो सृष्टि के रहस्य से अनजान, ध्रुव नक्षत्र की ओर चिर संकेत कर प्रश्न करते हैं कि क्या वही ध्रुव सत्य है जिससे यह असीम आकाश प्रकाशमान है, क्या वही ज्योति 'ईश्वर' है ? क्या वही आदि शक्ति है ?

विशेष—(१) कवि इतिवृत्तात्मक वर्णन से विचार-गम्भीरता की ओर बढ़ते-बढ़ते दार्शनिक जिज्ञासा के द्वार पर आ खड़ा हुआ है, जिसके खुल जाने पर वह रहस्य से परिचित हो जायेगा। उसकी जिज्ञासा 'प्रश्न-चिह्न-से' 'जो अनादि से नभ पर अंकित' से स्पष्ट है।

(२) अलंकार—(i) 'विस्मित से मन मे'—विशेषण विपर्यय।

(ii) 'प्रश्न चिह्न से'—उपमा।

(iii) 'उत्तर मे.. रहे हो'—मानवीकरण।

ज्योत्स्ना में ························ ····· हो उज्ज्वल।

शब्दार्थ—ज्योत्स्ना = प्रकाश। सहस्त्रदल = कमल। लावण्य = सौन्दर्य। वातायन = झरोखा; खिड़की। निखिल = समस्त।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण मे कवि पूर्णमास की रात्रि की ज्योत्स्ना को देखकर पुनः कल्पना लोक मे विचरण करने लगता है। वह कहता है :

व्याख्या—इस ज्योत्स्ना मे पृथ्वी पर खिले हुए कमल ऐसे लग रहे हैं जिस प्रकार अपलक नयनों पर सौन्दर्य-स्वप्नों का आकाश शोभित हो। कहने का तात्पर्य यह है कि इस पृथ्वी पर ज्योत्स्ना मे मानो स्वर्ग उतर आया है।

आह ! कितना सौन्दर्यमय वातावरण है आज की शारदीया में ! यह सौन्दर्य प्रत्येक दिन तो देखने को नही ही मिलता। यह तो आज छल से मन को मोह लेने वाले अप्सराओ के ससार को दिखाने के लिए खिड़की खुल गयी है, तभी ऐसा मनहर दृश्य दिखाई पड़ गया। यह अलभ्य सौन्दर्य इस ससार का वास्तविक सौन्दर्य तो नहीं है—यह तो केवल कल्पना का सौन्दर्य है, जो मानव-हृदय को अपने माया-वल से अपरिचित अतीन्द्रिय सौन्दर्य के लोक में ले जाती है। आज मेरी कल्पना मुझे उसी संसार में ले आयी है। आज मुझे ससार में कुछ असुन्दर दिखाई नही देता, कुछ कुरूप शेप नही है ; सव कुछ सुन्दर ही सुन्दर बन गया है, सब कुछ उज्ज्वल हो उठा है।

विशेष—(१) कवि दर्शन की भूमि से उतर कर फिर से अपने कल्पनामयी भाव-लोक में पहुँच गया है।

(२) अलंकार—(i) 'ज्योत्स्ना में ··नयनों पर'—विशेपण विपर्यय ।
(ii) यह प्रतिदिन · मे मोहन'—विशेपण विपर्यय।
(iii) 'सुन्दर हो सुन्दर', 'उज्ज्वल ही उज्ज्वल'—वीप्सा।
(iv) 'शोभित ज्यो लावण्य स्वप्न'—उत्प्रेक्षा ।
(v) 'जगत कल्पना से ज्यो चित्रित'—उत्प्रेक्षा।

एक शक्ति से ················· ······विमूढ़ विभाजित ।

शब्दार्थ—प्रपंच=छल-कपट। आलोक=प्रकाश। समन्वित=एकत्रित। तारालि=नछत्रलोक।

प्रसंग—सम्पूर्ण सौन्दर्य-राशि का पान करने के वाद कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सम्पूर्ण विश्व आदिकारण, अलौकिक और ईश्वरीय सत्ता में आबद्ध है। वह कहता है :

व्याख्या—इस सृष्टि के समस्त सूत्र आदिकारण ईश्वरीय सत्ता से जुड़े हुए हैं, एक ही ज्योति की किरण से समस्त जड़ और चेतन का निर्माण हुआ है। सत्य ही सबमें एक ही प्रकाश विद्यमान है; सब जड़ और चेतन, चर और अचर एक ही आलोक के बंधनों से वधे हुए, हृदय को इस जगती के आदिकारण की ओर आकर्पित करते हैं। इसीलिए कवि का विचार है कि क्षुद्र आत्मा पर सब मूलभूत रूप से एकत्र हो गए है; इस सृष्टि में तिनके और वृक्ष की रचना से लेकर नक्षत्र-लोक तक के निर्माण एक अखण्ड सत्य है—आभ्यान्तरिक रूप से रचना-रचना में अन्तर नहीं, सब एक अन्त.सूत्र से सम्पृक्त है। लेकिन

कवि को मानव की क्षुद्र प्रवृत्ति अच्छी नहीं लगती; कारण, वह इस अखण्ड सत्य को, जड़ और चेतन मे वास करती विराट् सत्ता को न पहचान कर इस समानता और समता भाव का भोक्ता नही वन पाता और अपनी पृथक सत्ता पर विचार करने लगता है, वह युग-युग से अंधकार में पड़ा हुआ है, इसलिए वह विमूढ हो गया है, अज्ञानी हो गया है, विभाजित हो गया है यहाँ तक कि वह इस वात से भी भयभीत है कि वह सत्य के प्रकाश को सह न सकेगा और वह इससे वचने के लिए सत्यान्वेषी नही वनता ।

विशेष—(१) 'एकोऽहं बहुस्याम' वाले अद्वैतवाद की स्थापना प्रस्तुत अवतरण में हुई है। कवि भाव-लोक में लौटकर भी दर्शन से सम्पृक्त हो जाता है ।

(२) यह अन्तिम अश कविता के मूलभाव से पृथक जान पड़ता है—ठीक उसी प्रकार का क्षेपक लगता है जिस प्रकार का क्षपक पत की अन्य रचना 'नौका विहार' का अन्तिम पद—'इस धारा सा···अमरत्वदान'—लगता है।

(३) अलंकार—(i) 'एक ज्योति···निर्मित'—मानवीकरण ।
(ii) 'युग-युग'—वीप्सा ।
(iii) 'तृण तरु से तारालि','विमूढ़ विभाजित'—अनुप्रास ।

संस्कृति का प्रश्न

कविता परिचय—'संस्कृति का प्रश्न' कविता की रचना सन् १९४० में हुई थी। इस कविता में कवि पंत ने मानव-संस्कृति के सम्वन्ध में अपना नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। मानवता युग-सापेक्ष दर्शन की खोज के साथ-साथ नवीन मानवता का वातावरण उपस्थित करने के लिए सांस्कृतिक-प्रयोग भी कर रही है। एक कलाकार और कवि के रूप में पंत सास्कृतिक अभ्युदय की शक्तियों को वढ़ाने के ही पक्ष मे है ।

राजनीति का प्रश्न··········· · ······ · मानवता में विकसित ।

शब्दार्थ—अर्थसाम्य=धन-सम्पदा का समान रूप से विभाजन । मंथन= मथना । इन्दु=चन्द्रमा । वृहत्=विशाल । समन्वित=मिलना; एकाकार होना । सहज=सरल ।

प्रसग—कवि मानवता की दशा देखकर दु:खी है। अनेक प्रकार के राज-नीतिक, आर्थिक प्रयोग किए जा रहे है । किन्तु, क्या वे लाभदायक है ? कवि को सन्देह है और इसीलिए वह सस्कृति के प्रश्न को लेकर आगे वढ़ता है ।

व्याख्या—कवि का विचार है कि आज विश्व के सम्मुख कोई राजनीतिक प्रश्न प्रमुख नहीं है। मानव-जीवन में परिव्याप्त दुखों को अर्थ-व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन-साम्य के आधार पर विभाजन भी दूर नही कर सकता। क्योंकि समस्या न तो राजनीतिक परिस्थितियों की विसंगति मे है और न अर्थ-व्यवस्था की जटिल व्यवस्थाओं में। प्रश्न का मूल मानव की संस्कृति में निहित है और इसीको पहचानने की आवश्यकता है। संसार के समस्त इतिहासों-विज्ञानों को मथ डालना व्यर्थ होगा; कारण प्रश्नों के उत्तर वहाँ नहीं है! न वहाँ युग-लक्ष्मी है, न जीवनामृत, न जीवन-ज्योति और न चन्द्र के समान सबको मोहित कर लेने वाला आकर्षण। आज समस्या है, तो एक विराट, एक जटिल सांस्कृतिक समस्या है, जो मुँह बायें खड़ी है। युग-युग से खण्डित मनुष्यता को आज एक होने की समस्या है, अनेक जातियो, वर्णों और धर्मों के समन्वय की समस्या है। आज मानवता को विकास पाने के लिए मध्ययुगीन नैतिक मूल्यों की समन्विति करने का प्रश्न समुपस्थित है।

विशेष—(१) कवि ने प्रस्तुत कविता में वृहद् सांस्कृतिक समस्या को उठाया है कि जब तक मानवता इस समस्या को हल नहीं कर लेती, तब तक किसी युग-प्रश्न का उत्तर खोज पाना सम्भव न होगा।

(२) कवि का दृष्टिकोण मध्ययुगीन बोध का है। मध्ययुगीन नैतिक मूल्यों को आधुनिक जीवन पर आरोपित करके कुछ परिणाम प्राप्त किये जा सकते है, इसमे सन्देह है।

(३) अलकार—(i) 'व्यर्थ···मंथन'—रूपक।

(ii) 'युग युग'—पुनरुक्तिप्रकाश।

जग जीवन के·····························होगी शनैः पराजित।

शब्दार्थ—उत्पीडन=कष्ट; दुःख। प्रवर्तित=परिवर्तित। नर्तन=नाचना। विभाजित=लिप्त करना। विगत=बीता हुआ; भूतकाल।

प्रसंग—पूर्व-पद में कवि ने कतिपय प्रश्न उठाये और समस्या का वास्तविक रूप क्या है, यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। प्रस्तुत अवतरण मे वह मानव के अन्तः परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट कर रहा है। कवि कहता है:

व्याख्या—जग-जीवन के कुछ अन्तर्मुख नियम होते है, प्रस्तुत युग के जीवन में भी कतिपय नियम है—उनका कोई आलेखन नही करता, बल्कि वे जन-जीवन में, युगीन मानव में स्वयं लक्षित होते जाते है। इन नियमों से

स्पष्ट लग रहा है कि मानव का अवचेतन मन आज परिवर्तित हो रहा है। उसकी बाह्य चेतनाओं मे, कार्य कलापो में उसका क्षोभ, क्रान्ति-भाव और दुःख प्रकट हो रहा है। एक सभ्यता रूपी फणि, जिसके दात टूट गये है, जो विगत हो गयी है—जिस सर्पिणी मे गरल-शक्ति शेष नहीं रही, वह युगनतन कर रही है। परन्तु, इस नर्तन का क्या लाभ होगा ? व्यर्थ है यह चेष्टा। परस्पर युद्ध-रत राष्ट्रों की तोपों के विस्फोट-गर्जन एक दम व्यर्थ हैं, क्योंकि ऐसे-ऐसे सैकडों विनाश भी जीवन की सहज गति को अवरुद्ध नही कर सकते। अनेक-अनेक अ धकारमय युग नवीन प्रकाश मे विस्मृत हो जायेंगे और बीत गए युगो की गुण प्रतिक्रियाएं भी धीरे-धीरे पराजित हो जायेंगी – एक नवीन सस्कृति मानवता के रूप को ग्रहण करेगी। एक नया युग उदित होगा। एकदम नया।

विशेष—(१) प्रस्तुत कविता द्वितीय महायुद्ध कालीन है जो १९३९ से १९४५ के मध्य लडा गया। उसी पृष्ठभूमि मे युद्ध की विनाशक शक्ति को लेकर लिखी गयी कविता 'संस्कृति का प्रश्न' बन गयी।

(३) अलंकार—(i) 'जग जीवन'—अनुप्रास।
(ii) 'फणि-सी'—उपमा।
(iii) 'विगत · नर्तन'—मानवीकरण।

टिप्पणी—'सस्कृति का प्रश्न' कविता की पृष्ठभूमि समझने के लिए 'आधुनिक कवि' की भूमिका का निम्न अ ंश महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा :

"आज, जबकि संसार मे इतिहास का सबसे बडा युद्ध हो रहा है, और जिसके बाद पूंजीवादी साम्राज्यवाद का—जिसका हिंस्र रूप फासिज्म है—शायद, अ त भी हो जाय, इस प्रथा के विरोधों का विवेचन करना पिष्ट पेषण के समान है। जहाँ मनुष्य स्वभाव की सीमायें, एक ओर, वर्ग-संघर्ष एवं राजनीतिक युद्धों के रूप में, मानव-जाति का रक्तपात का उग्र प्रयोग कर रही है, दूसरी ओर मनुष्य की विकास प्रिय प्रकृति समयानुकूल उपयुक्त दर्शन, साहित्य एव विचारों का प्रचार कर नवीन मानवता का वातावरण पैदा करने के लिए, साँस्कृतिक प्रयोग भी कर रही है। भले ही इस समय उसकी देन अत्यन्त स्वल्प हो और अ ंधकार ही प्रकाश की प्रवृत्तियों पर कुछ समय के लिए विजयी हो रहा हो, किन्तु एक कलाकार और स्वप्न-द्रष्टा के नाते मैं दूसरे प्रकार की सास्कृतिक अभ्युदय की शक्तियों को बढ़ाने का पक्षपाती हूँ।

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत के सम्मुख !
... ...
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित
खण्ड मनुजता को युग युग की होना है नव-निर्मित ।

विनय

कविता परिचय—सन् १९३८ में लिखी गई इस कविता में कवि का आस्तिक मानवतावादी स्वरूप प्रकट हुआ है। इसमें श्री पंत ने एक नवीन समाज के निर्माण की प्रार्थना की है। कवि ऐसा समाज देखना चाहता है जिसमें देश, जाति, धर्म और वर्ण का बन्धन न हो, जिसमें किसी प्रकार की घृणा, द्वेष और हिंसा न हो, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति सुसंस्कृत, सुशिक्षित और सहृदय हो; इस प्रकार का जीवन हो जाये जिससे विश्व मानवता धरती पर ही स्वर्ग-सुख का उपभोग कर सके। वैयक्तिकता विश्वमानवता में परिणत हो जाये, जिससे संसार युद्धों की विभाषिकाओं से निश्चित हो जाये।

'विज्ञान .. ..का अंधकार ।'

शब्दार्थ—संकल्प=निश्चय। विज्ञान-ज्ञान=भौतिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान। बहुसुलभ=प्रचुर मात्रा में व्याप्त। अनुरूप=अनुसार। जरा=सृष्टि। लघु चेतना=हीन भावना। विगत=वीते हुए।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री सुमित्रानन्दन पंत की 'विनय' कविता में से लिया गया है। इसमें कवि ने मानव जीवन के अभावों, विषमताओं तथा बन्धनों को मिटा कर उसे सर्वगुण सम्पन्न, उन्नत और स्वतन्त्र बनाने की प्रार्थना की है। कवि प्रभु से निवेदन करता है कि—

व्याख्या—वर्तमान युग में मानव को सभी प्रकार का भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान अधिकाधिक उपलब्ध हो। ज्ञानोत्कर्ष से मनुष्य जीवन का सर्वांगीण विकास हो। सभी प्रकार के नैतिक-मानदण्ड और धार्मिक विश्वासों का अनुकरण करते हुए सम्पूर्ण मानवता सयम, कर्त्तव्य तथा त्यागमय जीवन व्यतीत कर सके। ज्ञान और विश्वास से सम्पन्न मनुष्य में निश्चय की दृढ़ता आये ताकि वह जीवन लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृतसंकल्प बन जाये। केवल इच्छा ही नही अपितु उनकी पूर्ति के लिए उपयुक्त कर्म करने की शक्ति भी मनुष्य को प्राप्त हो। आज विषमताओ और कुण्ठाओं से प्रत्येक व्यक्ति का

उपचेतन मन घिरा हुआ है। अतः उसके चेतन मन मे इतनी शक्ति आ जाये कि नवयुग और नवसस्कृति की स्थापना करने में सक्षम हो जाये। कवि प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे चराचर जगत् के मूलाधार! आज मानव को उस पूर्ण शक्ति से सम्पन्न कर दो जिसे पाकर वह जीवन का सर्वागीण विकास कर सके; उसमें सभी प्रकार की हीन भावनाएँ समाप्त हो जाये। आज उसके मन, बुद्धि तथा वातावरण पर अतीत युगों के अंधविश्वास, अनास्था तथा संदेह आदि का घोर अन्धकार छाया हुआ है, वह सभी कुछ नवयुग, नवजीवन और सस्कृति के प्रकाश से समाप्त हो जाये। जिससे सम्पूर्ण विश्व का जीवन आनन्द, उत्साह और आस्था से परिपूर्ण होकर विकासोन्मुखी हो जाये।

विशेष—(१) इन पंक्तियो मे कवि ने केवल समस्याओ, अभावों आदि का उल्लेख ही नही किया अपितु मानव-जीवन के लिये उपेक्षित गुणों की याचना भी की है। चेतन और उपचेतन मन का द्वन्द्व तथा इच्छाओ के अनुरूप कर्म करने की क्षमता चित्रित करने में कवि ने एक ओर तो फ्रॉयड के स्वप्नवाद का प्रतिपादन किया है और दूसरी ओर कर्मवाद की प्रतिष्ठा की है। जीवन की पूर्णता के लिए ही कवि भौतिक-ज्ञान तथा आध्यात्मिक-ज्ञान को सर्वजन सुलभ बना देना चाहता है।

(२) अलंकार—विज्ञान-ज्ञान···धर्म—अनुप्रास।

हो शान्त·····························मानवता का घर।

शब्दार्थ—विद्वेष=द्वेषभाव। वर्ग—श्रेणी। रक्त समर=हिंसक युद्ध। प्रेत=अन्धविश्वास। संस्कृत=संस्कार युक्त। स्नेही=प्रेमी। सयुक्त=मिले हुए। निर्भर=आवारित। धरणि=धरती। भव=संसार।

प्रसंग—'विनय' कविता के इस अंश में कवि ने विश्वमानवतावाद तथा विश्वसंस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए प्रभु से अपेक्षित गुणों की याचना की है। पंत का कवि संसार की सुख-शान्ति के लिए वर्ग, वर्ण, जाति, धर्म तथा राष्ट्र आदि की सीमाओं से ऊपर उठ कर सम्पुर्ण मानवता को एकरूप में देखना चाहता है। उसी के लिए वह कहता है—

व्याख्या—आज चारों ओर जाति, धर्म, मत अथवा वर्ग भेद के कारण घृणा और द्वेष परिव्याप्त है। स्वार्थ और अहंकार के कारण ही जातियों, वर्गों तथा राष्ट्रों में रक्तिम युद्ध होते है। इन सबका मूल कारण वे अन्ध-विश्वास और रूढियाँ है, जिन्होंने मानव-मन को जकड़ रखा है। जब यह

समाप्त हो जायेंगे, मानव का मन इन बन्धनों से मुक्त हो जायेगा तभी विश्व मे शान्ति स्थापित हो सकेगी। मानवता की उन्नति में बाधक इन रूढ़ियों को समाप्त कर दो ताकि वह उन्मुक्त मन से उन्नति पथ पर चल सके। कवि चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति का मन सुसंस्कृत हो जाय; सभी परस्पर स्नेह और सौहार्द्र का व्यवहार करें, सभी का हृदय दया, माया, ममता और करुणा का आगार हो जाये, प्रत्येक व्यक्ति मन और बुद्धि के अनुसार शरीर से भी स्वस्थ और सुन्दर हो और व्यक्तिगत अथवा वर्गगत भेदों को त्यागकर सभी मिलकर विश्व-संस्कृति अथवा विश्व-मानवता का निर्माण करने के लिए प्रयत्न-शील हों। कहीं भी द्विधा, द्वेप या द्वन्द्व न रहे। प्रत्येक राष्ट्र, जाति तथा देश दूसरों से मिलकर उस महान् जीवन का निर्माण करें। जब ऐसा हो जायेगा तो निश्चय ही यह धरती किसी एक व्यक्ति वंश या वर्ग की न रह कर सम्पूर्ण जनता की धरती हो जायेगी। युद्ध, महामारी, अशिक्षा, अभाव आदि की समाप्ति होने पर यह जगत ही स्वर्ग रूप हो जायेगा। जहाँ आज मानव अभावों में पिसता है वहाँ उसे अपने ही घर का-सा आनन्द, सुख और प्यार मिल सकेगा। हे प्रभु! मानव को ऐसा वरदान दो जिससे वह विश्व मानवता का निर्माण करने की शक्ति पा सके। ऐसी शक्ति जिसके परिणाम को देख कर स्वर्ग भी धरती पर उतर आये।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने सम्पूर्ण विश्व की कल्याण कामना को अंकित किया है। यह विश्वकल्पना किसी धार्मिक अथवा राजनीतिक मतवाद पर आधृत होकर न सम्पर्ण मतवादों का समन्वित रूप है। कवि की आस्तिकता विश्व-जीवन का निर्माण करने के लिए प्रभु से प्रार्थना करती है और उसकी चिन्तनशीलता ने जगत् के यथार्थवादी रूप का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः पन्त की विश्व मानवता में तुलसी और गांधी का रामराज्य भी है और मार्क्स तथा विनोबा की अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि भी समन्वित है। इस प्रकार यह कविता प्रगतिशील काव्य और आध्यात्मिक जीवन-दर्शन का समन्वय भी कही जा सकती है।

(२) अलंकार—(i) 'राष्ट्रों से राष्ट्र··· देश आज'—अनुप्रास।
(ii) 'मानव से··· निर्माण काज'—अनुप्रास।
(iii) 'हो धरणि··· जीवन का घर'—रूपक।

———

सम्मोहन

कविता-परिचय—'सम्मोहन' कविता का रचना-काल सन् १९४६ है। कवि के यौवन-प्यार की चंचलता समाप्त हो गयी है और उसके प्यार में स्थैर्य आ गया है। अब उसका मन जगत् के रहस्यो के उद्घाटन की ओर लगा है। न जाने कौन-सी शक्ति है, जो उसे अपनी ओर आकर्षित करती है।

जादू बिछा दिया······– ························पर सुन्दर।

शब्दार्थ—सम्मोहन=जादू। स्पदित=सिहर से युक्त। द्रुम=वृक्ष। धरा=पृथ्वी।

प्रसग—कवि प्रकृति का अवलोकन करता है और उस नियामक शक्ति पर विचार करने लगा है, जो इन सबके पीछे निहित है। कोई उत्तर न पाकर वह उसी शक्ति को सम्बोधित होकर उसकी प्रशस्ति गाता है।

व्याख्या—कवि प्रकृति को देखता है, उसके सौन्दर्य की छटा निहारता है और कहता है—हे युग चालक ! तुमने इस पृथ्वी पर एक जादू-सा कर दिया है—इस संसार पर प्रातःकालीन स्वर्णमयी किरणे आलोकित कर तुमने जीवन-हरियाली सचारित कर दी है। पुष्पों का पराग उडता है, प्रकृति मे फैले अनेकानेक रगों से हृदय मे भी अनेक सूक्ष्म रग निखर उठे है और उनकी सम्मोहक छटा गहराती जा रही है। शरीर में यह स्वर्णिम रक्त प्रवाहित होकर चेतनता की लहरें उत्पन्न कर रहा है जिससे हृदय में कल्पनाये जन्म लेती है, स्वप्न उदित होने है। आज वृक्षों की मर्मर-ध्वनि संगीतमय भाषा बन गई है और हृदय का कण-कण स्पंदित हो रहा है। लहरें कमल सदृश मुखों पर आँचल डालकर प्रणयी-दृष्टि से मुस्करा रही हैं। उन कमल-मुखों के मुग्ध दृगों की प्रणय-दृष्टि से, पृथ्वी के सुन्दर मुख पर स्वर्ण-कामनाओं का नया घूघट डालकर, तुमने मानव के प्राणों में संगीत भर दिया है।

विशेष—(१) सम्पूर्ण पद में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। मानवीकरण के माध्यम से वह उसका अक्षय सम्बंध परम-चेतना से जोड़ता है। यही छायावादी-काव्य की विशेषता है। धरा सुन्दर मुख पर स्वर्णाचल डालकर प्रियमिलन को प्रतीक्षित है—'घूघट के पट खोल गोरी तोहे पिया मिलेंगे।' 'प्रसाद' की 'धरा-बधू' की भी यही स्थिति है—

सिंधु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी,
प्रलय-निशा की हलचल स्मृति में
मान किए-सी ऐंठी-सी।

—कामायनी, चिन्ता सर्ग

(२) अलंकार—(i) 'वो-वो', 'थर् थर्'—वीप्सा।
(ii) 'कण-कण',—पुनरुक्ति प्रकाश।
(iii) 'जीवित-से'—उपमा।
(iv) 'लहरें · पर सुन्दर'—मानवीकरण।
(v) लहरें उर···सर'—विशेषण विपर्यय।

निज जीवन का······························ ·····मर्त्य शोक हर।

शब्दार्थ—सघर्पण=संघर्ष; द्वन्द्व। वृष्टि=वर्षा। मर्त्य=मृत्यु को प्राप्त होने वाला। पाश=बधन।

प्रसंग—कवि इस रहस्यमयी शक्ति को देखकर चकित है। वह दुःख एवं चिन्ताएँ भी भूल जाता है।

व्याख्या—तुम्हारे (अखिल सत्ता) इस रूप को देखकर मानव का हृदय अपने जीवन का कटु संघर्ष भी भूल गया है; कारण, उसने तुम्हारा इस प्रकृति मे विराट् स्वरूप लक्षित कर जगजीवन की नवीन स्वप्नों की ज्योत्स्ना की वर्षा में स्नान कर अमरत्व प्राप्त कर लिया है अर्थात् तुम्हारी अनुभूति मे अपनी अनुभूति मिला चुका है। हे ईश्वर! तुमने अपने हृदय मे परिहास की हसी हसकर इस मानव जीवन को अपने इस किरण रूपी स्वर्ण-जाल में लिपटा लिया है, जिससे इन प्राणों में हृदय के निगूढतम स्थलों से प्रभावित होने वाली प्रीति का मानों अपनी स्वर्णिम आभा के लिए झरना झरने लगा हो। तुमने स्वर्ग सदृश इस धरा को इस किरण पाश में बांधकर स्वर्ण-चेतना के चिर सुखकर स्वप्नों को जीवन रूपी देह प्रदान कर दी है अर्थात् सुख का दान दे दिया है—तुमने उसमें नश्वर होने का दुःख हर लिया है। क्योंकि वह नव-स्वप्नों की ज्योत्स्ना वर्षा में अमर स्नान कर चुका है। फिर भय हो भी क्यों? वह मृत्यु की कालिमा को भूल चुका है।

विशेष—(१) उस ईश्वरीय सत्ता के प्रति सम्मोहन अब कवि दार्शनिक स्तरों पर व्यक्त कर रहा है। उसके स्वरूप को पहचानने की जिज्ञासा ही

चिन्तन-स्वरूप निर्धारित करती है।

(२) अध्यात्म की स्थिति जीवन-दु.खों को भुला देती है, इस ओर संकेत किया गया है।

(३) अलंकार—(i) 'जग जीवन', 'देही दे दी'—अनुप्रास।
(ii) 'जग·· कर'—रूपक।
(iii) 'मर्म·· निर्भर'—रूपक।
(iv) 'स्वर्ग···हरी—मानवीकरण।

....

हिमाद्रि

कविता परिचय—'हिमाद्रि' कविता की सृष्टि सन् १६४५ में हुई। इस काल तक आते-आते पंत का कवि जीवन के तृतीय सोपान पर पहुंच चुका था। प्रारम्भ मे प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाने वाले कवि ने भावधारा के द्वितीय सोपान पर प्रगतिवादी विचारधारा का प्रतिपादन किया था, किन्तु भौतिकवाद की स्थूल, मांसलता और आर्थिक जीवन की विषमताएँ कवि को आबद्ध न कर सकी। परिणामतः कवि पुनः प्रकृति के प्राँगण की ओर मुड गया। अब वह केवल प्रकृति सौन्दर्य का कवि नही अपितु दार्शनिक चिंतन का चित्रकार बन गया। 'हिमाद्रि' कविता में एक ओर तो उसके दिव्यातिदिव्य सौन्दर्य का मनोरम चित्रण है, और दूसरी ओर उस की विराट और महत्त्वपूर्ण अस्मिता का वर्णन किया गया है। हिमालय के रूप, सौन्दर्य और स्थैर्य में ही कवि की चिन्तनधारा मुखरित हो उठी है। इस कविता में श्री पंत जी ने अपने जीवन पर पड़ने वाले प्रकृति-प्रभावो का भी सुस्पष्ट उल्लेख किया है। कही-कहीं पौराणिक कथाओं के माध्यम से भी हिमालय के गौरव का गान किया गया है। इस कविता का अध्ययन करने से पंत जी पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होता है।

मानदण्ड भू के························· अभिलाषी जीवन।

शब्दार्थ—मानदण्ड=पहचानने का साधन। अखण्ड=जो खण्डित न हो। पुण्यधरा=पवित्र धरती। स्वर्गारोहण=स्वर्ग को जाने का मार्ग। हिमकण=बर्फ। अंचलवासी=उसी प्रदेश का निवासी। शैशव=बचपन। आशी'=आशीर्वाद। पावन=पवित्र।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री पंत जी की 'हिमाद्रि' कविता में से उद्धृत किया गया है। इसमें कवि ने हिमालय से अपनत्व का सम्बन्ध जोड़ कर उसका श्रद्धापूर्वक वर्णन किया है। हिमालय को अपना प्रेरक, साध्य तथा प्रिय मानते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—हिमालय इस पृथ्वी की महानता, व्यापकता, सहिष्णुता आदि का एकमात्र चिरन्तन मानदण्ड है। यह इस पवित्र धरती (भारतवर्ष) में स्वर्ग के समान निर्मित है। इसी पर आरोहरण करने वाले को स्वर्ग सुख की उपलब्धि होती है। कवि हिमालय को अपना प्रेमास्पद मानते हुए कहता है कि जिस प्रकार उसे चारों ओर से वर्फ ने घेरा हुआ है, उसी प्रकार कवि के जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक भाव भी हिमालय को घेरे हुए है। उस हिमालय के आंचल में जिसके प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा मण्डित प्रदेश में रहने वाले कवि को उसके शैशव में ही हिमालय ने पावन आशीर्वाद देकर उसे कवि बना दिया और तभी से स्वनिप्नल आकांक्षाओं, कल्पनाओं का इच्छुक मन हिमालय के सौन्दर्य और आकाश की व्यापकता के सुखद सौन्दर्य में खो गया है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि पर पड़ने वाले प्राकृतिक प्रभाव की अभिव्यक्ति हुई है। हिमालय के सौन्दर्य और विराट्ता के साथ कवि ने आत्मीयता का सम्बन्ध जोड़ा है। यहाँ हिमाद्रि का आलस्वन रूप में चित्रण होने पर भी उसमें भावात्मकता का अदभुत समन्वय हुआ है। इस पद्यांश से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पंतजी के काव्य नें प्रकृति सौन्दर्य उनके साहचर्यजन्य प्रेम का परिणाम है।

(२) अलङ्कार—(i) 'प्रिय हिमाद्रि···के क्षण'—अनुप्रास।
(ii) 'मानदण्ड भू···जीवन के क्षण'—रूपक।
(iii) 'मुझ अंचलवासी···जीवन'—मानवीकरण।

कब से शब्दों······ ·· · ·····················रहते थे झंकृत।

शब्दार्थ—शिखर=चोटी। शुभ्र शान्ति=सात्विक शान्ति; श्वेत वर्फ से ढँका मौन वातावरण। भूभृत=पर्वत। मण्डित=शोभित। स्खलित=फैली हुई। तड़ित=बिजली। स्तम्भित=आश्चर्यचकित। नीरवता=शान्ति।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'हिमाद्रि' कविता मे से उद्धृत किया गया है। इसमे पत जी ने हिमालय के विराट्, सात्विक और चिरन्तन सौन्दर्य का चित्रण

उल्लास=आनन्द। उरोभार=वक्षस्थल। शाश्वत=चिरन्तन। निरन्तर=लगातार।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश श्री पंत जी की 'हिमाद्रि' कविता में से लिया गया है। इसमें कवि ने हिमालय के उन्नत शिखरों के सौन्दर्य, महानता और गौरव का वर्णन करते हुए उसे महत्त्वाकांक्षा, ज्ञानालोक और सतत प्रहरी के रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या—कवि हिमालय के उत्तुंग शिखरों को, धरती की महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतिरूप मानता है, जो कि स्वर्गीय क्षितिजों से भी ऊपर उठ कर जैसे उससे भी दिव्य हो जाना चाहते हैं। महत्त्वाकांक्षी सदा ऊपर की ओर देखता है, उसका अन्तर्मन अपने विश्वास और उल्लास के कारण सदा अपने लक्ष्य में स्थित रहता है। उसी प्रकार हिमालय भी देवताओं के चिरन्तन आनन्द को आत्मसात् करके वैसे ही स्थिर हो गया है, जैसे आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेने पर मानवमन पूर्णतया एकाग्र अथवा स्थिर चित्त हो जाता है। धरती पर अवस्थित हिमालय के उच्चतम सौन्दर्य पर चेतना का आरोप करते हुए कवि कहता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि गौरववर्णी वसुधा के उन्नत वक्षस्थल पर अपना सिर रख कर स्वर्ग सो रहा हो। बर्फ से ढकी चोटियों के कारण शरीर का गौरवर्ण और उस पर व्याप्त सौन्दर्य का यह मिलन स्वाभाविक होकर भी आकर्षक बन गया है। हिमालय भारत भूमि का चिर गौरव है, जो अपनी स्थिरता, अडिगता के कारण एक जागृत प्रहरी के समान निरन्तर सीमाओं की सुरक्षा में जागृत रहता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में उच्चता को महत्त्वकांक्षा, सौन्दर्य और शान्ति को देवताओं का उल्लास तथा उसकी अडिगता के सजग प्रहरी का रूप देते हुए कवि ने हिमालय के सौन्दर्य का ही नहीं, शिवत्व और सत्यम् का भी प्रतिपादन किया है। अनादि काल से हिमालय को सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, आनन्द, विराटता आदि उदात्त गुणों का आगार माना गया है, उसी की अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है।

(२) अलंकार—उल्लेख, मानवीकरण, रूपक तथा उपमा।

रवि की किरणें························लगते सोहिम।

शब्दार्थ—आलोक=प्रकाश। निनादित=गुंजित, प्रतिध्वनित। स्वर्णांकित=सुनहलेपन से भरी हुई। इन्दु=चन्द्रमा। ज्वलित=प्रकाशित। स्फटिक=

संगमरमर। धवलिमा=सफेदी। क्षीरोदधि=क्षीर सागर। हिल्लोलित=लहराता हुआ। ज्योत्स्ना=चाँदनी।

प्रसंग—'हिमाद्रि' कविता के प्रस्तुत पद्यांश में हिमालय के प्रभातकालीन सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। सूर्य की किरणों से श्वेत शुभ्र शिखरों में विभिन्न कल्पनाएँ करते हुए कवि ने उसके चिरन्तन, मोहक सौन्दर्य को शब्दों में साकार कर दिया है।

व्याख्या—हिमालय की गगनचुम्बी चोटियाँ प्रभातकालीन सूर्य की स्वर्णिम किरणों का स्पर्श पाकर उनके प्रकाश में भर जाती हैं। उस समय सम्पूर्ण वातावरण उस प्रकाश संगीत से मुखरित हो उठता है। हिमाच्छादित पर्वत शृंग आदि-काल से इसी रूप में स्थित हैं। आज भी उन पर प्रभात और संध्या का सौन्दर्य वैसा प्रतिभासित होता है जैसा सृष्टि के आदिकाल में स्वर्णछाया से भर गया था। रात्रि को जिस समय चन्द्र-ज्योत्स्ना संसार पर छा जाती है, उस समय हिमालय के शिखर इस प्रकार दिखाई देते हैं जैसे श्वेत, धवल क्षीरसागर चन्द्रमा की वृद्धि के साथ अपनी लहरों में अधिक से अधिक उमड़ पड़ता है। ज्योत्स्नास्नात शिखर सदा अपने भाव स्वप्नों में खोये हुए मौन से रहते हैं, जिसे देखने पर लगता है जैसे यह अप्सराओं की क्रीड़ा-स्थली के समान ही मोहक और आकर्षक है।

विशेष—(१) प्रकृति के कोमल और सुकुमार कवि पंत ने प्रकृति का चित्रण जिस सूक्ष्मता, भव्यता और व्यापकता से किया है, वैसा कोई अन्य हिन्दी कवि नहीं कर सका। इन पंक्तियों में हिम शिखरों के स्वरूप और सौन्दर्य के साथ सागर और अप्सरा लोक की तुलना में कवि की इसी चित्र विधायनी प्रतिभा का साक्षात्कार होता है।

(२) अलंकार—(i) 'हिमाद्रि' पर चेतना का आरोप होने से—मानवीकरण।
(ii) 'रवि की किरणें · कर'—अनुप्रास।
(iii) 'इन्दु ज्वलित', 'आलोक निनादित'—विशेषण विपर्यय।
(iv) 'स्फटिक धवलिमा के क्षीरोदधि-से'—उपमा।

सुरंग प्रवालों..............................अनिमेषित।

शब्दार्थ—सुरंग=अच्छा रंग। प्रवाल=मूँगा। रत्नश्री=रत्नों का

सौन्दर्य। अहरह=प्रतिदिन। मर्मरित=प्रतिध्वनित। चारु=सुन्दर। सूचि=सुई। मरकत=पन्ना। तलहटियाँ=घाटियाँ। शुचि=पवित्र। दिगंत=दिशाओं की व्यापकता, आकाश। स्मिति=मुस्कान। विलोक=देखना। अनिमेषित=अपलक।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'हिमाद्रि' शीर्षक कविता से उद्धृत किया गया है। इस में कवि ने हिमालय की घाटियों के व्यापक और मोहक सौन्दर्य का चित्रण किया है। विविध प्राकृतिक उपादानों से इन पर्वतमालाओं में सौन्दर्य, संगीत, पवित्रता, एवं मुस्कान का उदात्त स्वरूप अनादिकाल से एक-सा ही चला आ रहा है। उसका वर्णन इन पंक्तियों में हुआ है। कवि कहता है—

व्याख्या—हिमालय की घाटियों में नानाविध फूलों, वनस्पतियों का राशि-राशि सौन्दर्य प्रतिदिन इस प्रकार दिखायी देता है जैसे प्रवाल अथवा मूंगे के सुन्दर रंग अपनी शोभा को प्रकट कर रहे हों। सभी फूल इस प्रकार दिखायी देते हैं जैसे मरकत मणियों में विविध रत्न जड़े हुए हों। पन्ने की आभा वाली उन घाटियों में देवदारु के नुकीले पत्रों की मर्मर ध्वनि हर समय गूँजती रहती है। वातावरण के सौन्दर्य में इससे संगीत की सरसता भर जाती है। हिमालय के शान्त और मौन मुख पर एक स्वर्गीय मुस्कान छायी रहती है। दूर-दूर तक फैली हुई हिमाच्छादित चोटियों की पवित्र और चिरशोभा से युक्त मुस्कान सृष्टि के प्रथम क्षण से ही अपने अपूर्व सौन्दर्य को देखकर मन्त्रमुग्ध-सी अनिमेष देखती रहती है। यह सौन्दर्य उसी समाधिस्थ शंकर के समान है जो सृष्टि का मूलाधार और नियामक है।

विशेष—प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रकृति के विविध उपकरणों से युक्त हिमालय के सौन्दर्य का साकार चित्रण किया है। देवदारु की सुन्दर, नुकीली पत्तियों को हिमाद्रि के रोमांच कह कर कवि ने रूपसाम्य के साथ भाव साम्य का भी समुचित प्रतिपादन किया है।

(२) अलंकार—(i) 'सुरंग प्रवालों···मर्मरित'—उपमा।
(ii) देवदारु की···रोमांचित'—मानवीकरण।
(iii) 'मौन स्वर्ग···अनिमेषित'—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा।

नीली छायायें ········· ·············· आलोक निरंजन।

शब्दार्थ—आभा=प्रकाश। दीपित=प्रकाशित। हिमकण=बर्फ के कण। स्वर्दूतों=स्वर्ग के दूतों। रोमिल=रोएँदार। वेष्टित=शोभित।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश पंत जी की 'हिमाद्रि' कविता में से लिया गया है। इसमें कवि ने हिमालय पर विविध रंगों की क्रीडा के आधार पर उसके सौन्दर्य को अंकित करते हुए उसमे चेतन जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त किया है—

व्याख्या--हिमालय के दिगंतव्यापी सौन्दर्य और उस पर क्रीडारत विभिन्न रंगों के कारण कवि हिमाद्रि को ब्रह्म के स्वरूप में कल्पित कर लेता है। बादलों के कारण अथवा छाया के कारण जब हरी-भरी घाटियों पर नीलिमा-सी छा जाती थी तो वह हिमालय के शरीर पर कोमल वस्त्रों की सिकुडन प्रतीत होती थी। जब इन्द्रधनुषी रंग आकाशमण्डल पर छा जाते तो उनके प्रकाश मे उड़ने वाले सैकड़ो हिमकण हिमाद्रि के प्रसन्न मुख की हँसी को ही प्रकट करते थे। हिमाच्छादित चोटियो की शुभ्र श्वेत मुस्कान स्वर्ग के दूतों के श्वेत पखो समान कोमल, श्वेत और आकर्षक होती थी। उन कोमल और स्निग्ध घाटियो पर जब बिजली चमकती तो वह अपने सौन्दर्य की दिव्यता से चकित हो उठती है। उस विद्युत्प्रकाश मे सम्पूर्ण वातावरण सिहर उठता और बादलो, वृक्षो, फूलों और वनस्पतियो के विविध रग हर समय हिमालय के सौन्दर्य को घेरे रहते किन्तु निर्लिप्त और निरजन ब्रह्म तत्त्व के समान हिमाद्रि उन सभी बाह्य आकर्षणों, आरोपों अथवा सुन्दरता के अन्य उपकरणो मे सदा निर्लिप्त रहता था।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र का सूक्ष्म चित्रण और अवलोकन किया है। छाया के कारण हरी-हरी पर्वतमाला की नीलिमा, पर्वत शृंगों में कपड़ों की सिकुडन, इन्द्रधनुषी छटा मे बिखरने वाले हिमकणों में हँसी की कल्पना से हिमाद्रि का चेतन व्यक्तित्व साकार उभर आया है। हिमालय पर निरजन, ब्रह्म का आरोप उसकी स्थित-प्रज्ञता के अतिरिक्त कवि के मन में स्थित हिमाद्रि के प्रति श्रद्धा और स्नेह की अभिव्यक्ति है।

(२) अलंकार—(i) 'तुमको हे आलोक निरंजन' – रूपक।
(ii) नीली छायायें · हिमकण'—मानवीकरण।
(iii) 'आभा की-सी सिकुड़न,' 'स्वदूतों के पखों-से स्मित'
—उपमा।

प्रति वत्सर··························रवती कूजित।

शब्दार्थ—प्रति-वत्सर=प्रति वर्ष। मधुऋतु=वसन्त। सद्यःस्फुट=

अभी-अभी विकसित। रंजित = शोभित। कंचुक = चोली। स्पंदित = धड़कती हुई।

प्रसंग—'हिमाद्रि' कविता के इस पद्यांश मे कवि ने वसन्त ऋतु को नायिका के रूप में चित्रित करते हुए, उसके विविध अंगो का सुन्दर वर्णन किया है। कवि को प्रेरित और प्रभावित करने वाली प्रकृति की कल्पना को शब्दो मे उतारने का यह सफल प्रयास है।

व्याख्या—हिमालय के सौन्दर्य, सुषमा मण्डित प्रदेश प्रतिवर्ष वसन्त सुन्दरी आती है। यौवन, उमंग और उल्लास से पूर्ण वसन्त-सुन्दरी का शरीर नवकुसुमित पुष्पों से सुसज्जित तथा वैसा ही कोमल और आकर्षक होता है। वह अपने कोमल शरीर को नाना प्रकार के पुष्पों से सज्जित करके अपने सौन्दर्य की रश्मियों को फैलाती है। नयी-नयी खिलती हुई कलियाँ उसकी चोली बन जाती है, जिसमें सुगन्धि से आपूर्ण हृदय का स्पन्दन चलता रहता है। वही वसन्त-सुन्दरी अपने आकर्षण और सौन्दर्य से मुझे प्रेरित करती थी, बचपन मे उसी की कोकिल कण्ठो से निःसृत गान मेरे जीवन में प्रतिध्वनित होते रहे है। मेरा शैशव उसी की छाया मे जीवन की मधुर भावनाओ को प्राप्त कर सका।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश मे वसन्त का मानवीकरण करते हुए कवि ने जिस सांगरूपक की सृष्टि की है, उससे पंत जी के प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य-प्रेम तथा भाव-प्रवण कल्पना की पूर्ण झलक मिल जाती है।

(२) अलंकार—(i) 'मेरे शैशव···रजनी कूजित'—अनुप्रास।

(ii) पूर्ण पद्यांश में—सांगरूपक और उत्प्रेक्षा।

कलरव, स्वप्नातप·····························परिवृत।

शब्दार्थ—कलरव = पक्षियों के स्वर। स्वप्नातप = स्वप्न की कोमल धूप। सुरधनु = इन्द्रधनुष। हिमस्मिति = बर्फ के समान सात्विक मुस्कान। गात्र = शरीर। प्रेषित = भेजी हुई। विजड़ित = शोभित। परिवृत = घेरना।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश पंत जी की 'हिमाद्रि' कविता का एक अंश है। इसमें कवि ने हिमालय के प्रांगण मे विहार करने वाली षड्ऋतुओं को अप्सराओ का रूप देकर हिमालय के विराट्, गौरवशाली और अडिग रूप का चित्रण किया है।

व्याख्या—कवि कहता है कि हिमालय की घाटियों में सभी ऋतुएँ अपने-

अपने समय में आकर क्रीड़ा करती हैं। पक्षियों का कलरव ही उनका मधुर संगीत होता है। हिमाद्रि शिखरों पर पड़ने वाली धूप से जो स्वप्निल वातावरण बनता है वही उन ऋतुओं के भावस्वप्नों की सृष्टि करता है। आकाशमण्डल में आच्छादित इन्द्रधनुप तथा वैसे ही बहुरंगी पुष्प उनके वस्त्र होते हैं। शुभ्र आकाश में अपनी ज्योत्स्ना से संसार को आह्लादित करने वाला चन्द्रमा उनका मुख होता है। हिमशृंगों की धवलिमा ही उनकी मुस्कान होती है और पुष्पों, कलियो तथा वनस्पतियों की सौरभ रूपी श्वास लेकर ये ऋतुएँ निरन्तर हिमालय की परिक्रमा करती रहती है। जैसे कि देवराज इन्द्र के द्वारा भेजी गयी 'अप्सराएँ' भगवान् शिव की समाधि भग करने के लिए नृत्यरत हों। शरदकालीन चाँदनी जब हिमशिखरों पर व्याप्त हो जाती है उस समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई जीवन के उदात्त स्वप्नों में खो गया हो। स्वप्नों की इस माया में वर्फ के घन इधर-उधर उड़ते है जैसे श्वेत परियों का कोमल आँचल सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने में घेर रहा हो। यह सब होने पर भी हिमालय की तन्मयता में कोई अन्तर नही आता।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में ऋतुओं का मानवीकरण करते हुए प्रत्येक ऋतु की विशेषता को नारी जीवन अथवा शरीर के किसी अग का रूप दिया गया है। भारतीय इतिहास में ऐसी अनेक कथाओं का उल्लेख है जहाँ अप्सराएँ किसी ऋषि की तपस्या भग करने के लिए अपने सौन्दर्य और सगीत का चरम रूप प्रदर्शित करती है। उन्ही कथाओं को अपनी काव्य प्रतिभा में रंग कर पंत जी ने अधिक आकर्षक बना दिया है।

(२) अलङ्कार—(i) 'कलरव, स्वप्नातप ··प्रेषित'--सांगरूपक।
(ii) 'शशि मुख···श्वसित'—अनुप्रास।
(iii) 'शरदचन्द्रिका···परिवृत्त'—उत्प्रेक्षा।

रंग रंग·································· आ जाती [illegible]त।

शब्दार्थ--चित्रित=चित्र के समान। तरगित=लहराते हुए। भृंगों=भ्रमरों। मुखरित=गुंजित। ऊष्मा=गर्मी। सूर्यातप=धूप। मूर्तित=साकार। सुर बालाये=अप्सराएँ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्याँश पंत जी की 'हिमाद्रि' शीर्षक कविता में से उद्धृत किया गया है। इसमें कवि ने हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य और उसमे क्रीड़ा

करने वाले पक्षियों की संगीतात्मक ध्वनियों का प्रभाव चित्रित किया है। कवि कहता है कि—

व्याख्या—हिमालय के उन्मुक्त और निरभ्र आकाश में तरह-तरह के चित्र-विचित्र पक्षी अपने मधुर गीत गाते हुए उडते रहते है। उस पर खिले हुए पुष्पों का सौरभ-पान करके उन्मत्त नीले और पीले भ्रमरो की गुंजार सदा उस वातावरण को मुखरित करता रहता है। पक्षियों का कलरव और भ्रमरों की गुंजार से हिमालय का विजन नीरव प्रदेश संगीत की स्वर लहरियों से प्रतिध्वनित रहता है। हिमाच्छादित पर्वतश्रृंगों पर ग्रीष्मकालीन सूर्य चमकता तो है किन्तु यहाँ उसमें उष्णता न होकर शीतलता अनुभव होती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यहाँ आकार शीतलता हिमालय के रूप मे साकार हो उठी है। वर्षा ऋतु मे जब आकाश पर इन्द्र धनुष अपने बहुरंगी स्वरूप मे प्रकट होता है तो उस पर क्रीडा करती हुई देवकन्याएँ अथवा अप्सराएं स्वर्ग से यहां अवतरित हो जाती है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में पक्षियों के सौन्दर्य और कलरव की संगीतात्मक अभिव्यक्ति के साथ इन्द्रधनुष को स्वर्ग और हिमालय के मध्य सेतु मानकर कवि ने अपनी कल्पना शक्ति की मौलिकता प्रकट की है।

(२) अलकार—(i) 'रंग-रंग के चित्रित पक्षी'—पुनरुक्ति।
(ii) 'उड़ते नभ में गीत-तरगित—अनुप्रास।
(iii) नील-पीत···मुखरित—मानवीकरण।
(iv) 'ऊष्मा का · मूर्तित'—विरोधाभास, उपमा।
(v) 'इन्द्रचाप···जाती नित'—रूपक, उत्प्रेक्षा।

जग प्रच्छाय······ ·································पर मोहन।

शब्दार्थ—प्रच्छाय=छाया देने वाली। गुहाओं=गुफाओं। वाष्पों=बादलो, भाप। विद्युत=बिजली। तत्क्षण=उसी समय। अन्तर=हृदय। श्रृंगों=शिखरों।

प्रसंग—'हिमाद्रि' शीर्षक कविता के इस पद्यांश में कवि ने हिमालय पर क्रीडा गर्जना करते हुए बादलों और बिजलियों के प्रकाश तथा प्रभाव का चित्रण किया है। प्रकृति के मधुर, मोहक रूप को देखकर कवि का मन स्वप्नों में खो जाता था ; उसी सौन्दर्य-सुषमा को साकार करते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—निरन्तर प्रकाश रहित होने के कारण हिमालय में स्थित जिन गुफाओं को संसार छाया, नीरवता अथवा शान्ति का आगार समझता है, उन्हीं में नये उमड़े हुए बादल प्रविष्ट होकर इस प्रकार गर्जना करते है जैसे हाथी चिंघाड़ रहे हों। बादलों के बीच जब कभी बिजली चमकती है तो उनकी कड़क और दमक एकदम आँखों से लिपट जाती है, विद्युत प्रकाश बरबस ही आंखों को चकाचौंध कर जाता है। और जब आकाश में नक्षत्रों का प्रकाश फैलता है तो उन संख्यातीत नक्षत्रों का सौन्दर्य मेरे भोले-भाले, बाल स्वभाव सुलभ जिज्ञासा और कौतूहल से भर जाता। ऐसे समय में तुम्हारे उत्तुंग शिखरों के सौन्दर्य के साथ मेरे मन में भी वैसे ही उदात्त भाव स्वप्न अपने सहज रूप में भर जाते थे।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में हिमाद्रि के सौन्दर्य और प्रभाव का सफल चित्रण हुआ है। पर्वत पर बादलों की गर्जना का प्रतिध्वनित होना स्वाभाविक है किन्तु कवि ने उसे हाथियों की गर्जना का रूप देकर और भी आकर्षक बना दिया है। इस पद्यांश में कवि का जन्मजात प्रकृति प्रेम भी व्यक्त होता हैं। जिसे देखकर उसकी कल्पनाएँ आकर्षक और भावों का उदात्तीकरण हो सका है।

(२) **अलंकार**—(i) 'नव वाष्पों के गज'—रूपक।
(ii) 'चचलविद्युत ··तत्क्षण'—उत्प्रेक्षा, मानवीकरण।
(iii) 'साथ सहज', 'सौन्दर्य स्वप्न'—अनुप्रास।

मेघों की छाया·················· ··················**सूत्रों में घन।**

शब्दार्थ—प्रतिक्षण=हर समय। कुसुमित=फूलों से भरा हुआ। उपलों=पत्थरों। उत्स=निर्भर। रजत=चाँदी। हिमानी=बर्फ। सूत्रों=धागों।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में पंत जी ने हिमालय और उस पर क्रीडा करते बादलों, झरनों आदि का वर्णन करते हुए उसके सौन्दर्य, सगीत और आकर्षण को चित्रित किया है।

व्याख्या—हिमाद्रि के ऊपर जब बादल उमडते है तो उनके उडने के साथ-साथ ऐसा आभास होता है जैसे पवत की घाटिया भी चल रही है। बादलो की छाया, वायु वेग के कारण प्रतिक्षण गतिशील रहती है, उसके कारण पर्वतीय घाटियों के दृश्य भी परिवर्तित होते जाते है। वह हरी-भरी घाटियाँ

और वन-प्रदेश चित्र-विचित्र पुष्पों के कारण अत्यन्त आकर्षक दिखायी देते हैं, उसके ऊपर वैसी ही बहुरंगी तितलियाँ उड़ती रहती हैं। इन सबसे हिमाद्रि का दृश्य चित्रोपम-सा हो जाता है। वहीं विविध रंगों के शिलाखण्डों पर उछलते, झरने अपने मधुर संगीत से वातावरण को मुखरित करते हैं। झरनों का जल सूर्यरश्मियों का स्पर्श पाकर अनेक रंगों में अपने सौन्दर्य को प्रकट करते हैं। ऐसे मोहक, आकर्षक और चित्रोपम वातावरण में चाँदी के समान वर्फ के बादल घिरते रहते हैं, जिससे मिल कर झरनों का संगीत इस प्रकार घनीभूत हो जाता है, जैसे किसी ने उसे रजतसूत्रों में बाँध लिया हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश पंत जी के प्रकृति निरीक्षण की अभिव्यक्ति करता है। बादलों की छाया का पर्वतीय दृश्यों से सम्बन्ध, तितलियों की बहुरंगी क्रीड़ा, झरनों के प्रवाह और संगीत और इन सबसे मिलकर वातावरण की तन्मयता का चित्रण अत्यन्त रोचक और मनोहारी हो गया है।

(२) अलंकार—(i) 'संग-संग, 'रंग-रंग'—पुनरुक्ति प्रकाश।
(ii) 'हरित घाटियाँ चलती प्रतिक्षण'—मानवीकरण।
(iii) 'झरनों के स्वर जम-से जाते'—उत्प्रेक्षा।
(iv) 'रजत हिमानी सूत्रों में बंध'—रूपक।

भीम विशाल—·············· ···················गुम्फित।

शब्दार्थ—भीम=वृहद। शिलाओं=चट्टानों। अंकित=लिखा हुआ। स्तम्भों=खम्भों। निर्झर=झरना। रभस=तेज। मुखरित=शब्दायमान। तम=अंधकार। आन्दोलित=चलाया हुआ। दरियों=खाईयों। ज्योतिरिंगणों=जुगुनुओं।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'हिमाद्रि' शीर्षक कविता में से उद्धृत किया गया है। इसमें कवि पंत ने हिमालय के विशाल, मौन वातावरण में प्रवाहित और प्रतिध्वनित होने वाले झरनों का चित्रण किया है। बहुत गहरी खाइयों के अन्धकार और उसमें जुगुनुओं के प्रकाश का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—अभी तक मेरे मन में हिमालय की उन अतिविशाल, वृहदाकार शिलाओं का गम्भीर मौन अंकित है, जिसे मैंने उससे पूर्व देखा था; जिस नीरव और शान्त वातावरण में स्थित ऊँचे-ऊँचे शृंग, हिमाच्छादित होने के कारण जल के खम्भे से दिखायी देने वाले उन शिखरों से अतितीव्र गति में

प्रवाहित होते हुए झरनों द्वारा सम्पूर्ण वातावरण को संगीत से मुखरित कर देना मन पर अमिट छाप छोड़ गया है। उन झरनों से उठने वाली झाग में उठने-गिरने वाले बुलबुलों का सौन्दर्य चिर आकर्षक है। दूर-दूर तक फैले हुए चीड वृक्षों के वन का वह अन्धकार, जहाँ पूर्ण तन्मयता व्याप्त रहती है, अभी तक मेरे श्वांसों को आन्दोलित करता रहता है। हिमालय की गहरी खाइयों, घाटियों की छाया में चमकने वाले असंख्य जुगुनुओं का प्रकाश, जो उस अन्धकार को चित्रित कर देता था, वह भी मन से नहीं विस्मृत हो सकता।

विशेष—(१) पंत जी प्रकृति के सश्लिष्ट चित्रण में विशेष स्थान रखते हैं। प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने नीरव शिलाओं में प्रवाहित होने वाले झरनों तथा गहन घाटियों के अन्धकार में जुगुनुओं के प्रकाश का सश्लिष्ट चित्रण ही किया है।

(२) अलंकार—(i) 'भीम विशाल शिलाओं का वह'—अनुप्रास।
(ii) 'फेनों के जल-स्तम्भों-से वे'—रूपक, उपमा।
(iii) 'चीड़ो के ··गुम्फित'—स्वभावोक्ति।

गाते उर में................. ....जाता ओझल।

शब्दार्थ—क्षिप्र=तेज। स्रोत=झरना। सर=तालाब। तुषार=बर्फ। निर्मल=पवित्र। अलकों=बालों। चपलाओं=बिजलियां। कुहासे=कुहरे। प्रान्तर=क्षेत्र।

प्रसंग—श्री सुमित्रानन्दन पंत ने इस पद्यांश में हिमालय की सौन्दर्य-सुषमा का वर्णन करते हुए निर्झर, सरोवर, सौरभ, समीर, बादल, बिजली और कुहरे आदि का सश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किया है। कवि कहता है कि—

व्याख्या—अब तक मेरे कान त्वरितगति से बहने वाले झरनों के मधुर गीतों से गूँज रहे हैं, जो हिमाद्रि आँचल में कभी मैंने सुने थे। अभी तक उन शीतल और शुभ्र जल से आपूर्ण सरोवरो की छवि मेरी आखों मे समायी हुई है जो बर्फ के समान श्वेत तरगों से शोभित थे। उस पर्वत-प्रदेश में हिमाच्छादित चोटियों और कुसुमित घाटियों का स्पर्श पाकर सौरभ-सयुक्त समीर का सुखद स्पर्श आज भी ऐसे आह्लादित करता है जैसे किसी की सुगन्धित केशराशि से स्पर्श पाकर मन प्रसन्नता अनुभव करता है। हिमालय में जो हरी, लाल, नीली अथवा पीली बिजलियों के प्रकाश से सम्पूर्ण वातावरण, जिस चचलता, चपलता और चटुलना से परिपूर्ण हो जाता था, आज भी वह मेरे

मन-प्राणों में समाया हुआ है। वह रूपहला कुहरा, जिससे वह वनप्रान्त ढँका रहता था, आज भी मेरे जीवन को आवृत किये हुए है। यह सौन्दर्य जब भी स्मरण करता हूँ तो साकार हो जाता है और फिर क्षण भर में ही वह सम्पूर्ण माया लोक अपनी मधुरिमा, सुषमा, शीतलता, उल्लास आदि के साथ कहीं सिमट जाता है। आंखों से ओझल हो जाता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में पंत जी ने शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध के सभी उपकरणों का समुचित प्रतिपादन किया है। पूर्वानुभूत सौन्दर्य स्मृति के क्षणों में साकार-सा दिखायी देने लगता है, किन्तु यह अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता। इस प्रकार यहाँ प्रकृति चित्रण में मानवीय भावों का आधार देने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

(२) अलंकार—(i) 'लहराते सर तुषार के निर्मल'—अनुप्रास।
(ii) 'गाते उर...करता शीतल'—मानवीकरण।
(iii) 'रजत कुहासे ...ओझल'—रूपक।

सम्भव पुरा.......................................स्मित।

शब्दार्थ—पुरा=प्राचीन काल में। द्रोणी=दो पर्वतों के मध्य की भूमि। किन्नर=देवयोनि विशेष। मिथुन=युग्म। गुहायें=गुफाएँ। उन्मद=उन्मत्त।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में पंत जी ने हिमालय के सौन्दर्य और मादकता पूर्ण वातावरण का चित्रण करने के लिए पौराणिक मान्यताओं का आधार अपनाया है। इसमें कवि स्वर्गीय वातावरण की स्मृति करते हुए कहता है कि—

व्याख्या—हो सकता है कि आज भी तुम्हारी प्राचीन तलहटियों में किन्नर-युग्मों के मधुर गान गूँज रहे हों, तुम्हारी छाया भरित गुफाओं में आज भी उन्माद और प्रेमजन्य सौरभ छाया हुआ हो। हास-विलास, राग और आनन्द से भरपूर किन्नरो की नानाविध विलास क्रीड़ायें आज भी उसी प्रकार चल रही हों। आज भी तुम्हारी घाटियों मे प्रवाहित जल और वनस्पतियाँ अपना आलोक विकीर्ण करती होंगी, जिनसे उन गहन, गम्भीर और अन्धकार से आवेष्टित घाटियो मे स्वप्नलोक का सौन्दर्य और माधुर्य व्याप्त हो जाता होगा। प्रभातकाल मे हरीतिमा पर फैले ओसकणों को मोतियों के हार बना कर आज भी किन्नरियाँ सुशोभित हो रही होंगी। तुम्हारा यह चिरन्तन सौन्दर्य अपने आकर्षण से उन सभी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है जो जीवन में उल्लास, आनन्द और भाव स्वप्नों के आकाँक्षी हों।

विशेष—(१) भारतीय पुराणों में यह स्वीकार किया गया है कि किन्नर और गन्धर्व आदि देवजातियाँ आमोद-प्रमोद और हास-विलासमय जीवन में विश्वास रखती है। उनके लीलाविलास की सर्वोत्तम स्थली हिमालय को ही माना गया है। इन पङ्क्तियों में पंत जी ने उसी को आधार मान कर हिमालय के सौन्दर्य का स्मृतिजन्य गौरव वर्णन किया है।

(२) अलंकार—(i) 'सम्भव, पुरा उच्छ्वसित'—मानवीकरण।
(ii) 'औषधियाँ जल जल······दीपित'—पुनरुक्ति, श्लेष।
(iii) 'ओसों के वन ·····स्मित'—अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक।

मदन दहन··उदित।

शब्दार्थ—मदन दहन=शंकर द्वारा कामदेव को जलाना। अनिल=वायु। पुलकित=प्रसन्न। अपर्णा=पार्वती। अवाक्=मूक। विस्मित=चकित। क्रोड़=गोद।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश में श्री सुमित्रानन्दन पत ने पौराणिक आख्यानों के आधार पर हिमाल की दिव्यता, महानता और शोभा का वर्णन किया है। हिमाद्रि में व्याप्त अमित सौन्दर्य, मोहकता, गम्भीरता आदि की स्मृति करते हुए कवि कल्पना करता है कि—

व्याख्या—ऐसा अनुभव होता है जब भगवान् शंकर ने कामदेव को भस्म किया था, तभी से हिमालय के वातावरण मे उसकी भस्म वायु मे मिश्रित होकर अभी तक व्याप्त है। इसीलिए उधर से आने वाली वायु की प्रत्येक तरंग मन-प्राण को आनन्द-विभोर कर देती है। जिसके शरीर की राख में इतना मादक प्रभाव है कि निश्चय ही उसके दिव्यातिदिव्य व्यक्तित्व का हिमालय ने दर्शन किया होगा, जिसमे वह आज तक प्रभावित है। इस हिमालय में जो अद्भुत गाम्भीर्य पावित्र्य है, वह निश्चय ही हिमवान्-पुत्री पार्वती की तपस्या का प्रभाव है, जो करते-करते उसे अपर्णा नाम मे अभिहित किया गया था। आज तक उस साधना-पूत मूर्ति का स्मरण करती हुई सम्पूर्ण वन की शोभा आश्चर्यचकित है। हिमाद्रि आँचल में प्रभात अपनी मधुरिमा, लालिमा और शालीनता को लेकर उदय होता है तो उसका सौन्दर्य वैसा ही दिखायी देता है जैसा वधू रूप में भगवती-उमा का मुख लज्जा की लालिमा

से युक्त था। जिस प्रकार हिमालय की पुत्री गिरजा का उसकी क्रोड़ मे विकास हुआ था, आज भी चन्द्रकला उसमें उदित होती है और शनैः शनैः उसका विकास होता है। इस प्रकार हिमाद्रि का सम्पूर्ण सौन्दर्य, गाम्भीर्य और आकर्षण सभी अनादिकालीन है। उसे देखकर पौराणिक मान्यताओं का साक्षात्कार-सा हो जाता है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में विभिन्न पौराणिक विश्वासों का सहज वर्णन किया गया है। कामदेव को पुरुष-सौन्दर्य का आदर्श माना गया है। यह भी विश्वास किया जाता है कि कामदेव के कुसुम-सायक सम्पूर्ण जड़चेतन में मादकता, उल्लास, कमनीयता और विलासिता का प्रसार करने मे समर्थ है। हिमालय के सौन्दर्य को कवि ने उसी से प्रभावित अथवा प्रतिरूप में प्रस्तुत किया है। सती पार्वती की कठोर तपस्या भारतीय इतिहास, साहित्य और पुराणों का प्रसिद्ध विषय है। शंकर की प्राप्ति के लिए पार्वती की तपस्या अपने पावित्र्य के लिए आज भी आदर्श मानी जाती है। हिमालय में उषा की लालिमा को उमा के लज्जाशील मुख और बढ़ते हुए चन्द्रमा को गिरजा के जीवन का प्रतिरूप मान कवि ने पौराणिक अध्ययन और प्रकृति में मानवीय भावों का सामंजस्य दिखाने मे पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

(२) अलंकार—(i) 'मदन दहन की भस्म अनिल में'—अनुप्रास।
(ii) 'अब भी उषा ··लज्जित'—उपमा।
(iii) 'बढ़ती चन्द्रकला··उदित'—उत्प्रेक्षा, रूपक।

अब भी वही ·································समाधि-स्थित।

शब्दार्थ—पुष्पशरों=फूलों के बाण। दिगत=दिशाओं के किनारे। स्मित=मुस्कान। गंधोद्दाम=सुगन्धि से भरी हुई। पाषाण=पत्थर। पल्लवित=कोमल पत्तों से भरी हुई। ऊर्ध्व=ऊँचे।

प्रसंग—'हिमाद्रि' कविता के इस पद्यांश मे पंत जी ने हिमालय के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उस पर पार्वती-शंकर के प्रभाव का आरोप किया है। सम्पूर्ण प्रकृति पर चैतन्य का आरोप करके कवि ने उसे सजीव, आकर्षक और दिव्य रूप प्रदान किया है। कवि कहता है कि—

व्याख्या—युगों पूर्व जिस प्रकार वसन्त अपनी सौन्दर्य-सुषमा, मधुरिमा मोहकता को व्याप्त करने के लिए अपने पुष्पों के बाण हिमाद्रि प्रदेश मे छोड़ा करता था, आज भी वह उसी प्रकार आकर सम्पूर्ण वातावरण को सुन्दरता और

मुस्कान से भर देता है। वसन्त आगमन के साथ ही सम्पूर्ण हिमालय नाना प्रकार के पुष्पों की सुन्दरता और सुगन्धि से भर जाता है। आज भी वह धरती वसन्तश्री से शोभित और पुष्पों की सुगन्धित से भर कर उद्दाम हो जाती है, उमंग उठती है। उस पाषाणी धरती की शिलायें पुष्पों और वनस्पतियों के विकसित होने पर पुलकित हो उठती हैं। हिमालय के आकाश में उड़ते हुए, क्रीड़ारत-पक्षी आज भी गौरी के शैशव का रोचक और प्रिय वर्णन गाते रहते हैं। कोयल की काकली और पक्षियों का कलरव पार्वती का गुणगान ही है, जो युगों से यहाँ पर मुखरित हो रहा है। जिस प्रकार हिमालय का सौन्दर्य पार्वती के पावन सौन्दर्य की स्मृति दिलाता है उसी प्रकार देवदार के ऊंचे-ऊँचे वृक्ष, उत्तुंग शिखरों पर स्थित उसी प्रकार एकाग्र, तन्मय तथा समाधि में लीन है जैसे सासारिक आकर्षणों से वीतराग देवाधिदेव महादेव अपनी समाधि में स्थित रहते है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में पत जी ने हिमालय पर चेतन व्यक्तित्व का आरोप किया है। जिस प्रकार किसी दिव्यातिदिव्य दृश्य को देखकर मनुष्य उसी मे खो जाता है, अथवा आत्म ज्ञान प्राप्त होने पर परमसत्ता के ध्यान में लीन हो जाता है, उसी प्रकार हिमालय की क्रोड़ में वसन्त ने पार्वती के सौन्दर्य को देखा, पक्षियों ने गौरी के शैशव की क्रीड़ाओं को देखा और देवदार वृक्षों ने समाधिस्थ शंकर के दर्शन किये, जिसके कारण वह स्मृति जीवन की थाती बन गयी। युग बीत गये किन्तु दिव्यता के ध्यान में समय और गति का ध्यान कहाँ रह सकता है।

(२) अलकार—(i) 'अब भी वही···पल्लवित'—मानवीकरण।
(ii) 'पाषाण शिलाएँ पुलक पल्लवित'—अनुप्रास, विशेषण विपर्यय।
(iii) 'देवदारु के·····स्थित'—उपमा, उत्प्रेक्षा।

....

द्वा सुपर्णा

कविता परिचय—'द्वा सुपर्णा' कविता का रचना-काल सन् १९४५ है। कवि ने अपनी कल्पना में दो पक्षियों को एक वृक्ष पर अनादिकाल से बैठ देखा है। एक मृत्यु का प्रतीक है और दूसरा अमर्त्य। इसीका आदर्श मानवता का,

उसकी संस्कृति का विकास सम्भव है। सत्य का बाह्य और आन्तरिक सन्तुलन आवश्यक है।

दो पक्षी है..................................अमर्त्य चिरन्तन।

शब्दार्थ—अनादिकाल=सृष्टि के प्रारम्भ से ; आदिकाल से। अशन=भोजन। सुहृदों=प्रेमियो। मर्त्य=मृत्यु को प्राप्त होने वाला। अमर्त्य=अमर। भोगेच्छा=भोगो की इच्छा। ग्रसित=जकड़े हुए ; पकड़े हुए। विचरण=घूमना। चिरन्तन=अविरल रूप से।

प्रसंग—कवि कल्पना करता है कि एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं—मर्त्य और अमर्त्य। यही मानव-जीवन का द्वन्द्वमय ससार है। इसी भाव की व्याख्या प्रस्तुत अवतरण मे की गयी है। कवि का कहना है :

व्याख्या—एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे है—मर्त्य और अमर्त्य। दोनों ही मित्र है, सदा साथ रहते है, दोनो अनादिकाल से उसी वृक्ष पर बैठे है। किन्तु, दोनों की प्रकृति भिन्न-भिन्न है। उनमे से एक प्रतिक्षण पिप्पल-फल का स्वाद ले रहा है—फल खाने के लिए ऊपर-नीचे फुदक रहा है; किन्तु, दूसरा कुछ भी नही खाता। वह चुपचाप हृदय मे कुछ सोचता-सा बैठा है। मानो कोई योगी हो, जो आत्मचिंतन मे लीन है। वे दोनो ही पक्षी दो सुहृद मित्रों के समान है। उनमे से एक भोगेच्छा से ग्रसित है (मर्त्य) और दूसरा अन्तर्लोचन में लीन है (अमर्त्य)। प्रकृति से भिन्न होते हुए भी दोनों सदा साथ-साथ रहकर लोक-लोक में विचरण करते है। कितने आश्चर्य की बात है कि दोनों पक्षी एक साथ रहते है ; किन्तु वह मर्त्य पक्षी अर्थात् मृत्यु का बोध तो इस संसार मे सबको हो जाता है, किन्तु, दूसरा जो आत्मलीन रहकर अमर्त्य है, जीवन है, सनातन है, उसको कोई नही पहचानता।

विशेष—(१) जीवन और मृत्यु को पक्षियो प्रक्षेपित कर कवि मानव को मृत्युभय से जीवन आनन्द की ओर आकर्षित करना चाहता है।

(२) अलंकार—(i) समस्त पद मे रूपक।
(ii) 'सहज सखा सयुक्त'—अनुप्रास।
(iii) 'सुहृदों-से'—उपमा।
(vi) 'लोक-लोक'—पुनरुक्ति प्रकाश।

कहीं नहीं.......................................जो, विजय।

शब्दार्थ—नीड़=घोंसला। निश्चल=शान्त। द्रष्टा=देखने वाला।

वहिर्न्तर=वाह्य और अन्तर ; वाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति । निर्मित= बनाकर । शाश्वत=निरन्तर। शोभना=शोभित । सुपर्ण=पक्षी ।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण मे कवि मर्त्य और अमर्त्य पक्षी के माध्यम से मानव-जीवन के द्वन्द्वमय संसार की व्याख्या करता है । कवि का कहना है :

व्याख्या—क्या ऐसा पक्षी कही नही है, जो विश्व-वृक्ष के नीड़ पर बैठा हुआ मर्त्य पक्षी की भाँति भोगेच्छाओ से लिप्त फल भी चखता है और अमर्त्य अन्तर्द्रष्टा की भाँति निश्चल समाधि में रहता हो ! जिसमे परम अहकार भी विद्यमान हो और दृष्टा एवं भोक्ता दोनों रूप साथ-साथ विद्यमान हों, जिसके पंख उसके अन्तर और वाहर के स्वर्णिम और रजत रंगो से रगे हुए हो ! कोई ऐसा ही पक्षी, जिसमें इन दो प्रवृत्तियों—भोग और चिरन्तन, अन्तर का स्वर्ण और वाहर की धवलता का सुन्दर सन्तुलन हो । जीवन रूपी वृक्ष का निर्माण कर मानव वन सकता है । इस धरा पर निरन्तर शोभायमान मानवीय संस्कृति की रचना कर बहिरन्तर के विकास का उमे जीवन-दर्पण बना सकता है। अरे मानव ! सुनो ! मै कहता हू कि वाहर और भीतर का सत्य एक है ; दोनों एक ही सत्य के दो पक्ष है । जीवन में विजय केवल एक ही स्थिति में प्राप्त हो सकती है, जव तुम्हारी उड़ान सफल रहे । उड़ान सफल तभी होगी जब तुम्हारे स्वर्ण-रजत पंखो मे सन्तुलन होगा ।

विशेष—(१) कवि जीवन के दोनों पक्षों भोग और योग—में सामंजस्य-संतुलन की स्थिति मे विकास की सम्भावनाओ को देखता है ।

(२) प्रस्तुत कविता मे कवि का चिंतन मुखर हुआ है । इसका विपरीत रूप हमें पत की अन्य रचना 'शिल्पी' मे प्राप्त होता है ।

(३) अलकार—(i) 'कही नही'—अनुप्रास ।
(ii) 'विश्व···नीड़'—रूपक ।
(iii) 'सग संग'—पुनरुक्ति प्रकाश ।
(vi) 'मानवीय ··दर्पण'—विशेषण विपर्यय ।

....

ज्योति भारत

कविता परिचय—श्री सुमित्रानन्दन पंत की कविता 'ज्योति-भारत' हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीय काव्य-परम्परा की एक कड़ी है। जिस समय भारतीय

जनता पराधीनता के बन्धन काटने के लिए प्रयत्नशील थी, उस समय सभी प्रमुख कवियों ने देशमाता की वन्दना, उसकी शोभा, महानता और गौरवगान के लिए अनेक कविताओं की सृष्टि की थी। 'ज्योति भारत' कविता की रचना सन् १९४५ ई० मे हुई थी। इसमे कवि ने भारत-भूमि की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक महानता, प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा, ऐतिहासिक गौरव तथा सम्प्रति युग की विषमताओं में उसके गौरवशाली स्वरूप का वर्णन किया है। यह कविता इस बात का प्रमाण है कि पंत केवल कल्पनाजीवी कवि नहीं, अपितु देश और समाज जीवन में होने वाले सभी प्रकार के कार्यव्यापारों, गति-विधियो का सूक्ष्म अध्ययन करने वाले और समय तथा परिस्थिति के अनुसार उसमें अपनी प्रतिभा एव चिन्तनधारा से योगदान देने वाले भी हैं। 'ज्योति भारत' कवि के गत्यात्मक काव्य-जीवन की परिचायक कविता है।

'ज्योति भूमि··································जहां अशेष।'

शब्दार्थ—ज्योति भूमि=ज्ञान की धरती। तेजोन्मेष=तेज, शक्ति का प्रसार। समाधिस्थ=समाधि मे मग्न। श्वेत=शुभ्र। आत्मानुभूति=आत्म-ज्ञान। ज्योतिमर्य=प्रकाशवान।

प्रसग—प्रस्तुत पद्यांश श्री पत जी की 'ज्योति भारत' कविता मे से उद्धृत किया गया है। इसमे कवि ने भारत माता की गौरव-गरिमा का गान किया है। भारत को सभ्यता, सस्कृति और मानवता की जननी और प्राकृतिक सौन्दर्य सुषमा से मण्डित धरती मानते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—हे भारत भूमि! तेरी जय हो। इसी भूमि पर सर्वप्रथम सूर्य की रश्मियों ने अपने आलोक का प्रसार किया था। यही पर सर्वप्रथम ज्ञान और विज्ञान का जन्म हुआ था। वेद, उपनिषद् और दर्शनशास्त्र का सर्वप्रथम उन्मेष इसी धरती की गोद मे हुआ था। यही वह पावन धरती है जिसमे मंत्र-दृष्टा ऋषियो के तपः पूत जीवन ने जीवन, जगत्, ब्रह्म और उनसे सम्बद्ध ज्ञान की विविध धाराओं को प्रवहमान किया था। ज्ञान और संगीत ही नहीं, मानव, परिवार और समाज-जीवन को भी इसी धरती ने जन्म दिया। विश्व की प्राचीनतम सभ्यता और संस्कृति का प्रकाश फैलाने वाली भारत-भूमि अपनी गौरव-गरिमा में अन्यतम है। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जीवनधारा के अतिरिक्त प्राकृतिक-सौन्दर्य सुषमा की दृष्टि से भी भारत-भूमि विश्व की सिरमौर है। इसी की गोद मे विश्व का सर्वोच्च मुकुटमणि हिमालय अपने व्यापक,

प्रशान्त तथा अद्वितीय रूप में स्थित है। उसकी स्थिरता और सात्विकता ने असंख्य साधकों, दार्शनिकों को परम सत्ता का आभास तथा समाधि अवस्था का साक्षात्कार करवाया था। इसका श्वेत, शान्त और आत्मचिन्तन में लीन स्वरूप वास्तव में भारतीय दार्शनिकों के अन्तःकरण और जीवन दर्शन का प्रतीक है। इसी धरती की गोद में गंगा और यमुना जैसी पावन नदियां प्रवाहित हैं। इन लोक-माताओं के पवित्र, निर्मल और सतत प्रवहमान जल से यह धरती शस्य श्यामला कहलायी, इन्ही के प्रताप से यह धरती सुख, सम्पदा और वैभव से सम्पन्न हो सकी। यहाँ का जीवन अनन्त, अखण्ड और अशेष आनन्द का आगार बन गया। ऐसी माँ, जग-माता की जय हो।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि ने अत्यन्त संक्षेप में भारत की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक गौरव-गरिमा का सफल चित्रण किया है। हिमालय भारतीय चिन्तनधारा का प्रतीक और गंगा-यमुना को जीवन-निर्वाह का आधार मानकर कवि ने जो अप्रस्तुत योजना की है, उससे विषयवस्तु अधिक प्रभावी हो गयी है। प्राकृतिक-जीवन के माध्यम से जन-जीवन की पवित्रता, सात्विकता और लोक-कल्याण की भावना का प्रतिपादन भी सार्थक हुआ है।

(२) अलंकार—(i) 'ज्योति भूमि······अशेष'—उल्लेख।
(ii) 'ज्योति भूमि जय भारत देश'—अनुप्रास।
(iii) 'समाधिस्थ · हिमालय'—मानवीकरण।

फूटे जहाँ··································जग को आदेश।

शब्दार्थ—निर्झर=झरना। पूर्ण काम=इच्छाओं को पूर्ण करने वाला। चेतन=प्राणवान। रज=मिट्टी। लोकेश=भगवान। रक्तस्नात=खून से नहायी। मूर्च्छित=संज्ञाहीना। स्वर्णिम=सुनहरी। दिव्य=अलौकिक। प्लावन=बाढ़। आदेश=आज्ञा।

प्रसंग—यह पद्यांश ज्योति भारत' कविता का अंश है। इसमें श्री पंत ने भारत के अतीत गौरव का गान करते हुए उसे वर्तमान जीवन में व्याप्त युद्ध और हिंसा की समाप्त करने वाली एक शक्ति स्वीकार किया है। भारत-भूमि को भगवान् की क्रीड़ा-भूमि मानते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—इसी भारत भूमि पर प्रकृति के शत: निर्झरों ने प्रवाहित होकर सौन्दर्य, सुषमा, कोमलता, आकर्षण और मधुरता से पृथ्वी को मण्डित कर

दिया। यहीं पर प्राकृतिक सौन्दर्य से अनुप्राणित दार्शनिकों की ज्ञान सरिताएं प्रवाहित हुई थी, जिनके ज्ञानलोक ने विश्व के कण-कण को प्लावित कर दिया था। यहीं पर ज्ञान और भक्ति योग का उदय और विकास हुआ था। ज्ञान, कर्म और उपासना की त्रिवेणी ने भारत भूमि को धर्मभूमि बना दिया। धर्म के इस उदात्त रूप को ही गीता में प्रतिष्ठित किया गया, इसी की भावना कृष्ण की वंशी का संगीत बन कर मुखरित हो उठी थी। वंशी के सरस स्वरों ने सचराचर जगत् को सम्मोहित कर लिया था। यह धरती ही नहीं, जीवन की सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करने वाली है। इसी के कण-कण में वह सम्मोहन शक्ति निहित है, वह चेतना परिव्याप्त है जिससे आकृष्ट होकर स्वयं भगवान् भी अवतार लेकर इसकी रज में खेलने को आतुर हो जाते हैं। यह मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु रामचन्द्र और लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की क्रीड़ाभूमि है; इसके साथ संसार की कोई भी धरती कैसे समता कर सकती है।

अतीत गौरव के अतिरिक्त पंत जी भारतभूमि को आधुनिक युग जीवन की रक्षा का एकमात्र साधन मानते हैं। आज जबकि यह धरती हिंसा, स्वार्थ और साम्राज्यवादी वृत्तियों को लेकर चलने वाले युद्धों से रक्तरंजित हो रही है, शोषण, अत्याचार, अनाचार और अभावों के कारण मानव-जीवन अपनी चेतना खो चुका है, उस समय इसी विषमता युक्त धरती को अपने स्वर्णिम आलोक से प्रकाशित करने की क्षमता केवल भारतवर्ष में है। प्राचीन युग में इसने अनेक बार मानव-जाति को आसुरी शक्तियों से बचाया है। अपने अमृत भरे संदेशों से इसी ने जीवन को ज्योतिर्मय बना दिया है अतः आज भी संसार को भारत के जीवन-दर्शन की आवश्यकता है। सत्य, अहिंसा, करुणा, दया, सेवा आदि सद्गुणों से युक्त भारतभूमि से कवि प्रार्थना करता है कि आज के मृतप्रायः नाशोन्मुख और संतप्त जीवन को अपने आध्यात्मिक और मानवीय भावों का संदेश देकर उसे शान्ति और समृद्ध की ओर ले चलो।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि का भारत-भूमि के प्रति अनुराग, आस्था और आदर का भाव साकार हो गया है। अपने जीवन में सर्वश्री विवेकानन्द, महात्मा गांधी और अरविन्द सरीखे महान् पुरुषों से प्रभावित होने के कारण यह अनुराग और गौरव स्वाभाविक भी था। पंत जी की अन्य कवियों से एक प्रमुखता यह है कि इन्होंने सक्षिप्त और सांकेतिक शब्दों का प्रयोग करते

हुए गूढ़ और रहस्यात्मक भावों की सरल अभिव्यक्ति कर दी है। अन्य राष्ट्रवादी कवियों के समान पंत जी ने भी देशभक्ति की भावना को गीत शैली में लिखकर अधिक प्रेरक बना दिया है।

(२) अलंकार—(i) 'फूटे जहाँ...निर्झर'—रूपक।

(ii) 'रक्तस्नात...धरती पर'—विशेषण विपर्यय।

छायापट

कविता-परिचय—'छायापट' कविता का रचनाकाल सन् १९४५ है। 'ज्ञेय' और 'ज्ञाता' की खोज कवि के 'आत्मा के मन' के धरातल में करने का प्रयत्न ही इस कविता की रचना का आधार है।

मन जलता है ....बनता जाता है।

शब्दार्थ—श्रवण=कान। गहन=गहरे; घनिष्ट। गोपन=छिपे हुए। संवेदना=आंतरिकता; अनुभूति; दुःख; वेदना; करुणा भाव।

प्रसंग—कवि अंधकार और प्रकाश के भेद के समान तन और मन में भी अनैक्य की स्थिति पाता है। यह स्थिति उसके लिए कष्टदायक है। इसी बोध को प्रस्तुत अवतरण में रूपायित किया गया है। कवि का कहना है :

व्याख्या—एक ओर तो अंधकार का प्रत्येक क्षण जलता है; दूसरी ओर मेरा मन जलता है। कवि पंत का कथन है कि पहले तो मेरा मन तन्मय हो जाता है अर्थात् वह देहवादी स्वरूप ग्रहण कर लेता है, फिर इस तन का मन धीरे-धीरे उस स्थिति से कटने लगता है, छँटने लगता है और कण-कण ऊर्ध्व हो पाता है। तात्पर्य यह है कि कवि अपने तन को, जो भोगवादी है, अपने मन के स्तर पर लाने के लिए प्रयत्नशील है, किन्तु मन का तनमय हो जाना उसके लिए कष्टप्रद है।

इस मन के भी नयन और श्रवण हैं तथा इस तन के भी श्रवण और नयन हैं। दोनों अपनी-अपनी संज्ञाओं से संयुक्त हैं; इन्हीं के माध्यम से जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, जिसमें कुछ सुख के संवेदन हैं, कुछ सुख के हैं। इनमें से कुछ पहचाने हुए संवेदन हैं और कुछ छिपे हुए। ये सवेदन ही मन और तन को संसार से जोड़ती हैं। न जाने ये संवेदनाएँ कब उड़कर समस्त जग में छा जाती हैं और अपने पंखों में जीवन-रज लिपटा कर ले आती हैं

तथा मेरे चेतना-आकाश में इन्द्रधनुषी बादल बन कर कब मुसकराने लगता है—कुछ पता नहीं चलता। कवि की स्वीकारोक्ति है कि मुझे नहीं मालूम कि यह संवेदन कब और कैसे प्रकाश की किरणें बरसाने लगता है। मेरा मन बाहर और भीतर, ऊपर और नीचे आने-जाने की यात्राएँ प्रारम्भ कर देता है और सर्वज्ञ बन जाता है। उसे वाह्य-बोध भी होता है और अत: बोध भी अधो-बोध भी होता है तो ऊर्ध्व बोध भी।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि का अध्यात्म-संघर्ष प्रकट हुआ है। मन तन को ऊर्ध्व-स्थिति में लाना चाहता है और तन मन को अपने स्तर पर खींचना चाहता है। यही परस्पर संक्रमण और संक्रामक, द्वन्द्वमय स्थिति से सीमाओं का अतिक्रमण ही कवि का प्राप्य है।

(२) अलंकार—(i) 'मन ' जलता है'--वीप्सा और अनुप्रास।
(ii) 'कन कन'—वीप्सा।
(iii) 'मेरा मन तन'—अनुप्रास।
(iv) 'इन्द्रधनुष ''मुसकाता'—मानवीकरण।

तन के मन ....मन जलता है।

शब्दार्थ—अन्तरित=निहित; छिपा हुआ। ज्योतित=प्रकाशित। आभा=प्रकाश। आदान-प्रदान=लेना-देना। ज्ञेय=जिसे जाना जाया। ज्ञाता=जानने वाला।

प्रसंग—कवि तन और मन की कष्टदायक अनैक्य स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है :

व्याख्या—मेरे तन के मन में कहीं आत्मा का मन अवस्थित है जो सर्वदा, निरन्तर प्रकाशयुक्त है और सवेदन के इन छाया-चित्रो को देखकर अपनी आभा से, ज्योति से जीवित कर देता है। यही वह आत्म है जो तन और मन का अतिक्रमण भाव समझ कर तन को ऊर्ध्व मार्ग पर ला सकता है। कवि का कहना है कि यह मन के आत्म और संवेदन के इन्द्रधनुषी घन के प्रकाश का आदन-प्रदान मुझे क्या सिखलाता है? कैसे सिखलाता है? मैं इसे अभी नहीं समझ सका। क्या जानने योग्य है और कौन जानने वाला है, इसी की खोज मे मन कभी अन्तर्मुखी होता है तो कभी तन की ओर खिचकर बाहर आ जाता है।

तन और मन के इस परस्पर संक्रमण के कारण मेरा मन जलता है। मेरे मन में, तन में एक द्वन्द्व होता रहता है और परिणाम-स्वरूप मेरा चेतन

और अवचेतन नित्य प्रति परिवर्तन के स्तर पार करता चलता है—निरन्तर विकासमान रहता है। मेरा मन अंधकार के क्षणों की भांति सदा जलता रहता है।

विशेष—(१) भावनाओं का यह संघर्ष ही मनुष्य को उदात्त-भूमि पर स्थापित करता है। इस सघर्ष को ठीक दिशा देने का कार्य 'तन के मन में कहीं' अन्तरित आत्मा का मन' करता है। इसी भाव की, इसी विचार की व्यजंना इस अवतरण में हुई है।

(२) बिम्बात्मक रूप से पत ने कविता का भाव-सौदर्य द्विगुणित किया है।

(३) अलंकार—(i) 'तन के···सिखलाता'—मानवीकरण।
(ii) 'क्या है···जाता'—मानवीकरण ।
(iii) सम्पूर्ण अवतरण में अनुप्रास।

सविता

कविता-परिचय—'सविता' कविता का रचना-काल सन् १९४५ है। इस कविता में कवि पंत ने सूर्य का आलंकारिक और भावात्मक वर्णन किया है।

लो सवित आता ·····························का तमहर।

प्रसंग—कवि सूर्य का उदय होना परिलक्षित कर, उसकी सहस्रकर देवता के रूप में कल्पना करता है और उसका इस प्रकार वर्णन करता है:

व्याख्या—लो, देखो! वह हजार हाथों वाला सूर्य उज्ज्वल आकाश-पृष्ठ पर उदित हो रहा है। वह सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को नवीन किरणों से ज्योतिमान बना रहा है। उसके आते ही सब दिशायें नयी किरणों, नयी आशाओं से आलोकित हो उठी हैं। वह देखो! वह सूर्य अपनी ही किरणों से घिरा, तीनों लोकों का अंधकार दूर करता हुआ अपने वेग में दिव्य तेज भरकर अपने सात अश्वों के रथ पर सवार होकर सात लोकों को पार करता हुआ आ रहा है।

विशेष—(१) कविता का आधार 'मिथक' है। सूर्य को पौराणिक गाथाओं में सात अश्वों के रथ का आरोही माना गया है। वह पृथ्वी पर सात लोकों की यात्रा कर प्रकाश फैलाने आता है, ऐसा भी माना जाता है।

(२) सूर्य का दिव्य वर्णन है। 'सविता आता सहस्रकर' इस दृष्टि से द्रष्टव्य है।

उठो मनुष्य......... ....प्रकाश से आवृत।

शब्दार्थ—पूषण=पोषण। आभृत=घिरा हुआ। आवृत=घिरा हुआ।

प्रसंग—कवि सूर्य के उदित होने पर मनुष्यों को जागरण का आह्वान देता है; उन्हें नयी प्रेरणा ग्रहण करने का परामर्श देता है। उसका कहना है :

व्याख्या—अरे मानवो! उठो, जागो! नये उगते हुए सूर्य का उषा-वेला में ही अभिनन्दन करो। उस प्रकाशवान और अपने प्रकाश से संसार का पोषण करने वाले सूर्य का मार्ग उषा ने खोल दिया है। उठो, उसका अभिनन्दन करो। उन किरणों की पूजा करो। उठो और देखो वह किरणों से परिपूर्ण और प्रकाश से घिरा हुआ सूर्य आ रहा है, अंधकार दूर हो गया है, नव-जीवन प्राणवान होकर प्रवाहित होने लगा है।

विशेष—(१) जीव-जगत् के लिए सूर्य की उष्णता और प्रकाश अनिवार्य है। ये तत्त्व जीवन के पोषक हैं। इसलिए कवि ने सूर्य को 'ज्योतिर्मय पूषण' कहा है।

(२) अलंकार—अनुप्रास।

अंधरूढ़ि पर चलने..................................से निर्भर।

शब्दार्थ—अभिनव=नवीन। धावमान=दौड़ता हुआ। भुवन=लोक। दिशिपाल=दिशाओं का पालक। मातरिश्वा=सूर्य। अजर=वृद्ध न होने वाला।

प्रसंग—कवि सूर्य के तेज का चित्ताकर्षक वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—वे लोग भी जो अबतक अंधरूढ़ियों पर चल रहे थे अर्थात् अंधकार युक्त मार्ग पर अग्रसर थे, वे भी आज प्रकाश से भरा नया मार्ग पा गये हैं। कारण, सात अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ नवसूर्य का प्रकाश उन्हें मिल गया है। कवि सूर्य को एक दिव्य हंस के रूप में कल्पित कर कहता है कि वह दिव्य हंस अपने सहस्र परों को दिनों से फैलाये नित स्वर्ग की ओर अग्रसर रहता है। उस दिव्य हंस को कोई रोक नही पाता। वह निर्भय होकर बढ़ता ही जाता है। वह दिव्य हंस सात भुवनों को देखता हुआ समस्त देवताओं को अपने हृदय में अवस्थित कर सब लोकों मे व्याप्त है। सर्वलोकी होने के कारण ही, वह अपने फैले सहस्र पंखों से उन्हें प्रकाशित करने के कारण ही 'दिशिपाल' कहलाता है। कवि उसके तेज से अत्यन्त प्रभावित है। वह कल्पना करता है कि सूर्य अपने तेज से सब को स्तम्भित करता हुआ कहता है कि मैं

वह 'स्वर्ण पुरुष हूँ, मैं वह अजर और अमर ज्योति पुरुष हूँ, जिसके शीर्ष में सतत रूप से सात स्वर्ण-धारायें निकलती रहती हैं।'

विशेष—(१) सूर्य के लिए 'अजर अमर' विशेषण सार्थक है। सूर्य मानव-प्राणी के अस्तित्व में आने से पूर्व ही न जाने कब से इसी प्रकार प्रकाशित होता रहा है। सूर्य का प्रकाश सत्य है। अतः वह अमर भी है। इसी प्रकार 'दिशि-पाल' विशेषण भी सार्थक है। दिवस-सूर्य सब ओर प्रकाश की किरणों को भेजता है। अतः वह दिशि-पालक भी है।

(२) अलंकार—(i) 'देवों को···में सकल'—विशेषण विपर्यय।
(ii) 'हाउ-हाउ'—वीप्सा।
(iii) 'अजर अमर'—अनुप्रास।
(iv) सम्पूर्ण अवतरण में रूपक।

....

बन्दे मातरम्

कविता-परिचय—'वन्दे मातरम्' कविता की रचना सन् १९४६ में हुई थी। स्वतन्त्रता-पूर्व की यह कविता कवि के सामयिक स्वर को प्रकट करती है। मातृभूमि की प्रशस्ति में लिखी गयी इस कविता में देश-प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

वन्दे मातरम्·································बन्दे मातरम्।

शब्दार्थ—बन्दे=नमन। धरणी=पृथ्वी। भरणी=भरण-पोपण करने वाली; मां। प्रसविनी=जन्म देने वाली। हरित=हरियाली। कूजित=गुंजन। उदधि=समुद्र। दीप्त=प्रकाशित। प्रणयाकांक्षी=प्रणय की इच्छा करने वाला। चिरन्तन=शाश्वत।

प्रसंग—कवि अपनी जन्म-भूमि भारत की प्रशस्ति में गीत गा रहा है। वह कहता है:

व्याख्या—मातृभूमि की जय हो! यह भारत भूमि जन-जन को धारण करने वाली है, पालन-पोपण करने वाली है; यह वीर और बलिदानी रत्नों को जन्म देने वाली प्रसूता-मां है। इस मां, जन्मभूमि की जय हो! यह नित्य हरीतिमा से युक्त रहती है; यह शस्य- श्यामला है। यहां यौवन की मस्ती में कोयल कूजती है, शीतल-मंद-सुगन्ध पवन प्रवाहित होता रहता है। समुद्र का

जल ही इसका बस्त्र है, सूर्य और चन्द्र से दीप्त नत-मस्तक आकाश इसका छत्र है। स्वर्ग इसके प्रणय की चिरन्तन समय से इच्छा करता आया है। ऐसी जन्म भूमि मां की जय हो !

ऐसी मातृभूमि के उत्थान के लिए, जन-मंगल की कामना के लिए क्रान्ति की तुरही बज उठे और विजय-दुंदुभी से कुडुम-कुडुम का स्वर निकल कर चारों ओर फैल जाये। मेरी आकांक्षा है कि मानव-जीवन के लिए मृत्यु का वरण करने में भी न हिचके और मृत्यु की गोद में पड़े हुए भी प्रत्येक जन के मुख से 'मातृ भूमि' की जय ही निकले।

विशेष—(१) 'बन्दे मातरम्' की पंक्तियों को पढ़कर बंकिमचन्द्र की निम्न पंक्तियाँ अनायास ही सामने आ जाती हैं :

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम
शस्य श्यमालाम् मातरम, बन्दे मातरम्।

(२) कविता में श्रृंगार और ओजगुण प्रधान है। वस्तुतः श्रृंगार और ओज के योग से ही कविता उच्च भाव-भूमि पर पहुँची है।

(३) अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, मानवीकरण।

भू मन के······································बन्दे मातरम्।

शब्दार्थ—मुक्त=स्वतन्त्र। दैन्य=निर्धनता। दुरित=छल-कपट। तमस=अंधकार। प्रांगण=आंगन। योजित=लगे हुए। ग्रथित=गुथा हुआ। मनुजोचित=मनुष्य के योग्य।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि भारत-भूमि की वन्दना करता हुआ कहता है :

व्याख्या—मेरी आकांक्षा है कि भारत-भूमि की दासता की श्रृंखलाएँ कट जाएँ। भारत स्वतन्त्र हो और मानव का मन दासता के कारण उत्पन्न हुई जड़ताओं से, बन्धनों से मुक्त हो जाए और वह स्वतन्त्र-चेता होकर नवीनताओं को अपनाए। मै चाहता हूँ कि इस देश से दीनता, निर्धनता और छल-कपट के काले बादल छँट जाएँ; देश का आंगन स्वर्णिम प्रभात से आलोकित हो उठे। घर-घर, मन-मन नवीन आशाओं का संचार हो।

कवि अपने मन की इच्छाओं को व्यक्त करता हुआ कहता है कि प्रत्येक दिशा जनता के श्रम से खिल उठे अर्थात् नवीन निर्माण हों और समस्त समय नवीन विश्व की रचनाओं में व्यतीत हो। प्रत्येक देश एक नवीन संस्कृति का

निर्माण करे, जो मानव-कल्याण पर आधारित हो, अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं को व्यक्त करने वाली हो—मानव को विराटत्व प्रदान कर दे। मनुष्य परस्पर प्रेम करें, समृद्ध हों, आत्म-निर्भर हों। मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली इस मातृ-भूमि की जय हो।

विशेष—(१) कवि 'My Country Right or Wrong' की संकीर्ण-भूमि से निकल कर 'विश्व-बन्धुत्व-वसुधैवकुटुम्बकम्' की उदात्त भाव-भूमि पर पहुंच गया है।

(२) कवि समस्त विश्व के लिए वरेण्य एक नवीन संस्कृति का निर्माण चाहता है—जिसके आधार विश्व-प्रेम, बन्धुत्व, समता और स्वातन्त्र्य-भाव हैं।

(३) अलंकार—(i) 'तमस घन'—रूपक।
(ii) 'दिशा···हर्षित'—मानवीकरण।

....

सामंजस्य

कविता-परिचय—'सामंजस्य' कविता का रचना-काल सन् १९४६ है। पंत समन्वयवादी कवि हैं। राजनीति, धर्म और समाज के सामंजस्य के प्रयत्न की भाँति इसमें भी भाव-सत्य, वस्तु-सत्य और आत्म-सत्य के समन्वय की चेष्टा की गयी है।

भाव सत्य······ .... एक सभी जन।

शब्दार्थ—भाव-सत्य = अन्तर्मन के भावों की सच्चाई। पार्थिव = सांसारिक।

प्रसंग—कवि भाव और वस्तु में एक विभाजक-रेखा पाता है। उसे लगता है कि तुम और मैं की सीमा एक बन्धन है। उससे मुक्ति का प्रयत्न करना ही होगा। ऐक्य उसे आवश्यक जान पड़ता है। कवि का कहना है:

व्याख्या—भाव-सत्य ने अपना मुँह मटका कर कहा कि तुम और मैं की विभाजक रेखा तो वस्तुतः बन्धन है। मुझे तो मुक्त आकाश में अपनापन खोकर बादल के टुकड़े के समान विलीन हो जाना ही अच्छा लगता है—व्यक्ति की सुन्दरता अपनापन खो देने पर ही तो निखरती है। इस जगत के मर्त्य-मानव का हृदय बड़ा ही संकीर्ण है; मोल-तोल ही इनका जीवन-लक्ष्य हो गया है। ये जीवन की वास्तविकता समझने का प्रयत्न नहीं करते। ये ...

समझते कि धरा एक है, आकाश एक है और सभी मानव एक हैं। इनमें कोई तात्त्विक भेद-भाव नहीं है। तिस पर भी तू-मैं की सीमा से आबद्ध मानव अपने घेरे से निकल नहीं पाता।

विशेष—(१) यहाँ तात्त्विक-ऐक्य की भावना प्रदर्शित की गई है।

(२) प्रसाद की निम्न पंक्तियों से भाव-साम्य द्रष्टव्य है :

ऊपर हिम था नीचे जल था
एक तरल था एक सघन
एक तत्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड़ या चेतन।

—कामायनी, चिन्ता सर्ग

(३) 'भाव-सत्य बोली' में व्याकरण-दोष है। यहाँ 'बोली' के स्थान पर 'बोला' होना चाहिये।

(४) अलंकार—(i) 'भाव-सत्य···मुख मटका'—मानवीकरण।
(ii) 'बादल-सा'—उपमा।

बोली वस्तु सत्य··························कुत्सित और सुन्दर।

शब्दार्थ—द्वन्द्व=संघर्ष। स्नेह=प्रेमी। द्रोही=विरोध करने वाला। दीन=गरीब। कुत्सित=घृणास्पद।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में वस्तु सत्य भाव-सत्य का उत्तर दे रहा है :

व्याख्या—परन्तु, वस्तु-सत्य का यह दर्शन नहीं। भाव-सत्य की प्रपत्ति उसे किसी भी अवस्था में स्वीकार्य नही। विपरीत इसके कि अपना अस्तित्व खोकर मूल तत्त्व में विलय होने की चेष्टा की जाए; वह भिन्नता की बात करते हुए कहता है कि मुझे यह बात, यह दर्शन बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। अरे! सोचो तो; शरीर भिन्न हैं, रुचियाँ भिन्न हैं, स्वभाव भिन्न है, मन भिन्न है, तो ऐक्य की बात कैसे सोची जाती है। एक ही मन में सभी गुण तो भरे नहीं होते? अरे भई! इस जगत् में द्वन्द्व है, नारी और नर परस्पर स्नेही भी है और द्रोही भी, धनी भी हैं। कुत्सित, कुरुप और घृणास्पद भी हैं और सुन्दर भी है। भला इतने अन्तर और बाह्य विरोधों की स्थिति में एक होने की बात क्योंकर सोची जा सकती है।

विशेष—(१) वस्तु-निष्ठ सत्य सदा वस्तु की सापेक्षता में होता है।

अतएव वहाँ ऐक्य की कल्पना नहीं की जा सकती। यह यथार्थ मानो कवि ने 'वस्तु-सत्य' के मुख से कहला दिया है।

(२) **अलंकार**—(i) 'बोली···बिचका'—मानवीकरण।

(ii) अनुप्रास।

(३) 'बोली वस्तु सत्य' में व्याकरण-दोष है।

आत्म सत्य बोली ························ चल सकता जग।

शब्दार्थ—सपने=कल्पनाएँ। पग=पद; पैर। सामंजस्य=परस्पर विरोधी अथवा पृथक्य वस्तुओं का मेल; समन्वय।

प्रसंग—भाव-सत्य और वस्तु-सत्य का वार्तालाप सुन कर आत्म-सत्य उन दोनों को उत्तर देता हुआ प्रस्तुत अवतरण में समन्वय-भावना पर बल देता है।

व्याख्या—आत्म सत्य दोनों—भाव और वस्तु-सत्यों का संचालन करने वाला है। दोनों की बात सुनकर वह कहता है कि मुझे दोनों के विचारों का कारण ज्ञात है। मैं भला दोनों में से किसी को भी कैसे भूल सकता हूँ। मै ही तो दोनों का संचालन करता हूँ। आदर्श, जो भाव-सत्य के विलयन में निहित है और यथार्थ, जो वस्तु सत्य के कटु अनुभाव में छिपा हुआ हैं, मुझे से छिपे हुए नही है। इन दोनों का सामंजस्य तो आत्यावश्यक है। अकेला न तो आदर्श काम कर सकता है और न अकेला यथार्थ जीवन से जूझ सकता है। अकेला-भाव-सत्य तो केवल कल्पना है—उसका अस्तितत्व ही क्या? वायवी वस्तु तो सपने की भांति उड़ जायेगी और यथार्थ एक भी पैर आगे नहीं रख सकता यदि उसे आदर्श का लक्ष्य न मिल पाये। इसलिए मैने दोनों में समन्वय बनाये रखा है ताकि दोनों के आधार पर जगत् चलता रहे।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अपना मन्तव्य—यथार्थ और आदर्श का समन्वय बड़े ही सपाट लहजे में स्पष्ट किया है।

(२) भाषा प्रसाद गुणोपेत है।

(३) **अलंकार**—(i) 'आत्म··मुसका'—मानवीकरण।

(ii) 'सत्य···पग'—मानवीकरण।

(iii) 'गिन गिन'—पुनरुक्ति प्रकाश।

पतिता

कविता परिचय—'पतिता' कविता का रचना-काल सन् १९४५ है। यह प्रगतिवादी यथार्थ-स्वर की रचना है। लुटेरों द्वारा बलात्कार किये जाने पर एक स्त्री 'पतिता' होती है। समाज में, परिवार में वह घृणा का पात्र बनती है, किन्तु उसके पति का उसके प्रति क्या कर्तव्य है—यही कवि ने 'पतिता' कविता में प्रस्तुत किया है।

रोता हाय·····································कर पुरजन !

शब्दार्थ—हाय मारकर=दहाड़ मारकर। चि-परिचित=जाने-पहचाने। करम=कर्म। धरम=धर्म। सिसक रहे=धीरे-धीरे रो रहे थे।

प्रसंग—परिवार की बहू को आततायी पतित (?) कर जाते हैं। उस स्थिति में परिवार और परिचितों की दशा का वर्णन कवि कर रहा है।

व्याख्या—नीच, लुटेरे, हत्यारे माधव की बहू के साथ बलात्कार कर गये। उसे कलंकित कर गये। इसी घटना को लेकर वृद्ध और सम्बन्धीजन दहाड़ मार-मार कर रो रहे हैं कि हाय ! यह क्या हो गया ! हमारे कर्म फूट गये, हमारा धर्म लुट गया। यही कहते हुए सब कुटुम्ब वाले सिर हिला-हिला कर रो रहे है और साथ ही उसे अभागिनी और कलकिनी कहते जाते है।

विशेष—(१) कवि ने भारतीय समाज की स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। कैसे एक परिवार की बहू पर दोष-हीन होने पर भी लांछन लगाये जा रहे हैं। हत्यारों, लुटेरों का दोष भी उसी के सिर ! कैसी विडम्बना है परिवार की ! समाज की !

(२) 'हाय मार कर' मुहावरे का सार्थक प्रयोग हुआ है।

(३) अलंकार—(i) 'गा-गा'—वीप्सा।

(ii) 'क्रूर···कर'—अनुप्रास।

सिसक रही·····································उठता तन।

शब्दार्थ—कोस रही=भला-बुरा कहना। चेरी=दासी। दारुण= पीड़क; भयानक। छिन्न-लता=क्षीण लता।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने परिवार की बहू की इज्जत लुट जाने के बाद की पारिवारिक-जनों की स्थिति का वर्णन किया है। उसका कहना है :

व्याख्या—और उस बहू की दशा क्या है ? वह अबला सांस चलने पर

हिलती देह लिए गठरी सी बनी एक कोने में सहमी-सी सिसकियाँ भर रही है। वह आंशकित है—न जाने अब क्या होगा ? पड़ोस की औरतें उसे घेर कर कोस रही है। यहाँ तक कि घर की नौकरानी भी उससे सीधे मुहँ बात नहीं करती। वह भी आंख चुराकर निकल जाना चाहती है कि कहीं कुछ बात न करनी पड़े। इतने में केशव घर लौट आता है। सब परिवार वाले—हाय ! बेटा ! (यह क्या अनर्थ हो गया ? अब समाज में मुहँ कैसे दिखायें) कह कर रोते हुए माथा पीट लेते है। उनके तन पतली लताओं की भांति काँप उठते है।

विशेष—(१) यथार्थवादी चित्रण है।

(२) भारतीय नारी का मर्यादाशील चरित्र प्रथम दो पंक्तियों में उद्घाटित होता है।

(३) अलंकार—(i) 'सांसों की-सी'—उपमा।
(ii) 'छिन्न-लता-सा'—उपमा।

सब सुन..न कलंकित।

शब्दार्थ—चीखता=जोर से कहता हुआ। मनुज=मानव। रज=धूल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने उस तथाकथित पतिता बहू के प्रति केशव की प्रतिक्रिया का वर्णन किया है :

व्याख्या—कुटुम्बी-जनों का रोना-धोना और लांछन सुन कर केशव चीखकर कहता है—बन्द करो यह रोना-धोना। मैं सब सुन चुका हूँ। फिर वह अपनी पत्नी मालती, जो कोने में सहमी सांसों की-सी गठरी बनी सिसकती बैठी थी, की ओर उन्मुख होकर कहता है कि मालती उठो ! अन्यथा इस घर का वह काला कोना तुम्हें खा जायेगा। मनुष्य तो मिट्टी का बना हुआ है, जो सदैव कलुषित रहता है। देखा तो मनुष्य का मन जाता है। यदि पवित्र मन कलुपित हो तो कलंक तभी लगता है। तुम तो मन से पवित्र हो। हत्यारे लुटेरों का पाप तुम्हारे सिर क्यों ? तुम तो निष्कलंक हो मालती ! उठो, मैं तुम्हें इस प्रकार कलंकित होकर न रहने दूँगा। अपने प्रेम से उस कलंक को धो डालूँगा। क्योकि, प्रेम में वह शक्ति है जो पतितों का भी उद्धार कर दे। फिर तुमने तो कोई पाप भी नही किया। तुम मेरी पत्नी हो, मालती उठो।

विशेष—(१) एक उदात्त-मन पुरुष का चित्रण यहाँ हुआ है।
(२) 'प्रेम पावन है' ही केन्द्रीय भाव है।
(३) अलकार—अनुप्रास।

....

आजाद

कविता परिचय—'आजाद' कविता की रचना सन् १९४५ में हुई थी। कवि अपने समन्वयवाद में इस्लाम की कथाओं को भी अपनाता है। प्रस्तुत कविता भी हजरत मुहम्मद और उनके एक शिष्य के मध्य संवाद के रूप में है।

पैगम्बर के ···· ·································पैर पर।

शब्दार्थ—शक=सन्देह। इंसा=मानव। पावन्द=नियमों में बंधा हुआ। मुरीद=शिष्य।

प्रसंग—शिष्य को मनुष्य की स्वतन्त्रता और पावन्दी पर सन्देह होता है और वह अपने पूज्य हजरत मुहम्मद से अपनी शंका का समाधान करने के लिए प्रार्थना करता है :

व्याख्या—पैगम्बर के एक शिष्य ने एक बार उनसे पूछा कि हजरत ! इस बन्दे को एक शक है—सन्देह है कि मानव किस सीमा तक स्वतन्त्र है और किस सीमा तक दुनिया में उसे पावन्दी माननी पड़ती है। हजरत ने उस शिष्य का प्रश्न सुना और उससे कहा कि तुम खड़े रहो। फिर हुक्म दिया कि एक पैर ऊपर उठा लो। शिष्य ने गुरू की आज्ञा सुनी और कहा कि 'हजरत का हुक्म सिर आँखों पर' और उनके सामने एक पैर पर खड़ा हो गया।

विशेष—जिज्ञासा मानव का स्वभाव है। उसीको प्रस्तुत पंक्तियों में आधार स्वरूप ग्रहण किया गया है।

ठीक दूसरा·································· यह उत्तर।

शब्दार्थ—नबी=हजरत मुहम्मद। नामुमकिन=असंभव। जमीं=पृथ्वी।

प्रसंग—हजरत की आज्ञा पर मुरीद ने एक पैर उठा लिया और एक पैर पर खड़ा हो गया। प्रस्तुत अवतरण में कवि आगे की घटना की तात्विकता का उद्घाटन करता है।

व्याख्या—मुहम्मद ने हंसकर कहा—हाँ, ठीक है ! अब दूसरा पैर भी उठाओ ! शिष्य ने गुरु की आज्ञा-पालन की चेष्टा की। वह बार-बार गिरा, लेकिन दोनों पैर उठाकर खड़ा नही हो सका। अन्ततः उसने कहा कि हजरत ! यह तो असंभव है। दोनों पैरों पर तो खड़ा ही नहीं हुआ जा सकता। उसके यह कहते ही पैगम्बर ने उसे शिक्षा दी—एक पैर उठकर तुमसे यही कहता है कि तुम यहीं तक स्वतन्त्र हो कि एक पैर उठाकर खड़े रहो; लेकिन दूसरा पैर

पृथ्वी से चिपका हुआ तत्काल कहता है कि तुम इस जगत से बंधे हुए हो। एक दम स्वतन्त्र नहीं हो। इसलिए बंधन तोड़कर एक दम ऊपर नहीं उठ सकते। भला स्वतन्त्रता में अपनी सीमा कैसे भूल सकते हो ? पैगम्बर मुहम्मद ने अपने शिष्य को यही तात्विक उत्तर दिया।

विशेष—(१) मनुष्य स्वतन्त्र है फिर भी वह सामान्य जागतिक बंधनों में जकड़ा हुआ है। यही तत्वतः सत्य है। यही मनुष्य की सीमा भी है।

(२) अलंकार—(i) 'बार-बार'—पुनरुक्तिप्रकाश।
(ii) 'बार-बार गिर'—अनुप्रास।

....

स्वप्न-बंधन

कविता परिचय—'स्वप्न-बन्धन' कविता का रचना-काल सन् १९४३ है। कवि अपनी प्रेयसी की मनहर छवि को स्मृत करता हुआ स्वयं को उसके 'स्वप्न-बन्धन' में अनुभव करता है। इस कविता को 'आंसू' और 'ग्रन्थि' की श्रेणी में रखा जा सकता है।

बांध लिया तुमने ....मन में जगती।

शब्दार्थ—मधुर=सरस; मीठा। आलिंगन=मिलन। मानसि=प्रेयसी।

प्रसंग—कवि को अपनी प्रेयसी का स्मरण हो आता है और वह उसके स्वप्नों में, अपनी कल्पनाओं में खो जाता है। उसी मनःस्थिति में वह अपनी प्रेयसी को सम्बोधित करता हुआ अपनी स्वप्न-बद्धता का वर्णन करता है। उसका कहना है :

व्याख्या—हे प्रेयसी ! तुमने मेरे प्राणों को फूलों के बन्धन में बांध लिया है और मेरे मन में तुम एक जीवित-ज्योति-सी लिपट गयी हो अर्थात् तुमने मेरे मन में नयी आशाओं-कल्पनाओं का संचार कर दिया है। तुमने मुझे मधुर स्वप्नों के आलिंगन मे बांध लिया है। मैं हर क्षण तुम्हारी ही स्मृति में खोया रहता हूँ। ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीर की शत-शत शोभायें मेरे समक्ष चलती-फिरती रहती हैं, और मेरी कल्पना न जाने तुम्हारे रूप-स्वरूप को कितने कितने रंगों में, भावों में रंगती रहती हैं। हे मेरी प्रेयसी ! तुम मेरे मन मे एक ही क्षण में सौ-सौ बार अपनी स्तुति कौंधा जाती हो।

विशेष—(१) कवि का तीव्र प्रेम-भाव प्रस्तुत अवतरण से प्रकट हो रहा

है उसका प्रेम इतना गहरा है कि एक ही क्षण में प्रेयसी को सौ सौ बार याद करने लगता है।

(२) भाव-साम्य की दृष्टि से पंत की ही निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है:

बांध दिये क्यों प्राण-प्राण से।
तुमने चिर अनजान प्राण से।

(३) अलंकार—(i) 'आभा-सी'—उपमा।
(ii) 'सौ-सौ'—पुनरुक्ति प्रकाश।

तुम्हें स्मरण कर ....**उर कंपन में।**

शब्दार्थ—आंक=अंकित। प्रणयी=प्रेमी। सौरभ=सुगन्धि।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अपनी प्रेयसी का स्मरण कर कहता है:

व्याख्या—हे सुन्दरी! यदि तुम्हारे स्मरण मात्र से ही मैं स्वप्नों में खो जाता हूं तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? यदि हृदय में तुम्हारी छवि उभरते ही मेरे प्राण-प्रणयी-कवि हृदय के प्राण भी तुम्हारे गीत बन जाये। और क्या आश्चर्य यदि तुम्हें देखकर कोमल, सद्य चांदनी भी रवि बरसाने लगे। वह अपना तेजवन्त रूप त्यागकर शशि की शीतलता भी धारण करने तो क्या आश्चर्य! तुम मेरे हृदय में सहज मधुर भाव से एक सुगन्ध सी बस जाती हो! तुम पतझर में भी बसंत लाने वाली हो। शुष्क जीवन में रस का स्रोत हो। तुम मेरे प्राणों में बस कर प्रणय रूप धारण कर लेती हो और हृदय का कंपन गीतों का रूप धारण कर लेता है। कवि के कहने का भाव यह है कि प्रेयसी की छवि-स्मृति ही उसे गीत-मय बना जाती है।

विशेष—(१) कवि की भावुकता इतनी अधिक बढ़ गयी है कि वह रवि में भी शशि-धर्म की कल्पना कर लेता है और इस प्रकार वह एक अतिशयोक्ति-पूर्ण स्थिति का निर्माण करता है।

(२) अलंकार—(i) सम्पूर्ण अवतरण में स्मरण।
(ii) 'जी उठते यदि स्वप्न'—मानवीकरण।
(iii) 'सौरभ-सी'—उपमा।
(iv) 'पतझर'' विरस—अनुप्रास।

तुम देही हो ....**तन धर पाई।**

शब्दार्थ—कनक=स्वर्ण। छबीली=सुन्दर। मधुरिमा=छवि। लजीली =लज्जाशील। समाई=मिलजाना। धर पाई=धारण करना।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि प्रेयसी का सौन्दर्य-वर्णन करता हुआ कहता है :

व्याख्या—क्या तुम शरीर-युक्त हो ? यह देह तो इतनी क्षीण है कि दीपक की लौ के सदृश जान पड़ती है। उसका रंग स्वर्णिम है जैसा कि दीपक की लौ का होता है। क्या तुम नारी हो ? नारी के सब गुण तुम में आकर साकार हो गये हैं, सार्थक हो उठे है। तुम मधुरिमा से युक्त मौन प्रतिमा हो; तुम इतनी लजीली हो कि साक्षात् लाज ही साकार हो गयी लगती है। तुम्हें देखने के लिए तो मानो शोभा ही लता बन कर लहरा उठी है। तुम्हारी अंग-भंगिमा प्रतिमा रूप धारण कर तुम्हारी मृदु, कोमल, क्षीण देह में समा गयी है अर्थात् तुम्हारी देह इतनी क्षीण और कोमल है कि लगता है भंगिमा ही मूर्त रूप धारण करके आ गई है। लगता है कि कोमलता तुम्हारे शरीर के कोमल अंगों में रूपाकार धारण कर आगयी है अर्थात् तुम्हारे कोमल शरीर में रूपायित हो गयी है।

विशेष—(१) कवि पंत ने प्रेमिका का सौन्दर्य-वर्णन परम्परागत रूप में न करके नवीन रूप में—सूक्ष्म रूप में किया है। 'गुंजन' की 'भावी पत्नी के प्रति' कविता में इसका भाव-साम्य देखिए :

अरुण अधरों की पल्लव प्रात
मोतियों-सा हिलता हिम-हास
इन्द्रधनुषी से पट ढक गात
बाल विद्युत का पावस-लास।

(२) **अलंकार**—(i) 'लौ-सी'—उपमा।
(ii) 'मौन···लजीली', 'शोभा ही···आई'—उपमा, मानवीकरण।
(iii) 'स्वप्न ··सजीली'—उपमा, अनुप्रास।
(iv) 'अंग · वन', 'कोमलता···पाई'—मानवीकरण।

फूल खिले उठे········ ················के घन में।

शब्दार्थ—भू=पृथ्वी। ज्योत्स्ना=चांदनी। लावण्य=सौन्दर्य। सम्मोहन=जादू। भाया=अच्छा लगा। वाष्प=भाप। घन=बादल।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि प्रेमिका के इंगित कर कहता है :

व्याख्या—हे प्रेयसी ! जैसे ही तुम पृथ्वी को दिखाई दीं, वैसे ही प्रकृति

ल उठे और इस पृथ्वी पर सौन्दर्य सौ-सौ रंग धारण कर व्याप्त हो .. तुम्हारा सौन्दर्य इतना आश्चर्यचकित कर देने वाला है कि स्वयं ज्योत्स्ना भी सकुचा गयी ! और तुम्हारी छवि उषा को भी लजा गयी। तुम में इतनी सौदर्न्य की मधुरिमा है, असीम सम्मोहन है जो मन को बरबस आकर्षित कर लेता है कि मन स्वयं ही तुम पर प्राण न्योछावर कर देने को पागल हो उठता है। क्या तुम्हें अपने सौन्दर्य की शक्ति और अपने अपार आकर्षण का ज्ञान नहीं है ? तुम्हें क्या मालूम कि तुमने मेरे प्राणों को प्रणय के स्वप्न-बंधनों में बाँध लिया है। मालूम नहीं कि तुम्हें क्या अच्छा लगा है कि तुम खिल उठी हो और अपनी प्रसन्नता आँसुओं के वाष्प से निर्मित बादलों के घेरे में इन्द्रधनुष बनाकर व्यक्त कर रही हो। हे मेरी प्रेयसी ! तुम्हारा सौन्दर्य अपार है ! उसकी आकर्षण-शक्ति असीम है ! उसकी शक्ति अतुलनीय है।

विशेष—(१) कवि अपनी प्रेयसी-रूपसी के वर्णन में अत्यधिक भावुक हो उठा है। वह उसका अतिशयोक्तिपूर्ण सौन्दर्य वर्णन करता है।

(२) कवि की प्रेयसी का सौन्दर्य ही मानो फूलों के खिलने में व्यक्त होता है। जायसी में इसका भाव-साम्य देखा जा सकता है :

हँसत जो देखा हंस-भा।

यहाँ भी, जैसे ही पृथ्वी 'प्रेयसी' को देखती है, वह फूलों के रूप में खिल उठती है।

(३) **अलंकार**—(i) समस्त अवतरण में अतिशयोक्ति।
(ii) भू को दी दिखलाई'—मानवीकरण।
(iii) 'सौ-सौ'—पुनरुक्ति प्रकाश।
(iv) 'ज्योत्स्ना सकुची', 'उषा लजाई'— मानवीकरण।
(v) प्रतिछवि-सी'—उपमा।
(vi) 'प्राणों को प्रणय···स्वप्न'—अनुप्रास।
(vii) 'इन्द्र धनुष···घन में'—रूपक।

·········

गाँधी-युग

कविता परिचय—भारतवर्ष स्वाधीन हुआ। उसके नव निर्माण का संकल्प लेकर चलने वालों का प्रेरणा स्रोत था गांधीवाद। गांधीवाद, जिसने सत्य,

भारत गीत

कविता परिचय—'भारत गीत' कविता में श्री पंत ने भारत वर्ष की महानता, प्राचीनता, और सुन्दरता का चित्रण करते हुए उसके गौरवशाली अतीत का चित्रण किया है। भारतवर्ष को सभ्यता और संस्कृति का उद्गम मानते हुए कवि ने प्रजातंत्र राज्य प्रणाली को भी भारत की देन स्वीकार किया है। कविता के अंत में मातृभूमि की वंदना की गयी है। इस भारतगीत में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय 'बन्देमातरम' और कविन्द्र रविन्द्र के 'जन-गण-मन' जैसे अमरगीतों का समन्वित रूप लक्षित होता है।

जय जन भारत ....ध्रुव पथ पर।

शब्दार्थ—जनभारत=जनतंत्रवादी भारत। अभिमत=विचार। गणतंत्र =गणराज्य पद्धति। विधाता=सृष्टा। शाश्वत=चिरन्तन। उर्वर=उपजाऊ। ध्रुव=अडिग।

प्रसंग—श्री पंत कृत 'भारत गीत' के प्रस्तुत अवतरण में भारतवर्ष के स्वरूप और महत्त्व का चित्रण किया गया है। जनतंत्र पद्धति के जनक एवं प्राकृतिक सौन्दर्य-सुषमा मण्डित भारत की वंदना करता हुआ कवि कहता है :

व्याख्या—जनतंत्र के विश्वासी भारत की जय हो। यह देश संसार में गणराज्य पद्धति का जनक है। यहां प्रत्येक व्यक्ति के विचारों और व्यक्तित्व का सम्मान किया जाता है। अपने प्रत्येक घटक को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकार देकर उसको सम्मानित करने वाले भारत की जय हो। भारतवर्ष, जिसके गौरवशाली, उन्नत मस्तक पर हिमालय का मुकुट सुशोभित है, जिसके वक्षस्थल पर उज्ज्वल-निर्मल गंगा की पावन-धारा एक शुभ्रहार के समान शोभा देती है। विंध्याचल जिसकी कटि है और जिसकी महानता, गौरव का गान करता हुआ सागर सदैव उसके चरणों में लोटता रहता है। भारत की शस्य श्यामला धरती, इसके हरे-भरे खेत निरन्तर अपनी लहरों में क्रीड़ा करने वाले नद, नदी तथा झरने अपने जल से जहाँ जीवन का संचार करते रहते हैं, ऐसी सरसता, प्रसन्नता और सुन्दरता से पूर्ण धरती वाला भारतवर्ष विश्व को अपनी ओर आकृष्ट करता है। भारत की जनता के कोटि-कोटि हाथ सर्वदा विश्व-कल्याण में लीन रहते है और उनके असंख्य चरण निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होते रहते हैं। जिनकी गति में कहीं भी शिथिलता नहीं आती, जिनका

लक्ष्य ध्रुव के समान अटल और अडिग है। ऐसे महान भारत की जय हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने 'सुजलां सुफलां शस्य श्यामला' भारतभूमि को शब्द-चित्रों में प्रस्तुत किया है। भारत के भौगोलिक सौन्दर्य और ऐतिहासिक महानता को अत्यन्त संक्षेप में कवि ने साकार कर दिया है। वस्तुतः अध्यात्मवादी भारत ने ही वैयक्तिक जीवन के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसके समक्ष जीवन का ध्रुवलक्ष्य प्रस्तुत किया है। उसकी अभिव्यक्ति करते हुए कवि की आस्था पूर्ण भावुकता में मुखरित हो उठी है।

(२) अलंकार—(i) जय जन भारत—अनुप्रास।
(ii) गौरव भाल ' गात—मानवीकरण।
(iii) हरे खेत···शोभा उर्वर—श्लेष।
(iv) जय जन···ध्रुव पथ पर—सांग रूपक।

प्रथम सभ्यता·····························लौह भुज उठे।

शब्दार्थ—ज्ञाता=जानने वाले। साम=सामवेद। अधिष्ठाता=स्वामी। प्रयाण=प्रस्थान। तूर्य=तुरही। पटह=नगाड़े। सैन्य=सेना।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'भारतगीत' से अवतरित है। इसमें कवि भारतवर्ष को सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान और विज्ञान का उद्गम स्थल मानते हुए उसकी विजय कामना करता हुआ कहता है :

व्याख्या—भारतवर्ष को ही संसार में सर्वप्रथम सभ्यता का ज्ञान हुआ था। सृष्टि के प्रथम प्रभात की किरणों से आलोकित भारत में ही सर्वप्रथम मानवता का जन्म हुआ था। यहीं पर दैवी ज्ञान सम्पदा का वैदिक संगीत में प्रस्फुटन हुआ था। वेदों ने मनुष्य को जो ज्ञान प्रदान किया, उसी का गौरव गान आज भी वैदिक ऋचाओं में प्रतिध्वनित होता है। भारतवर्ष ही नव-मानवता को जन्म देने वाला देश है। इसी ने संसार को सत्य अहिंसा के पवित्र संदेश दिये हैं। केवल उपदेश ही नहीं, अपितु अपने आचरण से भारतवर्ष ने संसार को सत्य, अहिंसा जैसे मानवीय आदर्श प्रदान किये हैं। विश्व भर में शांति की प्रतिष्ठा करने का श्रेय भी भारतवर्ष को है ऐसे महान भारत की सदा-सर्वदा जय हो। आज भी भारत की विशाल सेना सत्य और न्याय की प्रतिष्ठा के लिए अत्याचार असत्य और अन्याय का शमन करने के लिए आगे बढ़ रही है। कवि की एक ही आकांक्षा है कि भारतीय सेना के प्रस्थान काल की तुरही बज उठे, उसके नगाड़ों की गहन गम्भीर ध्वनि अत्याचारी और अन्यायी को कम्पित कर दे,

सैनिकों की बलिष्ठ लोहे के समान बाँहें सत्य की रक्षा और प्रसार के लिए दुष्टता का संहार करने को तत्पर हो उठे।

विशेष—(१) इन पक्तियों में कवि ने भारत का गौरव गान करते हुए ऐतिहासिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति की हैं। भौगोलिक, ऐतिहासिक सामाजिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक दृष्टिकोण इस बात के साक्षी है कि भारत ही विश्व का प्राचीनतम देश है, यही से विश्व को जीवन की विविध ज्ञान सरितायें प्राप्त हुई। भारतीय लोगों ने अपने आचरण से दूसरों को सत्य, समता और न्याय का परिचय दिया है। आज भी हमारा दृष्टिकोण अपनी परम्परा से विमुख नहीं, ऐसी भावना को ही कवि ने शब्दों में व्यक्त किया है।

(२) **अलंकार**—(i) प्रथम सभ्यता···अधिष्ठाता—उल्लेख।
(ii) जय हे···अधिष्ठाता—पुनरुक्ति।
(iii) प्रयाण तूर्य···भुज उठे—रूपक।

शक्ति स्वरूपिणी·····························अजय त्राता।

शब्दार्थ—धारिणी=धारण करने वाली। रक्षित=सहित। अपराजित=न हारने वाला। त्राता=रक्षक।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण 'भारत गीत' का अन्तिम अंश है। भारतवर्ष की महानता, व्यापकता और गौरव गान करते हुए कवि उसकी मातृ रूप से वंदना करने लगता है। राष्ट्रभावना से ओत-प्रोत कवि भारत माता की प्रार्थना में कहता है :

व्याख्या—हे भारत माता ! तुम साक्षात् शिव स्वरूपा माँ दुर्गा हो। तुम्हारा बल अनेक प्रकार का है। आध्यात्मिक एवं भौतिक शक्तियों से सम्पन्न भारतमाता सम्पूर्ण विश्व तुम्हारी वंदना करता है। अनादिकाल से तुमने विश्व का भरण-पोषण और रक्षण किया है। आज भी तुम्हारा तिरंगा ध्वज अशोक के धर्म चक्र से युक्त होकर आकाश में फहरा रहा है। यह ध्वज सदा अपराजेय है। विश्व को अभय का वरदान देने वाली माँ तुम्हारी संतान अजेय है, संतान अजेय हैं, तुम्हारा ध्वज सदा-सर्वदा तुम्हारी संतान का रक्षक है। जिसे कोई झुका नहीं सकता, पराजित नहीं कर सकता—उस भारतमाता की जय हो।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने देश प्रेम, आत्म त्याग तथा अतीत गौरव के साथ भविष्य के प्रति अपने विश्वास को सफल अभिव्यक्ति दी है।

'वन्देमातरम' का पूर्ण प्रभाव इन पंक्तियों में दिखाई देता है, जबकि कवि भारत माता के व्यक्तित्व को सर्वगुण सम्पन्न और शक्ति शाली रूपों में चित्रित करता है।

(२) अलंकार—(i) शक्ति स्वरूपिणी···भारत माता—उल्लेख।
(ii) धर्म चक्र···फहराता—मानवीकरण।
(iii) जय हे···आता—पुनरुक्तिप्रकाश।

...: ० :...

गीत विहग

कविता परिचय—'गीत विहग' कविता की रचना सन् १९४८ में हुई थी। जिस प्रकार 'पल्लव' को छायावाद का 'मैनी फैस्टो' कहा जाता है उसी प्रकार 'गीत विहग' कवि की चिंतनप्रधान मानवतावादी काव्यधारा की भूमिका है। इसमें कवि अपने को गीतविहग मानकर अपने काव्य का प्रतिपाद्य वर्णन करता है। पक्षी अनन्त आकाश में उड़ते हुए अपने कलरव से दिशाओं को संगीतमय बना देता है। उसके गीतों से प्रभात की सूचना मिलती है। इसी प्रकार कवि भी अपने गीतों के माधुर्य और संगीत से न केवल सरसता प्रदान करता है अपितु नवमानवता का संदेश सुनाकर स्वाधीन लोक जीवन के गौरव की वृद्धि भी करता है। यह कविता पंत जी के आत्म-चिन्तन का प्रतिनिधित्व करती है, इसीलिए इसे 'उत्तराकाल' की कविता भी माना गया है।

मैं नव मानवता·························· पल्लव सुलगाता।

शब्दार्थ—गौरव=महिमा। मन.क्षितिज=मन रूपी आकाश। शाश्वत=चिरन्तन। प्रज्वलित=जलती हुई। ज्योतिवाह=प्रकाश वहन करने वाला। नभ=आकाश। नवमधु=नवीन वसन्त।

प्रसंग—'गीत विहग' के प्रस्तुत अवतरण में कवि अपने को ही गीतविहग मानकर अपने काव्य का लक्ष्य प्रकट करता है। विषमताओं समस्याओं से नष्टप्राय: जीवन में अपनी कल्पना से स्वर्णिम संदेश देकर नवीन मानवता का निर्माण करने का निश्चय इस प्रकार पद्यांश में अभिव्यक्त हुआ है। कवि कहता है:

व्याख्या—आज मैं संसार को नवीन मानवता का सदेश सुनाने आया हूँ, जिसमें किसी प्रकार का अभाव, हीनता अथवा निराशा न हो। आज संसार का जीवन स्वतन्त्र है, उस पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं। मैं उसी चैतन्य-पूर्ण लोक-जीवन की महिमामयी कहानी अपने गीतों में सुनाता हूँ। कवि उस शाश्वत मौन अनिर्वचनीय अनन्त शक्ति, जो सामान्य मनुष्य के मन की कल्पना से परे है, जो अपने आलोकमय रूप में सदा प्रकाशवान रहती है, उसका ज्योति-वाह बनकर संसार को वह अनन्त प्रकाश देने वाला बन जाता है। वह उस अलौकिक दिव्यातिदिव्य प्रकाश की स्वर्णिम् किरणों को इस नष्टप्राय: संसार पर फैला देना चाहता है। भौतिक आकांक्षाओं अथवा रूढ़िगत अंधविश्वासों के कारण वर्तमान युग जीवन को उस आध्यात्मिक ज्ञानालोक से प्रकाशित करने की इच्छा रखता है। जिस प्रकार प्रभात-किरणें आकाश को आनन्द और सौन्दर्य से भर देती हैं उसी प्रकार कवि भी अपने नवीन जीवन-दर्शन से संसार को सुख, सौन्दर्य और आनन्द से भर देना चाहता है। कवि कहता है कि आज प्रत्येक व्यक्ति का मन नाना प्रकार के संघर्षों, अज्ञान, विषमता आदि से पतझर के सूखे वृक्षों के समान हो गया है। उसमें किसी प्रकार के जीवन-चेतना के लक्षण नहीं रहे। मैं उनके मन में नवीन मानवता और उनकी भावनाओं की सरसता से युक्त ऐसी जीवन-शक्ति भर रहा हूँ जो वसन्त-कालीन पल्लवों की तरह सरस और उत्कर्षपूर्ण हो। वसन्त आती है तो प्रकृति के कण-कण में नवीनता का संचार होता है। पल्लवों की लालिमा में शक्ति तथा हरीतिमा में सरसता साकार होकर उसे फिर से फल-फूलों से आपूर्ण कर देती है, उसी प्रकार इस नष्टप्राय: समाज को अपनी कल्पना, जीवनादर्श तथा उत्कर्ष विधायक चिन्तन से शक्ति सम्पन्न बनाना ही मेरे गीतों का लक्ष्य है।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि का आध्यात्मिक चिंतन और सामाजिक जीवन से उसका समन्वय सरस और प्रभावशाली रूप में हुआ है। कवि स्वतन्त्र देश को इस आध्यात्मिक चेतना से युक्त कर देना चाहता है जो अलौकिक अदृश्य होकर भी शाश्वत जीवन-शक्ति है। युग को खण्डहर तथा मानव मन को पतझर के रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि ने अत्यन्त संक्षेप में जीवन की सम्पूर्ण विषमताओं को साकार कर दिया है।

(२) **अलंकार**—(i) स्वाधीन ''गाथा गाता—अनुप्रास।

(ii) 'मन:क्षितिज', 'नवप्रभात के नभ', 'जीवन-पतझर' रूपक।

(iii) 'मैं नवमधु···सुलगाता'—विरोधाभास।

(iv) सम्पूर्ण पद में उल्लेख।

आवेशों से······························वक्ष दिखाता।

शब्दार्थ—आवेशों=जोश। उद्वेलित=लहराता हुआ। ज्वार=बाढ़; लहर। शिशिर-क्रान्त=शिशिर से रौंदा हुआ। पिक=कोयल। पावक=अग्नि। भव-क्लान्त=दुःखी संसार। तापों=दुःखों। कलुषित=कालिमा युक्त। उन्मुक्त=स्वतन्त्र।

प्रसंग—'गीत विहग' के प्रस्तुत अवतरण में कवि अपने क्रांतिकारी विचार व्यक्त करता है। नवयुग के द्वार पर खड़े मानव-समाज के मन में महत्त्वाकांक्षाओं के स्वप्न जगाकर कवि उसे सब प्रकार के दुःख-निराशा, अकर्मण्यता तथा पराधीनता आदि से पूर्णतया मुक्त कर देना चाहता है। पंत जी के इन क्रान्तिकारी विचारों में उनकी सहज सौम्यता और कोमलता में कमी नहीं आ सकी।

व्याख्या—जिस प्रकार सागर हर समय तरंगित रहता है उसी प्रकार आज का मानव मन, नवयुग के द्वार पर खड़ा होकर नवीन आदेशों और भावों से प्रेरित है, उसके मन में अनेक प्रकार के सुख-स्वप्न उत्साह का संचार कर रहे है किन्तु मै उनमें महत्त्वाकांक्षाओं, आदर्शों तथा उत्कृष्टतम स्वप्नों का ज्वार भर देना चाहता हूँ, जिससे नव-निर्माण के लिए तीव्रता और शक्ति दोनों में वृद्धि हो। जब तक स्वप्नाकांक्षाओं की पूर्ति में तीव्रता नहीं होगी तबतक संसार पूर्ण सुखोपभोग से वंचित रहेगा। जिस प्रकार शिशिर ऋतु वन की हरीतिमा को रौंद देती है, उसकी शोभा-सुन्दरता क्षीण हो जाती है, उस समय सम्पूर्ण वन एक करुण चीत्कार कर उठता है। ऐसे वातावरण में कोयल का मधुर और मादक स्वर उसमें सरस संगीत का संचार कर देता है। इसी प्रकार मानव का मन अनेक संघर्षों, दुःखों, अभावों से मर्दित हो चुका है। उसके चारों ओर निराशा और करुणा व्याप्त है। मै कोयल से कमनीय और मधुर गीत गाकर मन-मन को फिर से जीवन संगीत की याद दिलाता हूँ। आज तक संसार उस पृथ्वी पर अपने मिट्टी के पैरों से चलते-चलते थक चुका है। भौतिक संसार

और उसके संघर्षों से खिन्न और थका हुआ मानव आगे चलने में असमर्थ-सा हो गया है। मैं उसे उदात्त स्वप्नों के चरणों से चलना सिखाता हूँ। जीवन को अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक मान्यताओं का आधार देकर आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करना चाहता हूँ। दैहिक, दैविक और भौतिक तपों से अभाव, अज्ञान, शोषण, अंधविश्वास, अकर्मण्यता आदि के दुखों से आज के मानव का मन निराश और कलुषित हो चुका है। वह अपने तक सीमित रहने के कारण आगे बढ़ने की बात सोचता भी नहीं; मैं उसके समक्ष प्रकृति के इस अनन्त, स्वतन्त्र तथा नानाविध सौन्दर्य से युक्त रूप को प्रस्तुत करते हुए उसे जीवन के प्रति आसक्त, उत्साहित तथा प्रेरित करना चाहता हूँ ताकि वह भी उसी के समान शोभा और सौन्दर्य-युक्त हो सके।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने विविध रूपकों के माध्यम से जीवन के वर्तमान और भावी स्वरूप की तुलना की है। जन-सागर में शिखरों के ज्वार, रोदन करते हुए भू-मन में 'प्राणों का पावक' तथा क्लान्त जनों को 'स्वप्नों के चरणों पर' चलाना आदि में कवि की कल्पना और उसके जीवन-दर्शन की सरस अभिव्यक्ति हुई है। प्रकृति के खुले वक्ष को लेकर कुछ विद्वान अश्लीलता का आरोप करते है, किन्तु यही ध्यान रखना होगा कि कवि का तात्पर्य प्राकृतिक शोभा, सुन्दरता और उन्मुक्तता से है, किसी प्रकार के मांसल शरीर का वर्णन करने से नही।

(२) अलंकार—(i) 'आवेशों···बरसाता'—रूपक।
(ii) 'जन शिशिर···भूमन'—अनुप्रास।
(iii) 'स्वप्नों के ··सिखलाता'—रूपकातिशयोक्ति।
(iv) 'उन्मुक्त प्रकृति···दिखाता'—मानवीकरण।

जीवन गत के ······························ शंख बजाता।

शब्दार्थ—मति=बुद्धि। अनिमेप=एकटक; लगातार। बहिर्मुख=बाहर देखने वाला। सोपानों=सीढ़ियों। ऊर्ध्व=ऊपर। दग्ध=जला हुआ। स्वर्गंगा=आकाश गंगा। स्मित=मुस्कान। अन्तर्पथ=आत्मिक मार्ग।

प्रसंग—अपने को गीत-विहग मानते हुए पंत जी ने अपने काव्य को भेद-बुद्धि से विभाजित तथा आत्मविस्मृत समाज की एकता तथा विकासोन्मुखता का आधार मानते हुए कहा है।

व्याख्या—आज मनुष्य-समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित हो चुका है।

वर्ग, वर्ण, जाति, राष्ट्र आदि वर्गों अथवा राजनीतिक, सामाजिक, मान्यताओं के कारण उसकी बुद्धि और चेतना सुप्तप्राय: हैं। उस सुप्तज्ञान चेतना को जगाने के लिए मैं निरन्तर आध्यात्मिकता एकता का प्रचार-प्रसार करता रहता हूँ। आज के मानव का मन और बुद्धि अज्ञान रूपी अंधकार के कारण अपनी आत्मिक एकता को समझने में असमर्थ है उसकी बौद्धिक चेतना अपने बहिर्मुखी दृष्टिकोण के कारण बिखर-सी गयी। मैं उस चेतनाशक्ति को रूढ़ियों के सहारे जीवन के ऊर्ध्वतम शिखर तक ले जाने का प्रयास करता रहता हूँ। आदर्शों की मृगमरीचिका के कारण भटकते हुए मानव का मन वैसा ही संतप्त है जैसा कि मरुस्थल में सुदूर झलकते रेत की छाया को पानी समझ कर ढूंढने वाले मृग संतप्त हो जाते हैं। बाह्याधारों पर आधारित विविध भौतिक मान्यताओं से हटा कर मैं मनुष्य को उस सुन्दर, सरस एवं आकर्षक आध्यात्मिक पक्ष की ओर ले जाना चाहता हूँ जो आकाश-गंगा के समान सरस और आनन्दपूर्ण है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को नवीन मानवता का सदेश देते हुए मैं सभी प्रकार की जड़ताओं से मुक्त स्वर में जीवन संग्राम का शंख बजाकर सभी को स्वाधीनता का प्रेरणा देता रहता हूँ।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि भौतिकवादी दृष्टिकोण में ही विषमताओं का मूल स्वीकार करते हुए आध्यात्मिकता को विश्व मानवता की एकता तथा उन्नति का आधार मानता है। दार्शनिक मतों में संसार को मिथ्या एवं यहाँ की इच्छाओं को मृग तृष्णा ही स्वीकार किया गया है। पंत जी ने इसी को श्री अरविद दर्शन के सौन्दर्य में यहाँ प्रस्तुत किया है।

(२) **अलंकार**—(i) जीवन मन'''ऊर्ध्व चढ़ाता'—अतिशयोक्ति।
(ii) 'आदर्शों के'''मृगों को'—विरोधाभास, रूपक।
(iii) जन जन'''जाग्रत कर'—अनुप्रास, पुनरुक्ति।

मैं गीत विहग..................................जागरण गाता।

शब्दार्थ—मर्त्य=नश्वर। अंतर=हृदय। स्वर्णिम=सुनहरा। स्वदूतों=स्वर्ग के दूत। धरणी=पृथ्वी। विभव=सम्पदा। अमरासन=मुक्ति; अलौकिक आसन। नव्य=नवीन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण 'गीत विहग' कविता का अन्तिम अंश है। इसमें कवि ने गीत विहग के रूप में अपना परिचय तथा कार्य का महत्त्व प्रतिपादित

किया है । अपने गीतों से मनुष्य जीवन को मुक्ति, अमरता और सांसारिक भेद-भावों से ऊपर उठाकर नवीन जागरण का संदेश देने वाला कवि कहता है :

व्याख्या—मैं वह गीत रूपी विहग हूँ जो इस नाशवान् शरीर रूपी घोंसले से उड़कर उस अनन्त चेतनायुक्त परमशक्ति के स्वतन्त्र आकाश में विचरण करता हूँ। भौतिकता और अज्ञान के कारण सांसारिक जीवन पर अंधकार छाया हुआ है किन्तु मैं अपने आत्मिक प्रकाश से, ज्ञानालोक से उस अंधकार को स्वर्णिम प्रकाश से भर देता हूँ। अपने मन में उठने वाले भावों, जो सांसारिक विषमताओं, बंधनों से सर्वथा मुक्त है, के सौन्दर्य और सरसता में स्वर्ग के दूतों को बांधकर उन्हें सामान्य जनजीवन का अंग बना देता हूँ । स्वर्ग के काल्पनिक सुख तथा ऐश्वर्य को अपनी वाणी के माध्यम से धरती पर उतार देता हूँ जिससे प्रत्येक मनुष्य धरती पर ही स्वर्ग-सुख का भोग कर सके । मैं मानवता को प्यार करता हूँ; इस धरती पर ही एक नवीन स्वर्ग का निर्माण ही मेरा उद्देश्य है । मैं सामान्य जनता और उसके जगत् पर देवताओं का ऐश्वर्य भी न्यौछावर करता हूँ । यह मानवता, यह धरती मुझे स्वर्ग से भी उत्तम प्रतीत होती है । प्रत्येक मनुष्य जन्म और मृत्यु के चक्र में पिसता रहता है किन्तु मैं उसे बंधनों से पूर्णतया मुक्त करके एक ऐसा दिव्य आसन प्रदान करता हूँ, जहां चिरन्तन आनन्द का आभास होने लगता है । मैं अपने गीतों में ऐसी ही दिव्य चेतना का सदेश देता रहता हूँ जो इस स्वतन्त्र देश में नवजीवन की जागृति ला सके । धरती को स्वर्ग बना सके ।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में पंत जी ने कल्पना, सौन्दर्य-प्रेम तथा मानवतावाद के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । कवि कल्पना-लोक में विचरण करता हुआ जीवन में सौन्दर्य और सरसता का संचार करता है, जिससे सामान्य मानव असीम आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता है । इसी भाव-सौन्दर्य से कवि जनजीवन को आह्लादित तथा अनुप्राणित करते हुए जीवन में जागृति लाता है । यहाँ कवि ने धरती और इसके वासियों को स्वर्ग-सुख देने का निश्चय व्यक्त किया है जिसे अरविंद दर्शन की देन कहा जा सकता है ।

(२) अलंकार—(i) 'मैं गीत . फैलाता'—रूपक ।

(ii) 'मैं अपने···नहलाता'—रूपकातिशयोक्ति ।

(iii) 'मैंने मानव···लुटाता'—व्यतिरेक ।

·········

संशय आदि से आच्छादित था, किन्तु अब उसमें चेतना का स्वर्णिम प्रकाश फैल रहा है। जिस प्रकार सूर्य की रश्मियों से अलंकृत होकर झरनों का कलगान और भी आकर्षक हो जाता है उसी प्रकार आत्मिक चेतना से युक्त मानव-मन भी सगीतमय होकर अभिव्यक्ति होने लगा है। भौतिक जगत में सूक्ष्म आत्मशक्ति के अवतरित होने के कारण मन रूपी आकाश में मधुर सगीत गुंजित होने लगा है। लोक चेतना के इस युग में अंधकार और प्रकाश के समान मानव की सुख-दुखात्मक अनुभूतियों का परस्पर मिलन हो रहा है। अज्ञान का अंधकार ज्ञान रूपी प्रकाश मे मिलता जा रहा है। यह युग इतना आकर्षक और भव्य हो गया है कि स्वर्ग के देवता भी मानव शरीर धारण करने को उत्सुक हो रहे है। ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के भौतिक सौन्दर्य और भावात्मक दिव्यता के कारण स्वर्ग और धरती परस्पर आलिंगन कर रहे है। कहीं भी विषमता और भेद नही रहा।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में प्राकृतिक उपकरणों में मानवीय भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति हुई है। 'छविज्वाल पल्लवित' में नवीन भावों की कोमलता, सजीवता और शक्तिमत्ता की, विकसित पुष्पों में देवताओं के आशीर्वाद की, झरनों के संगीत में जीवन की गतिशीलता और मधुरता की तथा प्रकाश और तम के मिलन मे जीवन के परस्पर विरोधी तत्वों, वर्गों और भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में कवि को पूर्ण सफलता मिली है।

(२) अलंकार—(i) 'वज रहे ··तरुदल'—उपमा।
(ii) 'छवि-ज्वाल···जीवन'—विशेषण विपर्यय।
(iii) 'नव ज्योति···सृजन'—रूपक।
(iv) 'फिर मौन···अम्बर'—विरोधाभास।
(v) 'बंधता प्रकाश···परिरम्भण'—उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति।

············

युगदान

कविता परिचय—'युगदान' कविता की रचना सन् १९४९ में हुई। यह एक चिन्तन प्रधान रचना है। इसमें कवि मानव-जीवन के बहुमुखी विकास की आकांक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है। युग मानवता में व्याप्त विविध

विषमताओं, दुर्बलताओं और मानव स्वभाव जन्य स्वार्थ और कठोरता आदि को समाप्त करके कवि विश्व-जीवन को देवत्व का स्वरूप देना चाहता है। अपने आध्यात्मिक विश्वास के कारण कवि उस स्वर्णिम भविष्य में आस्था रखता है जहाँ किसी प्रकार का द्वन्द्व, द्वेष अथवा दुविधा न होगी, जहाँ मनुष्य मनुष्य से प्रेम करता हुआ दिखाई देगा, जहाँ धरतीवासी स्वर्गीय सुख-सौंदर्य और सुषमा का आस्वादन कर सकेगा।

जीवन चाहों........ ....तुम्हारा लोकोत्तर।

शब्दार्थ—नित नूतन=नित्य नया दीखने वाला। अमर=शाश्वत। भव=संसार। व्यथा=पीड़ा। क्लान्त=पीड़ित। लोकोत्तर=अलौकिक।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'युगदान' कविता से उद्धृत है। इसमें कवि ईश्वर अथवा उसकी शक्तियों को अपने जीवन में भरकर सम्पूर्ण मानवता को उस अमरत्व का दर्शन करवाना चाहता है। उस संगीत की मादकता में मग्न कर देना चाहता है जो नित्य शुद्ध, प्रबुद्ध होकर भी नित्य नवीन अनुभव होती है। कवि कहता है :

व्याख्या—हे प्रभु! तुम्हारे शाश्वत सौन्दर्य को, जो संसार व्यापी होकर भी हर समय अपना रूप-परिवर्तन करना चाहता है, मैं अपनी जीवित स्वास्थ और माँसल भुजाओं में भर लेना चाहता हूँ। मैं उस लीला-पुरुषोत्तम के अमित सौन्दर्य को अपने जीवन का अंग बनाकर उसे सम्पूर्ण मानवता में व्याप्त कर देना चाहता हूँ, जिससे वह भी उस अमर सौन्दर्य का आस्वादन कर सके। कवि ईश्वर के उस अमर संगीत को प्रत्येक व्यक्ति के मन में भर देना चाहता है, जिसकी मधुरता और सरसता से देवता भी मग्न हो जाते हैं। उस अमर सौन्दर्य और अमिट संगीत की मादकता का प्रभाव ही जीवन को सभी प्रकार की विषमता और निराशा से बचा सकता है। वह चाहता है कि साँसारिक विषमताओं, दैहिक, दैविक तथा भौतिक संतापों से संतप्त मानव के हृदय में उस परम शक्ति का चिरन्तन आनन्द व्याप्त हो जाये, जिससे विश्व का जीवन उस दिव्य और अलौकिक शक्ति से संयुक्त होकर जीवन की सामान्य धरती से उन्नत हो सके। जिस दिव्य सौन्दर्य और शक्ति को अभी तक दार्शनिकों ने अगम, अव्यक्त और अनिर्वचनीय माना था, उसे ही मानव-जीवन के साथ मिलाने की इस भावना का आधार अरविन्द दर्शन है, जिसको कवि ने विश्व-मानवता के सर्वांगीण विकास का चरमोत्कर्ष स्वीकार किया है।

विशेष—(१) इन पंक्तियों मे कवि ईश्वरीय सौन्दर्य और संगीत को मानवता का अंग बना देने की इच्छा को व्यक्त करता है, जिससे कवि की आध्यात्मिक मान्यताओं तथा सामाजिक लक्ष्यों का परिचय मिलता है। दार्शनिक चिन्तन के गूढ़ रहस्यों को भावात्मकता सरसता प्रदान करने में कवि पंत को विशेष सफलता मिली है।

(२) अलंकार—(i) जन मन में···सुरमादन—अनुप्रास।
(ii) आनन्द तुम्हारा···के भीतर—रूपक।

करुणा धारा·······································को भू पर।

शब्दार्थ—निर्मम=कठोर। अन्तर=हृदय। उर्वर=उपजाऊ। संयुक्त=मिले हुए। मनोमुक्त=मन से मुक्त। शनैः=धीरे-धीरे। गोपन=गुप्त। स्पृहा=इच्छा।

प्रसंग—'युगदान' कविता के प्रस्तुत अवतरण में कवि मानव-जीवन में व्याप्त कठोरता, स्वार्थपरता तथा संकीर्णता आदि को समाप्त करके जीवन में करुणा, उदारता, कर्मठता आदि का प्रसार करना चाहता है। मनुष्य को सामान्य धरातल से उठाकर उसे देवत्व की अनुभूति करवाना चाहता है। वह कहता है :

व्याख्या—आज नाना प्रकार के संघर्षों, अभावों तथा अंधविश्वासों से जूझते हुए मनुष्य की मनोभूमि अत्यन्त कठोर, खुरदरी और बंजर-सी हो गयी है। मानव-मन अपने संकीर्ण घेरों में इतना सिमट गया है कि उसमें दूसरों के लिए दया, उदारता तथा सहानुभूति का सर्वथा अभाव है, कवि इसमें ईश्वरीय करुणा का रस-प्लावित कर देना चाहता है जिससे मन की कठोरता और संकीर्णता समाप्त हो तथा नित नवीन भावों के लिए एक उर्वरा धरती प्राप्त हो सके। उसमें नाना प्रकार के भावांकुर फूटे, फले, विकसित हो। अभी तक संसार के व्यक्ति अपने-अपने कर्म का फल स्वयं ही पा लेना चाहते थे किन्तु कवि चाहता है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति आज मिलकर जीवन के सभी कार्य करे और वे सभी कार्य तथा उनका फल उस ईश्वरीय अथवा उसके प्रतीक समाज को समर्पित हो जाये। सामूहिक श्रम और उद्योगों के कारण ही विश्व-जीवन विकास कर सकता है। आज मन को कुंठित तथा अवरुद्ध करने वाले अंधविश्वास तथा रूढ़ियाँ समाप्त हो रही है, परिणामस्वरूप मानव-मन की ग्रथियाँ खुलती जा रही है। इससे मानवता धीरे-धीरे मन की ग्रन्थियों से मुक्त होते हुए देवत्व में परिणत हो रही है। विश्व-मानवता के मन में इस पृथ्वी पर विचरण करने की

प्रबल आकांक्षा थी, किन्तु उसके मानसिक बंधनों ने इस प्रकार जकड़ा हुआ था कि अपनी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता था। आज वही गुप्त आकांक्षा फिर से जाग उठी है और मानव इस धरती पर ही स्वर्ग निर्माण करने को तत्पर हो गया है। आज उस पर किसी प्रकार का बंधन न होने के कारण इच्छाएँ भी पूर्णतया मुक्त होकर विचरण कर रही है।

विशेष—(१) इन पंक्तियों मे मानव-मन की कुण्ठाओं—आशा-आकांक्षाओं का चित्रण करते हुए पंत जी ने मनोविज्ञान तथा दर्शन की गूढ़ मान्यताओं को सरस रूप प्रदान किया है। कुण्ठाओं को मानव-जीवन का बंधन तथा उनसे मुक्ति में ही देवत्व की प्रतिष्ठा करने के अतिरिक्त पंत जी ने धरती को ही स्वर्ग में बदल देने की जिस इच्छा की अभिव्यक्ति की है, वह अपने आप में रोचक, प्रेरक और शक्ति सम्पन्न भी है। कवि ने इन सभी स्थितियों की जैसी रूपरेखा प्रस्तुत की है, उनसे कवि की कल्पना और प्रतिभा का उत्कर्ष प्रकट होता है।

(२) अलंकार—(i) 'करुणाधारा···हो उर्वर'—रूपक।
(ii) देवत्व रहा···निखर—अनुप्रास।
(iii) भू मन की···भू पर—मानवीकरण।

यह अंधकार का ························शोभा में चेतन।

शब्दार्थ—प्रहर=समय। द्रवित=तरल। जड़ भूत=निष्प्राण। अभिशापित=शापग्रस्त। मादन=उन्मत्त करने वाला। चेतन=प्राणवान।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अज्ञान और अकर्मण्यता के अन्धकार में से नवीन ज्ञान और कर्मण्यता युक्त जीवन के उदय और विकास का चित्रण किया है। भौतिक जीवन में आध्यात्मिक शक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते, हुए कवि कहता है:

व्याख्या—अभी तक मानव-जीवन विगत युग के अज्ञान, अंधविश्वास और अकर्मण्यता के अंधकार में घिरा हुआ था, इसके कारण उसे जीवन में लक्ष्य का भान भी नहीं हो रहा था। किन्तु, अब हृदय की चेतना-शक्ति के कारण वह घोर अंधकार विगलित होने लगा है। भौतिकवादी जीवन का संघर्ष और स्वार्थ आध्यात्मिक चिंतन के कारण शांति और उदारता में परिणत हो रहा है। विश्व की जड़ शक्तियाँ—भौतिक पदार्थ अभी तक शापग्रस्त होकर निष्क्रिय अथवा विनाशक बनी हुई थीं; उनमें भी चेतना का संचार होने लगा है। चिन्तनधारा

ने उन्हें जीवन की कर्मशीलता और निर्माण-शक्ति में बदल दिया है। जिस प्रकार वृक्ष पुष्प मण्डित मुकुटों से शोभित होते हैं, तो उन पुष्पों की मादक सुगंध स्वतः ही वायु में व्याप्त होकर जीवन में सरसता का सचार कर देता है, उसी प्रकार मानव-मन में चेतना का उदय होने के साथ ही जीवन और प्रत्येक व्यक्ति के हृदय से उस परमसत्ता की सम्पूर्ण शाश्वत-शोभा सुन्दरता और सुषमा स्फुरित होने लगी है। आत्मिक चैतन्य प्राप्त कर लेने पर जीवन में किसी प्रकार की हीनता, अज्ञान, अंधविश्वास आदि नहीं रह पाते। सम्पूर्ण जीवन ही उस चेतना का प्रतिरूप हो जाता है।

विशेष—(१) इस अवतरण में कवि पंत ने भौतिकवादी जीवन-दर्शन पर आध्यात्मिक चिन्तन की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। अरविंद दर्शन में जीवन को जिस स्तर तक ले जाने का संकेत है, उसके आधार को इन पंक्तियों में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। भौतिक मान्यताएँ अथवा आसुरी शक्तियाँ जीवन को अज्ञान, निराशा, हिंसा अथवा संकीर्णता के अंधकार मे ले जाती हैं किन्तु आध्यात्मिक चेतना सचराचर सृष्टि को पूर्ण आनन्द और सौन्दर्य, सुषमा-मंडित जीवन की ओर ले जाती है। इसी तथ्य को कवि ने अंधकार और प्रकाश का रूप देकर चित्रित किया है।

(२) कवि पंत ने यहाँ युग का मानवीकरण कर दिया है।

(३) प्रस्तुत कविता में 'युग-दान' तथा 'युग को दान' दोनों का ही सफल चित्रण किया है।

(४) प्रस्तुत कविता में कवि ने आद्यान्त मानवतावादी दृष्टि बनाये रखी है।

> अब मनुष्यत्व से मनोमुक्त,
> देवत्व रहा रे शनैः निखर,
> भू-मन को गोपन स्पृहा-स्वर्ग,
> फिर विचरण करने को भू पर।

(५) अलंकार—(i) यह अंधकार···द्रवित—अनुप्रास, मानवीकरण।

(ii) फिर मानवीय···अभिशापित—विरोधाभास।

(iii) तरुओं के···चेतन—दृष्टान्त।

············

नमन

कविता परिचय—'नमन' कविता कवि के अध्यात्म-काल की रचना है। इसकी रचना सन् १९४९ में हुई थी जबकि कवि पंत पूर्णतः अध्यात्मवादी रचनाएँ करने लगे थे। प्रस्तुत कविता में कवि जगजीवन के जीवन को नमन करता हुआ मंगल-कामना तथा मानव द्वारा युगानुकूल आचरण की याचना करता है। भाव और कला का 'नमन' कविता में सुन्दर सामंजस्य हुआ है।

नमन तुम्हें करता..................................युग नूतन

शब्दार्थ—नमन=नमस्कार। प्रीति=प्रेम। उर=हृदय। स्पन्दन=संवेदना युक्त कंपन। तुहिन=ओस-बिन्दु। वारिज=कमल। लोचन=नयन। पावन=पवित्र। अन्तर=हृदय। अरुणोदय=उषाकाल। नूतन=नवीन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि जगजीवन के जीवन-अन्तर्भूत चेतना, की अर्चना करता हुआ उसे जन-कल्याण के लिए कहता है:

व्याख्या—हे जग के जीवन के जीवन अर्थात् जग-जीवन की अन्तर्भूत चेतना! मेरा मन तुम्हें नमन करता है। मेरा मन अपने हृदय में मौन प्रेम की भावना को धारण कर तुम्हे स्मरण करता है। मेरे पास तुम्हारी स्मृति के लिए—स्तुति के लिए अधिक शब्द नही है; इसलिए मेरी मौन प्रीति का नमन ही स्वीकार हो। मेरे मन की दशा इस समय बड़ी विचित्र है। मेरा मुख अब अश्रुओं से सजल है और मेरे कमल-नयन अश्रु वाष्पों से तरल है। मै अश्रुपूर्ण नेत्र लिए, हृदय तुम्हारी स्मृति से पवित्र करके तुम्हें अपना सर्वस्व समर्पण करता हूँ। हे युगजीवन के जीवन! मेरा समर्पण स्वीकार हो।

मेरा तुम से नम्र निवेदन है कि तुम हृदय-पथ से आओ और चिर-श्रद्धा रूपी रथ पर आरूढ़ होकर आओ ताकि मै तन मन से तुम्हारा स्वागत कर सकूँ। हे युगजीवन के जीवन। अपने साथ जीवन का अरुणोदय अर्थात् नयी आशाएँ, संवेदनाएँ, सम्भावनाएं भी लाओ। नया प्रभात और नया युग भी लाओ, ताकि सब कुछ सुन्दर हो उठे, आलोकित और प्रकाशित हो उठे।

विशेष—(१) कवि की कल्पना नव-युग निर्माण की है, जिसके लिए वह युगजीवन की अन्तर्चेतना को उसी रूप में देखना चाहता है।

(२) आलंकारिक दृष्टि से भी प्रस्तुत अवतरण में भाव-सौन्दर्य और कला-सौदर्य दोनों विद्यमान हैं।

सन्देह से रहित। परिचालित=संचालित। नित्य=सदा। नियति=भाग्य। अविरत=निरन्तर। सृजन=निर्माण। अक्षय=अनश्वर; नाश हीन। अतिक्रम=उल्लघन। पल्लवित=विकसित।

प्रसंग—आधुनिक युग का मानवीय संघर्ष देखकर कवि मानव-मन के लिए शान्ति उपादेय समझता है और उसके लिए अनिवार्य आवश्यकताओं का पूर्ति चाहता है। इसी भावना को अभिव्यक्त करता हुआ वह कहता है:

व्याख्या—अभागा मानव बाहर के संसार में, आचार-विचार मे—जहाँ केवल युग के अन्त का अंधकार छाया हुआ है—बुरी तरह उलझ गया है। वह अंधकार भरी संसार की वीथिकाओं मे खो गया है। उसका त्राण अत्यावश्यक है क्योंकि उसका अन्तर का जीवन भूतकाल के संस्कारों से परिचालित और मृतरीति-रिवाजों के प्रेतों से पीड़ित, आज एकदम खोखला, सूना और मृत-प्राय. हो गया है। ऐसा लगता है कि वह वास्तविक जीवन नहीं है, वरन् जीवन के बाद की छाया-भर शेष है। न उसमें वांछित चेतना है और न युगीन संस्कार। है तो मात्र मृत-संस्कारों का खोखलापन। आज मानव के पैर,खाइयों और खंदकों में, आड़ी-तिरछी खोहों में, भयानक जंगलो में, अर्थात् जीवन के जटिलतर और भयानक मार्गो पर भटक गये हैं। आज उसके पैर संकट के रेत में फंस गये हैं। मानव अपने ही बड़प्पन के न संभाले जा सके बोझ के कारण हाथी के समान संस्कार की कूटनीतियों और कुकर्मो में फंस गया है। कहने का तात्पर्य है कि उसके जीवन में अनेक बाधाएँ है, जो उसके लिए रेती—जिस पर चलना दुश्वार होता है, और दलदल—जो पैरों को जकड़ लेता है—बन गयी है।

उसका जीवन इन बाधाओं से ही लिप्त नहीं है। उसकी तृष्णाएँ उसके पैरों की बेड़ी बन गई हैं और उसके आगे बढ़ने मे उसी प्रकार बाधक हैं जैसे किसी के घायल पैरों से बंधी चक्की के पाट। इतना ही नही, आज मानव धृष्ठ, निरंकुश और उच्छृंखल होकर शील के स्वर्णांकुश के प्रति असहिष्णु हो गया है और अपने अलंकार के वश में होकर अपने हाथो अपना विनाश कर रहा है।

कवि कहता है कि मैं सोच ही नही रहा हुं, वरन् स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ कि आज मानव रूपी घर के दरवाजे पर महान् युगान्तर उपस्थित है जिसके कारण उसके भौतिक, शारीरिक, प्राणिक सूक्ष्म मानसिक स्तरों में परिवर्तन

हो गया है और उसका आध्यात्म लोक दृष्टि से दूर हो गया है। उस युगान्तर ने उसकी संसार के प्रति धारणाएं बदल दी हैं, शरीर संबंधी आचार बदल दिए हैं, उसका दृष्टिकोण परिवर्तित कर दिया है—वह स्तर-दर-स्तर बदलता जा रहा है और अपनी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि भूलता चला जा रहा है। इसके साथ ही मानव का ईश्वर भी अब बदल रहा है उस ईश्वर के प्रति, जो युगों से मानव-जगत् को, लोक जीवन व लोक मंगल को, जगजीवन के मन को नित्य प्रति संचालित करता आया है अर्थात् जिसके प्रति मानव की चिरन्तन आस्था-दृष्टि रही है, धारणा बदल रही है। मानव का विश्वास भौतिक विकासों के कारण अनास्तित्कवाद में होता जा रहा है। आज, इस भौतिक प्राणी से लेकर भगवान के अस्तित्व तक (स्थिति 'अस्ति' का ही पर्याय है) परिवर्तन का यह चक्र अबाधित घूम रहा है। मैं बाह्य परिवर्तन ही लक्षित नहीं कर रहा वरन् मानव के मन में भी स्वर से रहित संगीत सुनता हूँ जो मन के कानों में गुजा करता है, जो ऐसे विप्लवकारी परिवर्तनों के पश्चात् नवनिर्माण का संदेश देता है।

कवि का विश्वास है कि इस उद्जन बमों के विस्फोट-युग में भी कुछ ऐसी शक्तियाँ भी हैं जो निरन्तर निर्माण-कार्य में लगी हुई हैं। ये वे शक्तियाँ है जो मानव के अन्तर-मन में संचारित हो, युग के यथार्थ का अतिक्रमण करके स्वप्नों का, आदर्शों का अक्षय-वैभव उत्पन्न कर उसे नव-निर्माण की ओर प्रेरित करती है। आज भी वही स्थिति हैं। जहां विनाश हो रहा है, वहीं मानव के मन की अपलक आंखों के समक्ष प्रतिक्षण नव-निर्माण भी होता चल रहा है। नाश के स्थूल चरणों पर ही सूक्ष्म सृजन का क्रम भी चल रहा है।

विशेष—(१) अंतिम पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि प्रकृति में किस प्रकार सतुलन का भाव बना रहता है। नाश और निर्माण की प्रतिक्रियाएं सामानान्तर रूप से चलती रहती है।

[२] पद का भावगत सौन्दर्य अद्वितीय है। कवि मानव की वर्तमान कालिक स्थिति से चिन्ताग्रस्त है क्योंकि मानव विनाश के पथ पर अग्रसर है।

(३) अलंकार—(i) 'मानव···का जीवन'—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश।
(ii) 'छाया-सा', 'गज सा' 'चक्की के पाटों सी'—उपमा।
(iii) 'खाई···रेती मे'—रूपक ।
(iv) 'जीवन तृष्णा···वेड़ी बन'—रूपक ।

(v) 'युग युग'—पुनरुक्ति प्रकाश ।
(vi) 'सूक्ष्म···घर'—मानवीकरण ।

कवि कपोल कल्पना··························कुसुमाकर-सा ।

शब्दार्थ—कवि कपोल कल्पना=कवि द्वारा स्वयमेव कल्पना के आधार पर गढी गयी बात । अनुभूत=अनुभव किया गया। निर्भ्रान्ति=भ्रम रहित । आरोहण=सवार होना । संघर्षण=संघर्ष करना । विवर्त=भंवर । क्रंदन=रोना । वैयक्तिक=व्यक्ति से संबंधित । आमूल=पूर्णरुपेण । निश्चेतन=चेतना-रहित; अचेतन । अन्तश्चेतन=आन्तरिक चेतना । रुपान्तर=रूप का परिवर्तन । वर्जनाओं=निषेध । नि.सृत निकल रहा । संक्रमण=परिवर्तन । अवतरित=उतरना; जन्म लेता हुआ । स्फुरित=चमकता हुआ । झंकृत=बजना । भृग=भ्रमर; भौंरा । कुसुमाकर=वसन्त ।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि अपनी बात को अग्रसीत करते हुए कहता है :

व्याख्या—आज मानव की चेतना निरन्तर शिखरों से नवीन शिखरों पर चढ़ती चली जा रही है, अपने आरोहण में वह समय के थपेड़े भी खाती है, गिरती है, उठती है, संघर्ष करती है, प्रत्यावंतन के समय कराहती है, किन्तु, यह मानव-चेतना सदा से अपराजित रही है। यह सत्य है, कवि द्वारा कल्पित स्थिति नही है । इस सत्य में भ्रम को कोई स्थान नही है । इस घोर भ्रान्तियों के युग में भी एक निर्भ्रान्ति सत्य बच रहा है । अपने और युग के इस अनुभव के आधार पर ही मै आज युग-परिवर्तन के इस क्रन्दन (विनाश के कारण) और किलकारियों (अजर, अमर शक्तियों द्वारा नव-सृजन की अनवरत चेष्टा के कारण) के इस समय में ध्यान में मग्न होकर शांति और क्रान्ति को, संहार और सृजन की, विजय और पराजय को, प्रेम और घृणा को, उत्थान और पतन को, आशा और कुण्ठा को, इस युग के सुन्दर और कुरुप को, इन सब तथा कथित विरोधी, द्वन्द्वमय स्थितियों, प्रवृत्तियों और शक्तियों को अपनी बाहों में समेटे हुए हूं, क्योंकि मेरी दृष्टि में ये एक है, अभिन्न है, परस्पर पूरक हैं ।

कवि को इस परिवर्तन पर आश्चर्य नही होता । कारण, परिवर्तन-युग-धर्म है। इसी मानव की व्यंजना करता हुआ वह कहता है कि यदि आज

मानव अपने वैयक्तिक रूप में बदल रहा है, यदि उसका अर्थ-तंत्र, समाज-व्यवस्था और धर्म-विश्वास परिवर्तित हो रहा है तो इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है ? इसमें भी आश्चर्य कैसा यदि मानव की चेतना अब सामूहिक होती जा रही है और अपने बहिरूप में वर्गहीन बनती जा रही है, या मानव मनस् तत्व, जो युगों से एक-सी भावनाओं, विचारों, संवेदनाओं में जकड़ा हुआ था, परिवर्तित हो रहा है ? यह भी आश्चर्य की बात न होगी कि मानव-जगत् पूर्णतः बदल जाय; सम्पूर्ण व्यवस्था का नया रूप हमारे समक्ष उपस्थित हो। यह तो मानव-चेतना का धर्म है कि वह युगानुरूप धारण करती हुई परिवर्तन की साक्षी बनी रहती है; किन्तु वह सदा ही अपराजेय रहती है।

यह परिवर्तन यहीं तक ही सीमित नहीं है। आज युगों से ईश्वरीय स्थापना के विपरीत नया मानव-ईश्वर जन्म ले रहा है। इसीलिए मानव के निश्चेतन, उपचेतन और अंतश्चेतन के संसार में परिवर्तन हो रहे हैं—उसकी सम्पूर्ण चेतना बदलती जा रही है। नये मूल्य, नये प्रतिमान स्थापित हो रहे हैं। इन्हीं चेतना-परिवर्तनों पर आश्रित होकर ही समस्त सांस्कृतिक सम्बन्धों में रूपान्तरण हो रहा है और सम्बन्धों के मूल्य अपने शिखरों पर पहुँच कर आवर्तन करते हुए इस जग में नये रूप में संयोजना प्राप्त कर रहे हैं। आज प्राणों का रथ गत युगों के निषेधों, रूढ़ियों, वर्जनाओं को अचानक ही तो उतारता हुआ, उनकी सीमा-रेखाओं का अतिक्रमण करता हुआ, जीवन-पथ को विस्तीर्ण कर निकल आया है और अपने प्रलय के वेग के समान आगे बढ़ता जा रहा है। मानव के अतीत के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य, सिद्धान्त और प्रतिस्थापनाएँ आज बदल रही है और एक नये सौन्दर्य-तत्त्व को जन्म दे रही है, एक नये आदर्श-लोक का निर्माण कर रही है। इस परिवर्तन के मध्य खिली हुई लताओं से खिला हुआ, लिपटा हुआ, अलंकरित पर्वत के समान अगणित वीणाओं के झंकारों का स्वर झंकृत करते हुए झरने के समान और उन्मद भंवरों की गुंजार से गुंजरित वसन्त-सा नया मानव-ईश्वर प्रातःकालीन स्वर्ण-रश्मियों से खिंचे हुए उषा रूपी रथ पर आरूढ़ होकर उतर रहा है—जन्म ले रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि अरुण के समान मानव-ईश्वर पर्वत की दृढ़ता, वीणा की झंकार की संगीतमय कोमलता और वसन्त-सा अकलुष लिए अवतरित हो रहा है।

विशेष—(१) प्रस्तुत अवतरण में कवि ने चारों ओर हो रहे परिवर्तन को लक्षित किया है कि किस प्रकार मानव की चेतना के स्तर बदलते जा रहे हैं।

(२) 'मानव-ईश्वर' की कल्पना प्रगतिवादी विचारधारा की परिचायक है।

(३) कवि का स्वर प्रगतिवादी होने पर भी शिल्प की दृष्टि से छायावादी, स्वच्छन्दतावादी प्रभाव स्पष्ट है।

(४) अलंकार—(i) 'कवि कपोल कल्पना'—अनुप्रास।
(ii) 'घोर भ्रान्तियों···सत्य यह'—विरोधाभास।
(iii) 'आरोहण कर···अपराजित'—मानवीकरण।
(iv) 'निश्चेतन, उपचेतन, अन्तश्चेतन'—अनुप्रास।
(v) 'प्राणों का रथ'—रूपक।
(vi) 'पर्वत-सा', 'निर्झर-सी', 'कुसुमाकर-सा'—उपमा।

भरते शत सीत्कार······························ रूपान्तर कर।

शब्दार्थ—सीत्कार=सिहरन भरा चीत्कार। पावक=अग्नि। स्वर्गिक=पवित्र। गोपनतम=रहस्यमय। बहिर्मुख=बाहर का मुख। रूपान्तर=परिवर्तन।

प्रसंग—प्रस्तुत अवतरण में कवि बाहर और अन्तर की स्थिति का चित्रण करते हुए शांति के लिए वांछित परिवर्तन का सत्य उद्घाटित कर रहा है। कवि कहता है :

व्याख्या—मानव की स्थिति द्वन्द्वमय है। उसके जीवन में बाहर तो पतझर सौ-सौ सीत्कार कर रहा है; कारण, परिवर्तन के समय बेकार हो गया है; गला-सडा हुआ झरता है—उसे मानो उस जीर्ण-पत्र रूपी मूल्यों के भूमिगत हो रहने का दुःख हो वेदना हो। परन्तु, उसकी मानसिक स्थिति कुछ और ही है। उसके भीतर नवमधु की वसन्त की पवित्र अग्नि सुलग रही है। मानव का मन आज आत्मा की रहस्यमय पर्तों को अनावरित कर अधिक पूर्ण होकर अपना बाह्य विकास कर रहा है। आज जो विनाश चारों ओर लक्षित हो रहा है, उसके हाथ मानव को गढ़ रहे हैं, उसका विकास कर रहे हैं। वह नव-इन्द्रिय-मानव था; उसने अपनी इन्द्रियों का विकास किया और अब वह अतीन्द्रिय हो गया है। विनाश के बाद निर्माण का स्वरूप भी शनैः शनैः लक्षित होने लगा है। इसलिए मानव को अपने परिवर्तन को पहचानना चाहिए और नव-निर्माण को अनवरत चलाते रहना चाहिए।

कवि मानव के परिवर्तन पर बल देता हुआ कहता है कि अब यह मानवेश्वर बदल रहा है। मानव का हृदय परिवर्तन हो रहा है और मानवता का स्वरूप भी बदल रहा है—नव मूल्यों और नवीन प्रतिमानों के साथ संस्कृति भी बदल रही है। यही परिवर्तन शाश्वत है।

विशेष—(१) पंत ने मानव-जीवन और मानव-मूल्यों मे हो रहे परिवर्तन की ओर संकेत किया है, किन्तु, कतिपय स्थलों यथा.' नव इन्द्रिय वह, विकसित

इन्द्रिय, अतीन्द्रिय अब'—को छोड़ कर उसके बिम्ब परिवर्तन-दिशा की सूचना नहीं देते ।

(२) कवि यह स्पष्ट नहीं कर पाया कि 'बाहरगत पतझर' और 'भीतर नव मधु' जैसी विरोधी स्थिति लक्षित कर भी 'मानव मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख' की बात क्योंकर करता है। परिवर्तन तो बाहर अधिक लक्षित होता है, किन्तु कवि अन्तर्मन की गहराइयों से विम्ब उभारने के प्रयत्न में बाह्य विम्ब भी धूमिल कर देता है।

(३) अलंकार—(i) 'भरते शत···पावक'—रूपक ।

(ii) आज नाश · गढ़ रहे'—मानवीकरण ।

(iii) 'नव इन्द्रिय···अब'—पुनरुक्ति प्रकाश ।

(iV) 'मानव अन्तर···कर'—अनुप्रास ।

———

यह धरती कितना देती है !

कविता परिचय—इस कविता की रचना सन् १९५४ में हुई थी। यह कविता पंत जी की उन रचनाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनमें कवि ने अनुभूतियों की तीव्रता और सूक्ष्मता को सहज और सरल ढंग से प्रस्तुत किया है। इसे 'वाणी' में संकलित किया गया है, जिसमें कवि छायावादी काल्पनिक जगत् की अपेक्षा जीवन की स्वाभाविकता को महत्त्व देने लगा है। 'यह धरती कितना देती है' में कवि ने एक साधारण-सी घटना के आधार पर जीवन की समस्याओं के साथ मानवीय व्यवहार का भी प्रतिपादन किया है। जो व्यक्ति केवल धन को महत्त्व देता है उसे जीवन में निराशा मिलती है किन्तु जो व्यक्ति निस्वार्थ भाव से कुछ कार्य करे तो उसे यश, सफलता और आनन्द सभी कुछ मिल जाता है। धन की अपेक्षा धरती से प्यार करे तो समता, समृद्धि और सद्भाव प्राप्त होते हैं। इस कविता का यही प्रतिपाद्य है।

'मैंने छुटपन············ ··························बनूंगा ।'

शब्दार्थ—कलदार=सुन्दर; आकर्षक। मधुर=सरस ।

प्रसंग—'आः धरती कितना देती है' कविता की इन पंक्तियों में कवि बाह्य जीवन की एक घटना का वर्णन करता है ।

व्याख्या— मैने अपने वचपन में सबसे छिपकर, बिना किसी को बताये धरती में पैसों को बोया था। उस समय नासमझ होने के कारण मैंने यह सोचा था कि एक दिन इन पैसों के पेड़ उगेगे, जिन पर रुपयो की सुन्दर-सुन्दर फसलें पैदा होंगी। जिनकी खनक को सुनकर मुझे आनन्द मिलेगा और उस धन-का उपभोग करता हुआ मै एक बहुत बड़ा सेठ बन जाऊंगा, धन-सम्पत्ति की

प्रचुरता के कारण मुझे वैभव-विलास की सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हो जायेंगी।

विशेष—(१) इसमें कवि ने बाल्यकाल के माध्यम से मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति का सहज चित्रण किया है; जब व्यक्ति अपने हितों को प्रमुखता देते हुए अपने कार्यों को दूसरों से छिप कर करता है।

(२) अलंकार—(i) 'मैंने छुटपन · सेठ बनूँगा'— स्वभावोक्ति।
(ii) 'और फूल फलकर में' ·····—अनुप्रास ।

'पर बंजर································· ·············· सींचा था।'

शब्दार्थ—बंजर=अनुर्वर। वंध्या=बाँझ। हताश=निराश। बाट-जोहता=मार्ग देखता हुआ। अपलक=एकटक। पांवड़े=स्वागत के लिए बिछाये गये कपड़े। अबोध=अनजान। ममता=ममत्व। रोपा=बोया। तृष्णा=लालच।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'आः धरती कितना देती है' कविता में से लिया गया है। इसमें कवि अपनी बचपन की एक घटना और उससे फल पाने की इच्छा का वर्णन करते हुए कहता है कि—

व्याख्या—कुछ पैसे धरती मे बो देने के पश्चात् मैंने कई दिन तक उस धरती को देखा किन्तु उस धरती में से एक भी आशा का अंकुर नही फूटा। वह धरती ही बंजर थी, जिस प्रकार बांझ के घर सन्तान नही होती उसी प्रकार उस मिट्टी ने एक भी पैसा नही उगला; मैंने रुपयो की फसलों के जो स्वप्न देखे थे, जो आशाएँ बाँधी थीं, वे सब मिट्टी में मिल गयी। निराश होकर भी मै कई दिन तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा। जिस प्रकार किसी के स्वागत के लिए पाँवड़े बिछा दिये जाते है, उसी प्रकार मै भी अपनी बाल कल्पनाओं को उसके साथ लगाये रहा। वस्तुतः यह मेरा अज्ञान ही था, क्योंकि मैंने जो बीज बोये थे वही गलत थे और इसके साथ मैने अपने ममत्व को जैसे बो दिया था। अपने स्वार्थ की तृष्णा, लालच अथवा कामना से सींचता रहा, ये सभी निराश करने के कारण थे।

विशेष—बचपन की अबोधता के साथ कवि इस बात को भी स्पष्ट करना चाहता है कि स्वार्थ, तृष्णा आदि से किये हुए कार्य का प्रतिफल भी उसी रूप में प्राप्त होता है।

(२) अलंकार—(i) 'पर बंजर······पैसा उगला'— मानवीकरण।
(ii) 'मै हताश····· बिछा कर'—लोकोक्ति।
(iii) 'बाल कल्पना ·· बिछा कर'—रूपक।
(iv) 'ममता को····· सीचा था'—विरोधाभास।

'अर्धशती ....बाँध दिये हों ।'

शब्दार्थ—अर्धशती=पचास वर्ष। हहराती=वेग से लहराती। मधु=बसन्त। लालसा=इच्छा। कजरारे=काले। कौतूहलवश=उत्सुकता से।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश पंत जी की 'आः धरती कितना देती है' कविता में से लिया गया है। इसमें कवि ने अपने बचपन की घटना (पैसे बोना) के पचास वर्ष बाद का चित्रण किया है। विभिन्न ऋतुओं के साथ-साथ मन की इच्छाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—पैसे बोने की घटना के पश्चात् आज पचास वर्ष व्यतीत हो चुके है। देखते-देखते अपनी सहज गतिशीलता में आधी शताब्दी निकल गयी। अनजाने ही कई बसन्त अपने माधुर्य को लेकर आये और चले गये। पतझर बीते, ग्रीष्म अपनी उष्णता से तप कर व्यतीत हो गया, वर्षा में आनन्द के झूले पड़े, शीतकाल अपने सौन्दर्य की मुस्कान लेकर आया, हेमंत में सर्दी का सीत्कार भी हुआ, इस प्रकार ऋतुएँ आती और जाती रही, प्रकृति ने कई बार शृंगार किया और कई बार वृक्ष फिर से शून्य हो गये। ऐसे ही जीवन का क्रम चलता रहा, फिर से आशाओं और अभिलाषाओ की सघनता, मोहकता और कोमलता लेकर बादल मँडराने लगे, गहरे और काजल के समान काले बादल धरती पर बरसे, सम्पूर्ण पृथ्वी जल से प्लावित हो गयी; ऐसे समय मे मैंने कौतूहलवश अपने आँगन के एक कोने में मिट्टी की गीली तह को अँगुलियों से खोद कर, सहला कर उसमें सेम के बीज गाढ़ दिये। उस समय मानो भूमि के आँचल मे ये बीज नहीं अपितु मणि-माणिक्य बाँध दिये हों, ऐसा आगे चल कर महसूस हुआ।

विशेष—(१) इन पंक्तियों मे ऋतुओं के क्रमागत आवागमन से कवि ने समय की गतिशीलता की स्वाभाविक अभिव्यक्ति की है। इसके अतिरिक्त बादलों की सघनता में आशाओं का साक्ष्य दिखाने में कवि ने मानव-मन की स्वाभाविकता को साकार कर दिया है।

(२) अलंकार—(i) 'ग्रीष्म तपे ... मुसकाई'—मानवीकरण।
(ii) 'सी सी कर .... खिले वन'—पुनरुक्ति।
(iii) 'बीज सेम ......बाँध दिये हो'—उत्प्रेक्षा।

'मैं फिर भूल ....बच्चों से।'

शब्दार्थ—सहसा=अचानक। हर्षविमूढ़=प्रसन्नता में मग्न। विस्मय=आश्चर्य। नवागत=नये आये हुए। पताकाएँ=ध्वजायें। उत्सुक=उतावले। डिम्ब=मिट्टी का खोल।

प्रसंग—इस पद्यांश में पंतजी ने सेम के बीज बोने की घटना के पश्चात् अपनी मनः स्थिति तथा सेम के पौधों के अँकुरित होने को विविध रूपों में चित्रित किया है।

व्याख्या—जब मैंने गीली धरती में सेम के बीज बोये तो उस समय मेरे मन में केवल कौतूहल मात्र ही था, परिणाम स्वरूप, मैं उस घटना को भूल ही गया था। वैसे भी यह घटना कुछ स्मरण योग्य नहीं थी। किन्तु एक दिन सन्ध्या को आँगन में टहलते हुए मैंने एक ऐसा दृश्य देखा जिसके कारण मैं प्रसन्नता से भरकर गद्-गद् हो गया। मेरे विस्मय का कारण यह था कि आँगन के उस कोने में मुझे छोटे-छोटे पौधे ऐसे दिखायी दे रहे थे जैसे कुछ नवागन्तुक छाता ताने खड़े हों, वे छतरियां थी अथवा विजय पताकाएं थी जो जीवन की प्रगति और उन्नति की सूचक थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे वे अपनी नन्हीं-नन्ही हथेलियाँ फैला कर नन्हे-नन्हें शिशु हों। वे पौधे हर्षोल्लास से परिपूर्ण ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे मिट्टी के खोल अथवा आवरण को फोड़कर चिड़ियों के बच्चे पंख फड़फडा कर उड़ने को तत्पर हो रहे हों। पौधे धरती की मिट्टी से उभर कर उर्ध्व गति की ओर अग्रसर हो रहे थे।

विशेष—(१) इस पद्यांश में पंत जी ने एक सामान्य घटना को सहज और स्वाभाविक शैली से रोचक और आकर्षक बना दिया है। पौधों को नवागन्तुओं की छतरियों, जीवन की विजय पताकाएँ, नन्ही हथेलियाँ तथा चिड़ियों के बच्चों के पंख आदि से सादृश्य स्थापित करके कवि ने प्रकृति के प्रति अपने नैसर्गिक प्रेम को ही अभिव्यक्ति दी है।

(२) अलंकार—(i) 'देखा आँगन · खड़े हुए हैं'—पुनरुक्ति, अनुप्रास, मानवीकरण।

(ii) 'छाता कहूँ······नन्हीं प्यारी'—सन्देह।

(iii) 'डिम्ब तोड़कर ····बच्चो से'—पूर्णोपमा।

'निर्निमेष··· ·····································बूढ़ों से।'

शब्दार्थ—निर्निमेष=अपलक। बौने=छोटे कद वाले। अवाक्=हैरान। छितरे=फैले।

प्रसंग—'आः धरती कितना देती है' कविता के इस अंश मे कवि पंत ने सेम के पौधों को विकसित, फलते, फूलते हुए चित्रित किया है। अनजाने बोये गये बीजों को धरती ने कई गुना बढ़ा कर प्रकट किया, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—जिस समय अपने आँगन के कोने में मैंने सेम की उन नन्ही क्यारियों को देखा तो क्षण भर के लिए तो मै उन्हें एकटक देखता ही रह गया। अचानक मुझे स्मरण हुआ कि कुछ दिन पूर्व मैंने आंगन में सेम के बीज बोये थे, उन्ही बीजों से पौधों की यह छोटी-सी सेना खड़ी हो गयी है। आज मेरे सामने बड़े गर्व से सिर उठाये यह सेना जैसे अपने पैर पटकते हुए प्रयाण-पथ पर बढती जा रही थी। उसके नन्हें-नन्हें पैरों को मै देखता ही रह गया, तब से धीरे-धीरे वे क्यारियाँ बढ़ गयी, उन पर अगणित पत्ते लद गये थे, सेम की

झाड़ियाँ ही फैलती जा रही थीं, ऐसा प्रतीत होता था जैसे हरे-भरे कोमल पत्ते ही नहीं अपितु हरी मखमल के चंदोवे आँगन में फैले हुए है। सेम की वेलें बढती गयीं, लहराते-लहराते उनसे सारा आंगन भर गया, आंगन में बाढ़ का जो सहारा बनाया हुआ था, उसका सहारा पाकर वे फैलती वेलें इस प्रकार प्रतीत होती थी जैसे सैकड़ों हरे-हरे झरने ऊपर की ओर उठ रहे हों। सेम के इस वंश विस्तार को देखकर मै भौंचक्का सा रहकर उसे देखता रह गया। सेम की लहराती, बलखाती वेलों की साँवली लताओं पर छोटे-छोटे फूल झुंड के झूंड इस प्रकार दिखायी देते थे जैसे तारों के झुंड आकाश मे विखरे होते हैं। जिस प्रकार अमावस की अंधकार पूर्ण रात्रि के आकाश मे तारे मुस्कराते है अथवा झाग में जैसे बुलबुले चमकने है उसी प्रकार सेम के फूल अपने सौन्दर्य में चमक रहे थे। उस समय वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे किसी वेणी में मोती गुथे हुए हों अथवा किसी के आँचल पर छोटे-छोटे फूल अंकित हों।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि ने सेम की वेलों के विका और फूलों के सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन किया है। वर्णनात्मक होते हुए भी कवि ने उसे अनुभूतिपूर्ण वनाने में सफलता प्राप्त की है।

(२) **अलंकार**—(i) 'और उन्हीं से····· वढ़ती जाती है'—रूपक।
(ii) 'तव से उनको····· धीरे-धीरे'—पुनरुक्ति।
(iii) वेलें फैल गयीं ·····ऊपर को'—रूपकातिशयोक्ति।
(iv) 'छोटे तारों······बूटों से'—मालोपमा।

'ओह समय·······························प्यारी फलियाँ।'

शब्दार्थ—चन्द्रकलाओं=चन्द्रमा की किरणों। कचपचिया=झुंड में एक फूल विशेप। अभ्यागत=अतिथि। मंगतों=भिखारियों।

प्रसंग—इस पद्यांश में श्री पत ने सेम की फलियों के उत्पादन का विवरण प्रस्तुत किया है। धरती से अनेक गुना होकर मिलने वाले इस पदार्थ अथवा प्रसाद का उपभोग केवल एक व्यक्ति नहीं अपितु बहुत समाज करता है, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—सेम की वेलों पर खिले फूल कुछ समय के पश्चात् फलियों में परिणत हो गये। वह फलियाँ कितनी अधिक और प्यारी फलियाँ थी कि उनकी गिनती नही हो सकती थी। पतली और चौड़ी फलियाँ, लम्बी-लम्बी अगुलियों के समान थीं, जैसे छोटी-छोटी तलवारें हों; उनका रग पन्ने के हारों के समान था, यदि झूठ न समझा जाये तो वे फलियाँ चन्द्रमा की कलाओं के समान नित्य बढती जाती थीं। सच्चे मोतियों की लड़ियों के समान वह फलियाँ ढेर-की-ढेर होतीं; जिस प्रकार आकाश में तारों के झुड के झुंड दिखायी पड़ते हैं, उसी प्रकार फलियों के भी गुच्छे होते। ये फलियाँ इतनी अधिक थी कि सारी सर्दियों की ऋतु में हम खाते रहे। हमारे ही नही और भी कई घरों में सुबह-शाम इनकी ही सब्जी वनती रही। पास-पड़ोस के जितने भी जाने अथवा अनजाने

घर थे, उन सबमें वे फलियाँ बँटवायी गयी । सभी बन्धु, बान्धवों, सगे-सम्बन्धियों, मित्रों, अतिथियों और भिखारियों ने भी उन फलियों को जी भर कर खाया । वे फलियाँ कितनी अच्छी और प्यारी फलियाँ थी कि उन्हें मुहल्ले भर ने कई दिन तक जी भर कर खाया था ।

विशेष—(१) पूर्व पद्यांशों की भाँति इसमें भी कवि ने फलियों को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है ।

(२) अलंकार—(i) 'लम्बी-लम्बी ·····हारों सी'—पुनरुक्ति, उपमा ।
(ii) 'झूठन समझें ·····तारों सी' – मालोपमा ।
(iii) 'सुबह शाम······फलियाँ'—उल्लेख ।

'यह धरती·································ही पायेंगे ।'

शब्दार्थ—रत्न-प्रसविनी = रत्नों को जन्म देने वाली । वसुधा = पृथ्वी । समता = बराबरी । क्षमता = शक्ति । ममता = ममत्व ।

प्रसंग—प्रस्तुत पद्यांश 'आः धरती कितना देती है' का अन्तिम अंश है । इसमें कवि सेम की फलियों का वर्णन करते हुए धरती माता का महत्व गाने लगता है । पंत जी की मान्यता है कि हम धरती से, कृषि से जितना प्यार करेंगे उतना ही समाज समृद्ध होगा, केवल पैसे को प्यार करने से तो केवल निराशा ही मिलेगी । मानव की श्रम, शक्ति और समता के आधार का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—

व्याख्या—यह धरती माता अपने प्रिय पुत्रों को कितना कुछ देती है, इसको मैं बचपन के अज्ञान में नही जानता था । उस समय जब मैंने धरती में पैसे बोकर मालामाल होना चाहा था तब मैं उसके महत्व को समझ नही सका था । वस्तुत: अब मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि यह धरती तो रत्नों को जन्म देने वाली है । आज यह आवश्यकता है कि इसमे मानव की क्षमता और समता के बीज बोये जायें । यदि मानव समवेत रूप मे अपनी सामर्थ्य-शक्ति को धरती मे लगायें तो यहाँ की धूलि भी स्वर्णिम फसलें प्रदान करेंगी । जीवन के अभावों की पूर्ति होगी और मानव के श्रम से सम्पूर्ण दिशाएँ आनन्दोल्लास से भर जायेंगी । यदि हम ऐसा करेंगे तो उसका सुफल अवश्य मिलेगा अन्यथा जैसा बोयेंगे वैसा फल मिलना आवश्यक है ।

विशेष—(१) प्रस्तुत पद्यांश में कवि का विचारक रूप प्रकट हुआ है । उसने विश्व-जीवन मे व्याप्त भूख, गरीबी, बेकारी तथा बीमारी आदि का एक ही उपाय माना है—धरती से प्यार । धरती को तन, मन और जीवन से प्यार करने से ही मानव जीवन सुखी और समृद्ध हो सकता है ।

(२) अलंकार—(i) 'रत्नप्रसविनी ·····दाने बोने हैं'—रूपक ।
(ii) 'जिससे उगल ·····दिशाये'—विशेषण-विपर्यय ।
(iii) 'हम जैसा······पायेंगे'—लोकोक्ति । ······

